THE BOOK WAS DRENCHED

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_180584

UNIVERSAL
LIBRARY

OUP—23—4-4-69—5,000.

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H 83/V 82 P Accession No. H 311

Author विश्वम्भर

Title प्रतिमायें । 1960.

This book should be returned on or before the date last marked below.

प्रेमिकाएँ

विश्वम्भर 'मानव'

किताब महल, इलाहाबाद

१९६०

प्रथम संस्करण
१९६०

प्रकाशक—किताब महल, ५६ ए, ज़ीरो रोड, इलाहाबाद।
मुद्रक—अनुपम प्रेस, इलाहाबाद।

हेम को

जो पता नहीं अब कहाँ है

१

जगदीश ने जब चलते समय मा के चरण छुए तो मा का गला भर आया था और वह भी हिल उठा था। मा की इच्छा नहीं थी कि वह कहीं बाहर पढ़ने जाय। घर की दशा बहुत दिनों से बिगड़ी हुई थी और दिन पर दिन गिरती चली जा रही थी। जगदीश के पिता वृद्ध हो चले थे और कुछ कमा नहीं रहे थे। मा ने जैसे-तैसे इण्टर करा दिया था और आगे पढ़ाने की उसकी सामर्थ्य नहीं थी। परन्तु जगदीश को अपने ऊपर न जाने कैसा विश्वास था कि पढ़ने के लिए वह निकल ही पड़ा।

ट्रेन में बैठे उसे अपनी मा की भरी हुई आँखें याद आई और वह सहसा अस्थिर हो उठा। इतने में डिब्बे में हल्का कोलाहल-सा होता सुनाई दिया। ट्रेन स्टेशन पर खड़ी हो गई थी और दरवाज़े से किसी का बहुत-सा सामान भीतर लाया जा रहा था। सामान उसके पास ही लाकर पटक दिया गया। एक अधेड़ व्यक्ति जो नौकर-सा लगता था, नीचे बैठ गया। इसके उपरान्त एक स्त्री ने उसी दरवाज़े से प्रवेश किया। जगदीश जब ट्रेन में चढ़ा था, तब भी भीड़ थी। उस समय तो यात्री इस प्रकार सटकर बैठ गए थे कि उसे स्थान ही न मिला था और यही कारण है कि वह इस कोने में आकर जैसे-तैसे थोड़ी सी जगह अपने लिए बना पाया था। और अब जब कि एक सुन्दर मुख ने उस दरवाज़े से झाँका है, तो बैठने वाले चौकन्ने हो गये हैं और उनमें से सभी चाहते हैं कि वह उनके पास आकर बैठ जाय। पल भर में न जाने किस मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया से ऐसा हुआ कि लोगों ने अपने स्थान से थोड़ा सरक कर, थोड़ा दबकर, उसके लिए स्थान बना दिया। जगदीश ने इस बात को लक्ष्य किया। उसे कुछ

झुँझलाहट हुई, कुछ हँसी-सी आई। उसे लगा कि पुरुष जाति बहुत दुर्बल है और सुन्दर स्त्री का स्थान संसार में सब से ऊपर है।

वह महिला उसके पास ही सामान पर चढ़कर बैठ गई। उसका इस प्रकार बैठना जगदीश को कुछ विचित्र-सा लगा। थोड़ी देर में कपड़े के खोल में से निकालकर उसने सितार बजाना प्रारम्भ किया। परिणाम यह हुआ कि सब मंत्र-मुग्ध से उसकी ओर देखने लगे। जगदीश भूल गया कि वह यात्रियों से खचाखच भरे थर्ड क्लास में यात्रा कर रहा है। थोड़ी देर मे उसकी दृष्टि दूसरे कोने पर खिड़की के सहारे बैठी एक लड़की पर पड़ी। अब तक उसने उसे देखा ही न था। उस समय भी जब कि यात्रियों का ध्यान उस रमणी की ओर आकर्षित हो गया है, वह वैसे ही सब की ओर पीठ किए बाहर शून्य में न जाने क्या खोज रही है! ऐसी मधुर धुन भी उस पर अपना प्रभाव नहीं डाल पायी। कैसी लड़की है यह!

यह बात उस रमणी को भी शायद कुछ खटकी; अतः उसे आकर्षित करने के लिए उसने सितार पर और भी कई धुनें छेड़ीं, पर लड़की थी कि टस से मस नहीं हुई। रमणी ने थककर सितार बजाना बंद कर दिया। जगदीश सोचता ही रह गया कि आखिर ये दोनों हैं कौन? होंगी कोई। उसने अपना ट्रंक सँभाला और एक गहरी साँस ली। उस महिला की ओर उसने फिर देखा और पाया कि मुख की सारी सुन्दरता के बीच उस पर न जाने कैसी एक धुँधली छाया है। उसके मन में संदेह उठा; पर उसने उसे वहीं दबा दिया। ट्रेन स्टेशनों पर रुकती हुई चलती रही। इसी बीच उस महिला ने एक सिगरेट निकालकर सुलगाई। जगदीश का संदेह जाता रहा। अरे, यह तो कोई वेश्या है! संभवतः किसी विवाह में मुजरा करके लौटी है। विवाहों में उस समय वेश्याओं को बुलाने का चलन था। उसके गाँव में ही एक ठाकुर की लड़की का कुछ दिन हुए विवाह हुआ था। ठाकुर का पुराना वैभव मिट गया था; पर कन्या उनकी अद्भुत सुन्दरी थी। उसे व्याहने आया था एक बहुत बड़े ताल्लुकेदार का छोटा लड़का।

उसमें तीन वेश्याएँ और चार बेड़िनें भी नाचने आई थीं। तीन दिन तक रात-दिन नाच-गाना होता रहा। इन तीन दिनों के उसने न जाने कितने किस्से सुने थे। और तब उस औरत की ओर दृष्टि उठाते ही उसका मन ग्लानि से भर उठा।

कैसा विलक्षण होता है मनुष्य का मन!

संध्या घिर आई है। इस संध्या से जगदीश का कुछ पुराना सम्बन्ध है। संध्या हुई नहीं कि उसका मन सहसा उदास हो जाता है। इस उदासी में ठाकुर की लड़की का उजला मुख बार-बार उदित होता है। बचपन में वह और इंदुकुँवरि साथ-साथ खेले थे। ठाकुर का घर उसके घर से बहुत दूर था; पर वह उस दूरी को पार करके वहाँ पहुँचता था और उसकी हवेली में बैठा खेलता रहता था। कभी तो वह खाना पीना तक भूल जाता और साँझ को लौटता। घर वाले बहुत चिंतित होते; पर उन्हें पता ही न चलता कि वह कब कहाँ चला जाता है। फिर तो वह गाँव से बाहर पढ़ने चला गया और सात वर्ष स्कूल-कॉलिजों के होस्टलों में रहा। छुट्टियों में वह गाँव लौटता, लेकिन अब उसका ठाकुर के यहाँ जाना बंद हो गया था। इन सात वर्षों में एक दिन के लिए भी उसने अपनी बचपन की साथिन को नहीं देखा था। सहसा उसे इंदुकुँवरि का बचपन का वह आकर्षक मुख याद आया। पता नहीं बड़ी होकर वह कैसी हो गई होगी। नयी हवेली में नौकरों-चाकरों के बीच घूमती होगी। सुख में है। फिर क्यों वह उसके लिए चिंता करता है? क्यों सोचता है कुछ भी उसके संबंध में? बचपन में न जाने कितने बच्चे एक-दूसरे के साथ खेलते हैं। बड़े होकर क्या वे एक-दूसरे के बारे में सोचते हैं? अब शायद वह उसे कभी नहीं देख पायेगा। उसकी कल्पना एकदम उड़ गयी...दूर...दूर...दूर...! यदि ऐसा हो... वैसा हो...। उसका मन कहीं दुखा। मूर्ख कहीं का। ऐसा-वैसा कहीं नहीं होता। जो पढ़ने-सुनने में आता है, वह सब मनगढ़ंत है। झूठ है। कल्पना है।

उसे सामने बैठी महिला पर झुँझलाहट आई। न वह सिगरेट पीती और न उसे पता चलता कि वह वेश्या है। न उसे याद आता कि विवाहों में वेश्याएँ आती हैं और न तब गाँव की उस बारात की स्मृति जगती जिसमें तीन वेश्याएँ और चार बेड़िनें आई थीं—वह बारात जो उसकी बचपन की साथिन को गाँव से सदा के लिए दूर ले गई थी।

पर यह दूसरी लड़की कौन है? कौन है जिसे संगीत प्रभावित नहीं कर पाया,—नहीं प्रभावित कर पायी जिसे वेश्या की कला?

ट्रेन कहीं रुकी।

डूबते सूर्य की लालिमा आकाश में छा गई है। पक्षी अपने बसेरे की ओर उड़े चले जा रहे हैं। दूर से कोई यात्री गाड़ी पकड़ने के लिए दौड़ा चला आ रहा है। पता नहीं ट्रेन को पकड़ भी पायेगा या नहीं।

जगदीश पानी पीने के लिए नीचे उतरा और उस लड़की की ओर बिना देखे आगे बढ़ गया। उधर से लौटकर वह सभी की आँख बचाता हुआ गाड़ी के पास से इस प्रकार निकला जिससे आँख भरकर वह उसे देख सके। इस अवस्था में यह चंचलता, यह उत्सुकता, यह असंयम, सभी लड़कों में होता है। लड़की का मुख सुन्दर है। चौड़ी काली किनारी की सफ़ेद रेशमी साड़ी पहने हुए है। भाल पर लम्बा पतला केसर का तिलक। संध्या की छाया में वह मुख और भी रम्य हो उठा है।

जगदीश उस छवि के कुहुक में ऐसा खो गया कि थोड़ी देर तक उसे पता ही न चला कि वह कहाँ खड़ा है। चेतना उभरी तो न जाने किस अदृश्य शक्ति की प्रेरणा से उस लड़की के पास आकर खड़ा हो गया।

"आप प्यासी तो नहीं हैं?"

"नहीं।"

"आपके साथ और कोई है?"

"नहीं।"

"कहाँ जायँगी?"

"कहीं भी नहीं......।"

भीतर से किसी ने पुकारकर कहा, "अरे भई, गाड़ी चल पड़ी है। भीतर आ जाओ।"

वह फुर्ती से भीतर आकर बैठ गया। चढ़ते-चढ़ते उसने खिड़की पर उड़ती दृष्टि जो डाली तो देखा लड़की ने डूबते सूर्य को हाथ जोड़कर नमस्कार किया।

भीतर बैठकर वह पछताने लगा। क्या हो गया है उसे? क्यों टोका उसने उस लड़की को? यदि वह उसका अपमान कर देती तो? यह किसने विवश करके उसे उसके पास खड़ा कर दिया? और उसका हृदय सचमुच धड़कने लगा। कच्ची अवस्था में ऐसा प्रायः हो ही जाता है।

जगदीश ने ट्रंक में से अपनी डायरी निकाली और देर तक न जाने क्या लिखता रहा। उसे याद आई अपने बचपन की, बचपन में झालरदार वटवृक्ष के नीचे चुप बैठे रहने की। उसे याद आई अपने गाँव की स्वच्छसलिला नदी की, उसकी स्वच्छ बालू की। एक दिन इस नदी के किनारे खड़े होकर उसने सोचा था: यह नदी न जाने कहाँ से आती है और न जाने कहाँ जायगी? सहसा उसे याद आयी एक बड़ी हवेली की जिसमें ठाकुर की लड़की रहती थी, जिसे पिछले सात सालों से वह देख नहीं पाया था; क्योंकि दोनों बड़े हो गये थे और इसी बीच लड़की का विवाह हो गया। क्या मेरे गाँव की यह नदी उस हवेली के नीचे भी बहती होगी? इंदुकुँवरि जहाँ चली गयी है, क्या वह वहाँ जा सकता है? क्या उसे उससे कोई मिलने देगा? क्या वह उसे पहचान लेगी? और तब उसे याद आई अपने अभाव-ग्रस्त जीवन की और सबके बाद अपनी मा की आँसुओं से भरी आँखों की। इस लड़की के साथ वह यह क्या चंचलता कर बैठा! जिस काम के लिए जा रहा है, उसे वह इतनी जल्दी भूल कैसे गया! वह सहसा कठोर हो उठा।

ट्रेन से यात्री धीरे-धीरे उतरने लगे। उसे तो अभी बहुत दूर जाना है—कानपुर। यह लड़की कहाँ तक जायगी? यदि कानपुर तक गयी तो? तो जाय। यदि रात में ऐसा हुआ कि वही इस डिब्बे में रह गयी तो? तो रह जाय। लेकिन उसने देखा लोग गाड़ी से उतर ही नहीं रहे, उसमें चढ़ भी रहे हैं। अतः वह आशंका तो उसकी मिट गई। फिर भी वह उसके बारे में सोचता क्यों है? अब नहीं सोचेगा।

रात होने पर वह न जाने किस समय बाँह का सहारा लेकर सो गया।

सहसा उसकी आँख खुली। उसने देखा उसका ट्रंक नहीं है। उसे बहुत घबराहट हुई। अब क्या करे वह! हो सकता है कोई यात्री भूल से ले गया हो। फिर भी देखना तो चाहिए। डिब्बे में इस समय यात्री बहुत ही कम रह गये थे। जो थे वे सो रहे थे। दुःख जब आता है तो कहकर नहीं आता। वह अपने मन में पछताने लगा। यदि वह न सोता तो? फिर भी देखना तो चाहिए। लड़की खिड़की के सहारे अभी वैसे ही बैठी थी। किससे पूछे? वह आगे बढ़ा तो लड़की ने मुँह मोड़कर उसकी ओर देखा।

"क्या है?"

"मेरा ट्रङ्क उठाकर कोई ले गया।"

"क्या था उसमें?"

"था तो कुछ अधिक नहीं।"

"फिर भी?"

"दो धोती, दो पाजामे, तीन-चार कुर्ते, एक डायरी और—"

"और क्या?"

क्यों प्रश्न कर रही है यह? उसे झुँझलाहट हुई। यह कोई पुलिस इंस्पेक्टर है?

"एक टिकट, थोड़े रुपये…"

"कितने रुपये?"

"यही सात आठ होंगे..."

लड़की ने उसे अपने पास बैठने के लिए कहा। वह थोड़े हटकर बैठ गया। कैसा सुख था वह!

"आप कहाँ के रहने वाले हैं?"

"बुलदशहर ज़िले का।"

"कहाँ जा रहे हैं?"

"कानपुर पढ़ने जा रहा हूँ।"

"वहाँ आपका कोई है?"

"कोई भी नहीं।"

"इतने कम रुपयों से पढ़ना कैसे चलेगा, यह भी आपने सोचा?"

"और हैं ही नहीं। क्या करें?"

लड़की ने मुस्कराकर पूछा, "कौन ले गया आपका ट्रंक?"

"एक छरहरा-सा बदमाश मेरे पास बैठा था। बहुत घूर-घूर कर देख रहा था। वही ले गया होगा।"

लड़की फिर मुस्कराई।

"आपका ट्रंक मैंने उठाकर बाहर फेंक दिया है। बहुत पुराना हो गया था।"

"फेंक दिया?"

"आपकी डायरी मैंने पढ़ ली है।"

जगदीश चुप।

"आपके रुपये मेरे पास हैं। जब तक और कोई प्रबन्ध न हो, आप हमारे घर रहेंगे।"

"लेकिन..."

"जाइए सो जाइए। अभी रात बहुत है।"

२

सड़क के किनारे एक लम्बी चहारदीवारी है। देखने से किसी रईस का मकान-सा लगता है। एक कोने पर गोलाकार एक कमरा है। आगे छोटा-सा बरामदा। चारों ओर कुछ हरियाली और फूलों के पौधे। गोल कमरे के पीछे की ओर स्नानागार। किसी ने इसे अतिथि-गृह के रूप में बनवाया होगा। इसी में आजकल जगदीश रहता है। दोनों समय खाना उसके लिए वहीं आ जाता है।

पहले ही दिन एक वृद्ध नौकर से उसका परिचय हुआ। नाम था—भरोसे। उसने दस-दस के कई नोट जगदीश के हाथ में देते हुए कहा: बिटिया ने कहा है आप कॉलेज में अपना नाम लिखा लें। भरोसे ने साथ चलने के लिए भी आग्रह किया; पर जगदीश ने मना कर दिया। संध्या समय जब भरोसे उसके लिए खाना लाया, तो जगदीश ने बाक़ी रुपये उसे लौटा दिए।

थाल उठा कर जब नौकर चलने लगा तो जगदीश ने कहा: भरोसे मुझे पूछकर जवाब देना, मैं थोड़ी देर को मिलना चाहता हूँ। भरोसे लौट कर कह गया था: परसों इतवार को तीसरे पहर बुलवाया है। जगदीश जब उसकी ओर कुछ अधिक जानने के लिए देखने लगा तो भरोसे ने कहा: मैं ठीक समय पर आकर आपको ले जाऊँगा।

जगदीश का जिस समय से इस लड़की से परिचय हुआ है, वह एक प्रकार के विस्मय से अभिभूत है। ट्रेन में ही थोड़ी बातचीत हुई थी; लेकिन उससे यह तो पता नहीं चला वह कौन है। उसे यह सोचकर बार-बार आश्चर्य होता है कि क्यों वह विवश-सा होकर उसके पास सहसा खिंच आया था और क्यों उसने उससे पानी पीने के लिए पूछा था। और फिर उसका अपने खोये ट्रंक को ढूँढ़ना और लड़की का मुस्कराकर कहना:

उसने उसे बाहर फेंक दिया है। पहले तो उसे अपने साथ लाना और फिर इस उदासीनता से व्यवहार करना। उदासीनता न भी हो; पर अपने चारों ओर रहस्य का एक जाल उसने अवश्य बुन रखा है। क्या आशय है इस सब का? उसकी आर्थिक चिंता इस समय मिट गई है; पर एक व्यर्थ की मानसिक उलझन खड़ी हो गई है। प्रश्न यह है कि उससे साक्षात्कार क्यों नहीं होता? ऐसी क्या अड़चन है जिससे मुझे इसी समय नहीं बुलाया जा सकता? लेकिन कौन उत्तर दे इस बात का?

रविवार को ठीक समय पर भरोसे आया। बीच में एक उद्यान था। आगे कई सीढ़ियाँ चढ़ने के बाद वे दोनों एक छत पर पहुँचे, जहाँ श्वेत पत्थर की एक चौकी थी। सामने एक कमरा था जिसके द्वार पर एक पर्दा पड़ा था। भरोसे ने संकेत से बतलाया: इसी में हैं। और बिना कुछ कहे वह लौट गया।

जगदीश पर्दे के पास जाकर चुप खड़ा हो गया। उसकी समझ में नहीं आया, क्या करे। इतने में आवाज़ आई: भीतर आइए न!

जगदीश ने देखा एक बड़ा गोल कमरा है जिसमें दरवाजे को छोड़कर कई खिड़कियाँ हैं; अतः धूप और वायु का यथेष्ठ प्रवेश होता होगा। दरवाज़े से कुछ दूर चमड़े से मढ़े कई मोढ़े रखे हुए थे। उन्हीं में से एक पर इस समय नयनतारा—यही नाम भरोसे ने जगदीश को बताया था—बैठी थी। सामने एक अँगीठी थी जिसमें कोई सुगंधित द्रव्य पड़ा था। गन्ध से कमरा भर उठा था। नयन के केश खुले हुए थे। आज उसने उन्हें धोया था—लंबे सुनहरी आभा वाले श्यामल केश!

"बैठिए न" नयन ने सहज भाव से कहा। "ये बाल तो मेरी जान को बवाल हो गए। सोचा था आज इन्हें धोकर सुखाऊँगी, पर दोपहर से ही बदली छायी हुई है!" फिर रुककर बोली, "देख क्या रहे हैं। मेरी मदद कीजिए न!"

नयन की यह आत्मीयता जगदीश को अच्छी लगी। उसकी केशराशि

को दोनों हाथों में लेकर वह सुवासित अँगीठी की भभक में धीरे-धीरे सुखाने लगा। नारी के इस प्रकार इतने पास आने का यह उसका पहला ही अवसर था। बालों को दोनों हाथों में भरने पर उसने एक ऐसी कोमलता का अनुभव अपने हृदय में किया जो अवर्णनीय थी।

जगदीश की आँखों के सामने इस समय एक पहाड़ी झरना था, एक उमड़ती घटा!

उस सुख से विह्वल होते हुए जगदीश ने कहा, "मैं आपसे कुछ कहने आया था।"

"तो कहिए न।"

"मैं बहुत कृतज्ञ हूँ; पर इस घर में मुझे एक घुटन-सी मालूम पड़ती है।"

"कोई तकलीफ़ है?"

"तकलीफ़ कोई नहीं है, यही तो बात है।"

"फिर?"

"आप मुझसे कुछ काम लें तो मुझे संतोष होगा।"

"काम तो आपसे अवश्य लूँगी" इतना कहकर नयन मुस्कराई? फिर बोली, "अच्छा देखिए, सामने यह पैड रखा है। एक पत्र तो लिखिए।" और इतना कहकर पैन और पैड वह स्वयं ही उठा लाई? पत्र उसकी एक मुसलमान सहेली के लिए था। थोड़ी देर में जब उसने दृष्टि उठाई तो देखा जगदीश का हाथ काँप रहा है और अक्षर बिगड़ गए हैं। नयन ने कुछ कृत्रिम आश्चर्य से कहा, "वाह, आप तो कुछ भी नहीं लिख पाए। क्या ऐसे ही मेरा काम किया करेंगे?"

जगदीश संकोच से गड़ गया।

नयन ने अपने अधरों पर अत्यधिक मीठी मुसिकान लाते हुए उसकी ओर इस प्रकार देखा कि वह एकदम खो गया।

"आपने अपने घर को पत्र लिख दिया?"

जगदीश ने धीरे-से उत्तर दिया, "लिख तो दिया।"

"आपकी मा हैं?"

"हैं तो।"

"पिता जी?"

"वे भी हैं।"

"वृद्ध हैं?"

"हाँ।"

"और कौन-कौन है?"

"एक छोटी बहिन है।"

"गाँव कैसा है?"

"बहुत सुन्दर है। तीन ओर खेत हैं। एक ओर नदी बहती है—श्वेत बालू वाली स्वच्छ सलिला नदी। गाँव के बाहर आमों के बहुत से बाग़ हैं। बरसात में उनमें कोकिल कूकती है तो बहुत अच्छा लगता है। बाग़ों के आगे एक नहर है......"

"मुझे दिखायेंगे कभी अपना गाँव?"

"आप इतनी छोटी जगह क्यों जायँगी?"

"कभी ले चलेंगे तो जरूर चलूँगी।"

जगदीश ने देखा नयन मुस्करा रही है।

"अब पत्र लिखिए।"

इस बार हाथ नहीं काँपा।

३

बी० ए० में अँग्रेजी के तीन सैक्शन थे। एक को मिस्टर श्रीवास्तव पढ़ाते थे, दूसरे को मिस्टर हलदर और तीसरे को मिस्टर मिश्रा। जितने

शरारती क़िस्म के लड़के थे वे सब मि० मिश्रा के सैक्शन में रहते, जितने पढ़ने वाले वे मि० श्रीवास्तव के सैक्शन में। श्रीवास्तव गम्भीर स्वभाव वे विद्वान् व्यक्ति थे, हलदर परिश्रमी—वे नोट्स बहुत लिखवाते थे; लेकिन मि० मिश्रा अत्यंत हास्यप्रिय प्रोफ़ेसर थे। क्लास उनके हास्य से गूँजता रहता। जगदीश का दाख़िला कुछ देर से हुआ था; अतः पढ़ाने को उसे मिले मि० मिश्रा। मि मिश्रा पढ़ाते-लिखाते बहुत कम थे। विद्यार्थी भी उनकी कक्षा में ऐसे ही रहते थे; पर न जाने क्या बात थी कि फ़ेल उनमें से बहुत ही कम होते थे। जगदीश एक दिन मि० श्रीवास्तव से मिलने गया तो काफ़ी देर प्रतीक्षा करनी पड़ी। वे अपने अध्ययन-कक्ष में थे। कमरे में उनकी पुस्तकों को देखकर वह हक्का बक्का-सा रह गया। स्वयं मि श्रीवास्तव की मेज़ पर बहुत-सी पुस्तकें बिखरी पड़ी थीं। वे कक्षा के लिए नोट्स तैयार कर रहे थे। जगदीश से उन्होंने कुछ उड़ती-उड़ती बातें कीं और फिर उसे विदा कर दिया। एक दूसरे दिन वह मि० हलदर से मिलने गया। हलदर मि० श्रीवास्तव की तुलना में दुबले-पतले सूखे-से आदमी थे। वे पोटेशियम परमैगनेट के पानी में अँगूर भिगोकर और उन्हें साफ़ करके खा रहे थे। मि० मिश्रा उससे बहुत अच्छी तरह मिले। लेकिन जगदीश को यह देखकर बहुत आश्चर्य हुआ कि मिश्रा जी के सारे घर में एक अँग्रेज़ी डिक्शनरी को छोड़कर दूसरी पुस्तक न थी। उसने निश्चय किया कि हलदर और श्रीवास्तव उसके साथ चाहे कैसा ही व्यवहार करें, पर अपने हित में उसे उनसे मिलते रहना चाहिए।

मि० मिश्रा जब पहले दिन क्लास लेते तो कहते, "बौइज़ प्रौमिज़ करो कि क्लास की बात कभी बाहर नहीं जायगी।" लड़के इस प्रण का निर्वाह अन्त तक करते। जगदीश सब लड़कों से पीछे बैठता था। धीरे-धीरे उसे मि० मिश्रा अच्छे लगने लगे। जितनी देर भी पढ़ाते, काम की बात पढ़ाते।

एक दिन क्लास में आये तो दूर से एक अँग्रेज़ी मैगज़ीन का एक कार्टून उन्होंने दिखाया। एक नवयुवती एक शरारती युवक को धमकाते हुए कह रही थी : मै देखूँ, तुम मेरा चुम्बन कैसे ले सकते हो! एक लड़के ने पूछा—सर, यह निमंत्रण है कि धमकी? प्रोफेसर ने बिना संकोच के कहा—दोनों? क्लास में हँसी फूट उठी। मिश्रा जी ने पढ़ाना प्रारम्भ कर दिया।

मिश्रा जी शैक्सपियर का 'टैम्पैस्ट' पढ़ाने लगे। पढ़ाते-पढ़ाते वे बोले, "मैंने बी० ए० में ही शैक्सपियर समाप्त कर लिया था।"

जगदीश को बोलना नहीं चाहिए था; लेकिन न जाने उसे क्या हुआ कि वह कह ही बैठा—"सर, मैंने पूरा शैक्सपियर इंटर में ही पढ़ लिया था।" मिश्रा जी ने उसकी ओर देखा और बैठने का संकेत किया।

थोड़ी देर बाद वे फिर बोले, "बौइज़, मैंने 'डान क्विकज़ोट' हाई-स्कूल में ही समाप्त कर लिया था।"

जगदीश फिर उठ खड़ा हुआ और बोला, "सर, मैं जब एड्थ क्लास में था 'डान क्विकज़ोट' मैने तभी पढ़ लिया था।"

"इसका मतलब यह है आप मुझसे ज़्यादा जानते हैं?"

"नो, सर।" जगदीश ने उत्तर दिया।

मि० मिश्रा बोले—कल मैंने कीट्स की एक कविता आपको पढ़ाई थी। उसमें एक स्थान पर आता है—विद किसिज़ फ़ोर।

"यस सर" एक शरारती लड़का बोला। "चार चुम्बन ही क्यों?" मिश्रा जी ने पूछा। उसने चट से उत्तर दिया, "सर, इट इज़ ए कनवीनियेंट नम्बर।" "वाह!" कहकर मिश्रा जी हँस पड़े। इसका नाम सुशील था। प्रारम्भ में इसने अपना नाम तीनों स्थानों पर लिखवा रखा था। जब मि० श्रीवास्तव की क्लास में हाज़री ली जाती तो उसका नाम पुकारा जाता—सुशील श्रीवास्तव, जब वह हलदर के क्लास में होता तो—सुशील

हलदर और जब मिश्रा जी की क्लास में तो—सुशील मिश्रा। लेकिन फ़ीस के दिन सुशील जी पकड़े गये।

प्रिंसिपल मजूमदार ने बिगड़ते हुए उससे पूछा, "तुमने ऐसा गोल-माल क्यों किया ?"

"सर, सभी लोग अपनी जाति वाले का विशेष ध्यान रखते हैं—इसलिए।"

"नॉनसेंस। हम तुमको कॉलेज से निकाल देगा।"

वहाँ श्रीवास्तव, हलदर और मिश्रा जी तीनों बैठे थे। मिश्रा जी ने कहा, "इन्हें मेरे सैक्शन में कर दीजिए। पढ़ने में कैसे ही हों, लेकिन क्रिकेट ये बहुत अच्छा खेलते हैं। तैरते भी बहुत अच्छा हैं।"

प्रिंसिपल ने हलदर की ओर देखा। वे बोले : बहुत अच्छा खेलता है। और सुशील जी कॉलेज से निकलते निकलते रह गये। मिश्रा जी ने पूछा—अब आपके नाम के आगे क्या लगाया जाय ?

"कुछ नहीं सर, अब मैं इस जातिवाद में विश्वास नहीं रखता। वैसे मेरा नाम सुशील दुबे है। लेकिन श्रीवास्तव साहब मेरे नाम के कारण नहीं, मेरी 'ओरिजिनलिटी' से घबराकर नाराज़ हो गये।"

मिश्रा जी ने पूछा, "वह कैसे मि० दुबे ?"

"एक दिन, सर, किसी प्रसंग में 'फ़ौल इन लव' शब्द उनके मुँह से निकले। मैंने कहा—सर, अँग्रेज़ी का यह ऐक्सप्रेशन ग़लत है। श्रीवास्तव साहब की कुछ समझ में नहीं आया। बोले—इसमें ग़लत क्या है ? अँग्रेजी जैसी भाषा विश्व में दूसरी नहीं। उसमें एक-एक भाव के न जाने कितने शेड्स के लिए पृथक-पृथक शब्द हैं। मैंने कहा—सर, मुझे एक आपत्ति है। उन्होंने पूछा – क्या ? मैंने कहा—सर, ए मैन नैवर फ़ौल्स इन लव, ही ऑलवेज़ राइज़िज़। सारी क्लास हँस पड़ी। इसमें मैंने कोई ग़लत बात कही, सर ?"

मिश्रा जी ने हँसकर कहा, "नहीं। किसी दूसरे देश में होते तो इसी बात पर तुम्हें डाक्टरेट मिल गयी होती।"

"यही तो मेरा मिसफ़ौरचून है, सर। यहाँ मौलिकता का कोई मूल्य नहीं।"

मि० मिश्रा फिर पढ़ाने लगे। दुबे मिश्रा जी के मित्रों की परिधि में आ गया। संध्या समय जगदीश दुबे से मिला और दोनों परिचित हो गए। मिश्रा जी और उनके विद्यार्थी मित्र कभी-कभी संध्या समय गंगा में स्नान करने जाते और देर तक तैरते रहते।

४

जगदीश की आर्थिक समस्या एक प्रकार से हल हो गई थी। इसे ईश्वर का अनुग्रह समझिए, इसमें नियति का हाथ मानिये या एक चांस कहिए: लेकिन यह सत्य था कि उसके पैर के नीचे पृथ्वी थी; ऊपर छत। वह यह तो नहीं समझता था कि यह स्थिति सदैव बनी रहेगी। वह स्वयं इसके पक्ष में नहीं था और जल्दी से-जल्दी इसे समाप्त करना चाहता था; लेकिन कुछ दिनों के लिए वह अपने को सुरक्षित अवश्य समझ रहा था। उसने निश्चय किया कि इस अनुग्रह का वह दुरुपयोग नहीं करेगा। अपने छोटे-से जीवन में इस बात का अनुभव तो उसे हो ही गया था कि संसार में वास्तविक दुःख पैसे का ही है। यदि मनुष्य के पास पैसा हो तो वह अपने अस्सी प्रतिशत दुःखों को मिटा सकता है। जीवन में सबसे महत्वपूर्ण समस्या नित्यप्रति की आवश्यकताओं की पूर्ति ही है। इसके उपरांत शरीर का कष्ट आता है। मनुष्य शरीर से स्वस्थ हो, तो वह बहुत कुछ कर सकता है। लेकिन दरिद्र अथवा रोगी होना जीवन का सबसे

बड़ा अभिशाप है। नयन का अस्थायी आश्रय पाकर वह एक प्रकार से कुछ दिन के लिए निश्चिंत हो गया था।

नयन को ट्रेन में देखकर उसे उत्सुकता हुई थी और उसे सामने पाकर वह मुग्ध हो उठा था। सच बात यह है कि वह नयन के प्रति आकर्षित था। उसके घर आकर उसे पता चला कि नयन बहुत सम्पन्न है, अपनी सम्पत्ति की एक मात्र स्वामिनी है और स्वतंत्र है। उसके व्यवहार में एक प्रकार की दूरी का उसने अनुभव किया। जब-तब कोमलता का व्यवहार करते हुए भी उसके स्वभाव में प्रारम्भ से ही एक प्रकार की 'कोल्डनैस' उसने पायी। इससे आकर्षण बढ़ने के स्थान पर कम होने लगा। उसने सोचा इस दूरी को वह कैसे भी मिटा नहीं सकता। प्यार तो बराबर वालों में होता है। नयन के प्यार के सपने देखना दुराशा मात्र है। वह जो उसे ले आयी है, उसके पीछे दया की भावना चाहे न हो; पर सम्पन्न व्यक्तियों की सनक या नारी की ख़ामख़याली अवश्य है। नारी किसमें क्या देखती है, यह कोई नहीं जानता। शायद वह स्वयं भी नहीं जानती। अतः इस घर में घुसकर ऐसा कुछ नहीं करना चाहिए, जिससे जल्दी ही निकलना पड़े। हो सके तो बाहर अपनी स्थिति को किसी प्रकार दृढ़ करना चाहिए। किसी और दिशा से दोनों के बीच जो दूरी है, जो अन्तर है, उसे भरना चाहिए। इसके उपरान्त उसने निश्चय-सा ही कर लिया कि वह नयन के अनुग्रह का विरोध तो नहीं करेगा; लेकिन अपनी ओर से कोई बात नहीं बढ़ायेगा। एक प्रकार से अपना मन उस ओर से उसने थोड़ा खींच ही लिया। जान-बूझकर दुःख मोल लेने से क्या लाभ है, उसने सोचा।

लेकिन मनुष्य के चरणों के नीचे धरती हो और सिर पर एक छत और शरीर उसका स्वस्थ हो, तो फिर उसे और न जाने क्या-क्या सूझता है। यही दशा आजकल जगदीश की भी थी।

नयन की कोठी मुख्य सड़क पर थी। उससे थोड़ी दूर आगे चलकर

एक चौराहा था। उसके आमने-सामने जो दूर तक चौड़ी सड़क गयी थी उसके दोनों ओर लम्बे घने छायादार वृक्ष थे। जगदीश कभी कभी इन सड़कों पर टहलने निकल जाता था। कानपुर की घनी आबादी में यह छोटी सी सड़क वहाँ के अत्यन्त रम्य स्थलों में थी। दूर-दूर पर कोठी या बँगले बने हुए थे। पहले दिन वह वृक्षों और मकानो के नाम-प्लेटों पर दृष्टि डालता चला गया। लेकिन रोज-रोज इन सूने स्थानो को देखकर उसे उकताहट-सी हुई। घूमने वाले भी इस बीच उसे बहुत कम मिलते थे अधिकतर वृद्ध लोग। हो सकता है कि तब तक इन मकानों में रहने वाले उठते ही न हों। उसे लगा कि सुन्दर वस्तु भी रोज-रोज सुन्दर नहीं लगती। बिना मनुष्य के प्रकृति क्या है? यह भी हो सकता है कि जगदीश के मन में प्रकृति से अधिक किसी सुन्दर मुख को देखने की इच्छा जग उठी हो।

एक दिन जब वह थोड़ी ही दूर टहलकर लौटने वाला था तो दूर पर उसे एक लड़की दिखाई दी। वह लौट पड़ा और काफी दूर तक अकारण निकल गया। वहाँ से लौटा तो फाटक पर कोई न था। बँगला किन्हीं डाक्टर माथुर का था। दूसरे दिन से उसे अपने टहलने में रस आने लगा। वहाँ से निकलता तो वह उसे दृष्टि उठाकर देख लेता। फाटक से थोड़े हटकर एक छोटा सा लॉन था। बायीं ओर को एक गोल बरामदा, जिसके कोने पर ऊँचे खभे थे। उसके बाद कमरे। लड़की कभी लॉन में टहलती, कभी बरामदे में खड़ी, कभी फाटक पर झुकी हुई मिलती। जिस दिन वह नहीं दिखाई देती थी, उस दिन जगदीश को एक प्रकार के अभाव का सा अनुभव होता और उसका दिन हल्की उदासी में ही बीतता। इस प्रकार एक महीना व्यतीत हो गया।

रात वर्षा हुई थी और प्रभात होने से पहले ही बादल खुल गए थे। जगदीश सोचने लगा — टहलने जाय या न जाय; लेकिन मन नहीं माना और पैर डाक्टर माथुर के बँगले की ओर उसे ले ही गए। लड़की वहाँ न

थी। हो सकता है अभी उठी न हो और लौटने पर दिखाई दे। वह आगे बढ़ गया। सूर्योदय हो चुका था; पर मौसम इतना सुहावना था कि लौटने को मन ही नहीं कर रहा था। सहसा आकाश में काले बादल घिर आए और छितराकर धुँधले हो उठे। शीतल बयार बहने लगी। झोंके कुछ तीव्र हुए। वृक्षों के पत्ते हिलने लगे। कुछ टूटकर सड़क पर उड़ने लगे। फुहारें! और फुहारें! और अधिक फुहारें! जगदीश ने चरणों की गति तीव्र की और वह अपने कमरे की ओर लौटने लगा। लेकिन डा० माथुर के बँगले के सामने आकर उसके पैर रुक गये। वह फाटक के ठीक सामने, सड़क की दूसरी ओर एक नीम के वृक्ष के नीचे खड़ा हो गया। थोड़ी देर वहाँ उसकी रक्षा हुई। ऊपर शाखाएँ माफी मोटी थीं। पत्ते घने थे। जिस तने से लगकर वह खड़ा था वह धीरे-धीरे भीगने लगा। वर्षा का वेग बढ़ा तो जगदीश कभी इधर खिसकता, कभी उधर। होते-होते पूरा तना भीग गया और जगदीश का कुर्ता और धोती धीरे-धीरे भीगने लगे। इतने में उसकी दृष्टि सामने जो पड़ी तो देखा बरामदे में वही लड़की टहल रही है। लड़की ने भी जगदीश को देखा। सीधे हाथ की हथेली को माथे की बायीं ओर से सीधी ओर तक उसने खींचा, सिर को एक झटका दिया और जल्दी से फाटक खोलकर लौट गयी। जगदीश ने निश्चय किया कि थोड़ी रिस्क लेनी चाहिए और वह बिना कुछ सोचे फाटक के भीतर घुस आया और बरामदे में आकर खड़ा हो गया। लड़की भीतर के कमरे से एक कुर्सी उठा लाई।

"धन्यवाद। मैं बैठूँगा नहीं। खड़ा ही रहूँगा।" और वह खड़ा ही रहा।

"आप कहीं यहाँ पास ही में रहते हैं क्या?" लड़की ने पूछा।

"जी।"

"क्या करते हैं?"

"कॉलेज में पढ़ता हूँ।"

"यह आपका अपना मकान है ?"

"जी नहीं। किराये पर एक कमरा ले लिया है।"

"किसका मकान है ?"

"किसी महिला का है।"

"क्या नाम है उनका ?"

जगदीश ने समझ लिया उत्तर देने में भूल हो गई। वह सँभल गया। बोला, "नाम तो मैंने पूछा नहीं। हॉस्टिल में जगह नहीं मिली; इसी से एक कमरे की खोज में था। वह यहाँ मिल गया। होस्टिल में कभी जगह हुई तो चला जाऊँगा।"

"कैसी हैं—मेरा तात्पर्य स्वभाव की कैसी हैं ?"

"बुढ़िया है काली-कलूटी। स्वभाव से कर्कशा है। दिन भर खाँव-खाँव करती रहती है।"

जगदीश को झूठ बोलने में बहुत आनन्द आ रहा था और वह मन में हँस रहा था। वर्षा अभी हो ही रही थी। इतने में डाक्टर माथुर इस बात-चीत को सुनकर बाहर निकल आये। वे उस समय शेव कर रहे थे।

"पापा, ये सामने खड़े पेड़ के नीचे भीग रहे थे। मैंने बुला लिया।" लड़की ने अपने पिता से कहा।

"अच्छा किया। चाय बन गई। इन्हें भी पिलाओ।" फिर उन्होंने आवाज़ दी—'बंसी' और भीतर चले गये। बसी शायद उनके नौकर का नाम था।

"आपका क्या नाम है ?"

"मेरा नाम प्रीति है।"

"नाम तो बहुत अच्छा है। इधर तो इतने अच्छे नाम सुनने को मिलते ही नहीं।"

डाक्टर ने भीतर जाकर संभवतः पत्नी से भी कहा। भीतर से एक पतली सी आवाज़ आयी—"प्रीति।"

प्रीति चलने लगी तो जगदीश ने टोका, "आप न जाइए। मैं चाय नहीं पीने का।"

"क्यों ?"

"अच्छा, चाय मैं पी लूँगा। लेकिन आपको नहीं जाने दूँगा।"

"प्रीति ने मुस्कराकर पूछा, "क्यों ?"

"जितनी देर आप चाय लाने में लगायेंगी, उतनी देर यहीं खड़ी रहिए न !"

बसी शायद इधर-उधर कहीं हो गया था, या घर से अभी आया नहीं था। इतने में प्रीति की मा दो प्याले चाय लेकर आती दिखाई दी। ट्रे उसने कुर्सी पर रख दी। डाक्टरनी की अवस्था पैंतीस के आस-पास होगी। वे मझोले क़द की दुबली-पतली महिला थीं। दूर से देखने पर उनकी अवस्था के सम्बन्ध में धोखा हो सकता था। यदि अवस्था का ध्यान न रखा जाता तो यह कहना कठिन था कि मां और बेटी में से कौन अधिक आकर्षक है। अपने यौवन-काल में निश्चित रूप से वे बहुत आकर्षक रही होंगी। जगदीश ने उन्हें नमस्ते की। आशीर्वाद देकर वे भीतर चली गयीं।

वर्षा कुछ थम गयी थी। जगदीश ने चाय पी और चलने लगा। प्रीति फाटक तक आई।

फाटक पर पहुँचकर जगदीश ने आँख भरकर प्रीति को देखा। न जाने कहाँ से अचानक वर्षा की एक हल्की फुहार उन दोनों को को भिगो गयी। प्रीति के कपड़े भीग गये और उसने हल्की सिहरन का अनुभव किया।

चलते हुए जगदीश ने कहा, "प्रीति, मैं जानता नहीं कि तुम कौन हो और क्या हो; लेकिन मैं तुम्हें प्यार करता हूँ।"

प्रीति आँख फाड़कर उसकी ओर देखने लगी। बोली, "आपका दिमाग़ कुछ ख़राब हो गया है क्या ? आप होश में तो हैं ?"

"दिमाग ख़राब भी हो गया होगा तो डाक्टर का घर है, ठीक हो जायगा।"

इतना कहकर वह फाटक के बाहर हो गया।

५

सनातनधर्म कॉलेज के पास ही नवाबगंज का बाज़ार था। इसमें आवश्यकता की सभी वस्तुएँ मिल जाती थीं। बहुत आवश्यक होने पर ही लोग मेस्टन रोड या अन्यत्र कहीं जाते थे। इस बाज़ार में चाय की कई दूकानें थीं। इनमें सबसे प्रसिद्ध दूकान 'गुरु' की थी। गुरु पंजाबी था। उसका वास्तविक नाम गुरुवचनसिंह था। बोर्ड पर उसने पूरा नाम लिखवा रखा था—गुरुवचनसिंह पंजाबी। प्रारम्भ में लोग उसे गुरुवचन कहते थे। फिर केवल गुरु रह गया। यह दूकान चाय के लिए इतनी प्रसिद्ध हुई कि अच्छे से अच्छे रैस्ट्रांओं में चाय पीने वाला भी एक बार गुरु की दूकान में अवश्य आता था। दूकान में अक्सर विद्यार्थियों की भीड़ रहती। गुरु न किसी का हिसाब लिखता था और न किसी से पैसे माँगता था। चाय पीने के बाद लड़के जो दे जाते, वह चुप से रख लेता था। एक कोने में बैठा वह सदैव हँसता रहता। इतने पर भी कभी किसी ने बेईमानी की हो, या गुरु का पैसा मार लिया हो, ऐसा नहीं सुना गया। जगदीश को जब इस दूकान का पता चला तो वह स्थायी रूप से इसका प्रेमी हो गया।

चाय पीने वालों की भी अपनी विशेषताएँ होती हैं और चाय की दूकानों के भी अपने इतिहास। सभी दूकानों और छोटे रैस्ट्रांओं की घटनाओं पर यदि व्यक्ति ध्यान दे तो पता चलेगा कि कुछ सामान्य विशेष-

ताएँ उनमें अनिवार्य रूप से पायी जाती हैं। थोड़े दिन इधर-उधर भटक-कर लोग अपनी दूकान या अपना रैस्ट्रां चुन लेते हैं, और अपने-अपने मन में उसे सर्वश्रेष्ठ समझते हैं, यहाँ तक कि उसे लेकर दूसरों से झगड़ा कर सकते हैं। पान की दूकानों के सम्बन्ध में भी यही बात लागू होती है। इस प्रकार सभी दूकानों के कुछ स्थायी ग्राहक हो जाते हैं। किसी में आप अधिकतर विद्यार्थियों को, किसी में वकीलों और डाक्टरों को और किसी में अन्य बुद्धिजीवियों को पाइयेगा। फिर सभी के अपने-अपने ग्रुप बन जाते हैं। रैस्ट्रांओं और काफी हाउस. में लोग चाय और काफी पीने तो जाते ही हैं; अपने दुःख को भुलाने भी आते हैं। जो लोग छोटी छोटी मंडलियों में बैठे हैं, उनकी बातों को यदि ध्यान से आप सुनें तो उनमें 'फ्रस्ट्रेशन' के न जाने कितने प्रसंग रहते हैं। चाय पीने को जगदीश सदैव से ऐसे 'इन्नोसेंट प्लैजर' के रूप में स्वीकार करता आया है जिसकी तुलना और किसी पेय वस्तु से की ही नहीं जा सकती।

जगदीश पहले अकेला गुरु की दूकान में बैठकर चाय पीता रहा। उसे किसी से बात करनी है, इस ओर उसका ध्यान ही नहीं गया। एक दिन कुछ भीड़ अधिक थी और एक लड़का इधर उधर स्थान खोज रहा था। जगदीश ने उसकी ओर देखा तो वह उधर ही खिंचकर चला आया।

"क्या मैं यहाँ बैठ सकता हूँ?"

"निश्चित रूप से।"

"मेरा नाम श्याममोहन चड्ढा है।"

"मेरा जगदीश।"

"आप क्या शुद्ध हिन्दी के पक्षपाती हैं?"

"आपने कैसे जाना?"

"इस 'निश्चित' के प्रयोग से।"

जगदीश हँस पड़ा। श्याममोहन ने कुर्सी खींच ली।

"क्या कहना चाहिए था मुझे ?"

" 'ख़ुशी से' सब कहते हैं—ज्यादा से ज्यादा आप 'प्रसन्नता से' कह सकते हैं।"

"इससे भी तो वही अर्थ झलकता है।"

"जी नहीं, इससे यह झलकता है कि आपने बहुत बेमन से मुझे बिठाया है, दूसरे, आप स्वभाव से थोड़े अहंवादी भी हैं..."

जगदीश ने श्याममोहन की ओर देखा और उसके लिए चाय मँगवायी। जब वह चला गया तो जगदीश सोचता ही रह गया कि क्या वह अपनी बातचीत से लोगों को दूरी का आभास देता है ? क्या वह सचमुच अहंवादी है ?

श्याममोहन से प्रायः भेंट होने लगी। थोड़े दिनों में वे मिलकर चाय पीने लगे और अपने सुख-दुख की चर्चा करने लगे। चड्ढा सिगरेट बहुत पीता था और जेब में कागज-पेंसिल रखता था और कभी-कभी चाय पीते पीते सवाल निकालता जाता था। जगदीश को इन बातों से बहुत उलझन होती थी। एक दिन तंग आकर जगदीश ने उससे पूछा, "हमारे कॉलेज में तो मैथमैटिक्स है नहीं, फिर तुम यह क्या करते रहते हो चड्ढा ? या तो तुम इस बोरियत के काम को दूर करो, नहीं तो तुम्हारे साथ मेरा चाय पीना बन्द हो जायगा।"

अपने बायें हाथ से अँगूठे और बीच की उँगली में फ़ासला बनाते हुए जैसे वह किसी चीज़ को नाप रहा हो, श्याममोहन ने कहा, "यह मैथमैटिक्स नहीं जनाब, ये प्यार के क़दम हैं।"

"तुम और प्यार चड्ढा !" जगदीश ने आश्चर्य प्रकट किया।

"जनाब।"

"इसकी व्याख्या कीजिये।"

"इण्टरमीडिएट तक मेरे पास मैथमैटिक्स रही है। जितनी भी परीक्षाओं में मैं बैठा हूँ, उनमें प्रश्नपत्रों में प्रायः लिखा रहता था—कोई पाँच

प्रश्न कीजिए—और मैं दो घंटे में पूरे प्रश्न करके लिख आता था—कोई पाँच प्रश्न देखिए—। मैथमैटिक्स इज़ ए जैलस वाइफ़ प्लीज । दो साल से अभ्यास छूट गया है। यहाँ एक साहबज़ादी हैं। उन्हें मैथमैटिक्स पढ़ाता हूँ। पचास रुपये महीने पाता हूँ और...''

"और क्या ?"

"ऊपर से प्यार का आनन्द लेता हूँ।"

"तुम प्यार कर ही नहीं सकते चड्ढा।"

"आप कर सकते हैं ?"

"मेरी बात छोड़ो। मगर प्यार और मैथमैटिक्स का कोई सम्बन्ध नहीं है।"

और इसके उपरांत दोनों कभी कभी रोमांस की चर्चा करने लगे।

एक दिन देखा गया कि चड्ढा के हाथ में बहुत से काग़ज़ हैं। पूरा हल्के नीले रंग का पैड भरा हुआ था।

"इतना लम्बा पत्र तुम्हें किसने लिखा है चड्ढा ? तुम्हारी प्रेमिका ने ?"

"नहीं, पत्र नहीं है। लेकिन कुछ है जिसमें प्रेम की बातें हैं। तुम देखो न !"

जगदीश ने देखा छोटे-बड़े गद्य गीत थे। गद्य गीत किसी लड़की ने लिखे थे यह स्पष्ट था। एक आग थी जो धधकना चाहती थी। भावुकता की मात्रा उनमें बहुत अधिक थी। अभिव्यक्ति में संयम से काम लिया गया था। अनेक स्थानों पर प्रतीकों का उपयुक्त प्रयोग हुआ था। कुछ प्रतीक तो एकदम नये और अछूते थे। फिर भी कला बहुत निखरी हुई नहीं थी। उसमें सभी प्रकार का कच्चापन था। सबसे आश्चर्य की बात यह थी कि लेखिका के पास शब्दों का भण्डार बहुत सीमित था। शब्द अपने अशुद्ध रूप में भी अनेक स्थानों पर लिखे हुए थे।

"ये तो किसी ने गद्य-गीत लिखे हैं।"

"यह क्या बला है ?"

"यह गद्य और काव्य के बीच का एक नया माध्यम है। जब लेखक अपनी भावना को छंद में नहीं ढालना चाहता तो उसे यह रूप प्रदान कर देता है। तुमने टैगोर की गीतांजलि तो पढ़ी होगी ?"

"मैं समझ गया। तुम इन गद्य-गीतों की कमियों को दूर नहीं कर सकते ?"

"कर सकता हूँ। एक सप्ताह लगेगा।"

"एक सप्ताह तो बहुत है।"

"तो अपने पास रखिए इन्हें।"

"लेकिन देखो खो न जायँ।"

"खो जायँगे तो दूसरे लिख लेंगी।"

"नहीं नहीं, सारा काम ही बिगड़ जायगा।"

"किसने लिखे हैं ऐसे सुन्दर गद्य-गीत ?"

"उन्हीं ने।" कहकर श्याममोहन थोड़ा सकुचाया।

तो श्याममोहन चड्ढा सचमुच प्रेम में है। यह कोई कल्पना नहीं है। लड़की भी प्रेम में है, इस बात का प्रमाण ये गद्य-गीत हैं। श्याममोहन रूप की प्रशंसा करते-करते थकता नहीं। ऐसी आँखें किसी की नहीं, बाल किसी के नहीं, ओठ किसी के नहीं, अँगुलियाँ किसी की नहीं, चाल किसी की नहीं, हँसी किसी की नहीं ! रात-दिन यही चर्चा—किस तरह बैठती हैं, किस तरह देखती हैं, किस तरह बात करती हैं ! बस, उनके पास बैठो तो ऐसा लगता है जैसे धरती पर स्वर्ग उतर आया हो, जैसे अंधेरे में चाँदनी खिल उठी हो, जैसे बरसात में इंद्रधनुष उग आया हो, जैसे पतझर में कोई नया फूल खिल उठा हो। सौभाग्यशाली है चड्ढा जो ऐसे व्यक्ति के सम्पर्क में है।

एक दिन श्याममोहन ने आकर सूचना दी, "उन्होंने तुम्हें बुलाया है।"

"लेकिन वे तो मुझे जानती नहीं ?"

"नहीं, मैंने परिचय दे दिया है। तुमने जो परिवर्तन किए थे, वे उन्हें बहुत पसन्द आये; लेकिन बहुत से स्थानों पर बात उनकी समझ में नहीं आयी, इसी से पूछना चाहती हैं। कह रही थीं—उन्हें लाओ न एक दिन ! मैंने तुम्हारी ओर से वायदा कर दिया है। अब तो चलना ही पड़ेगा।"

"और मैंने तेरी प्रेमिका को छीन लिया तो ?"

"तो मैं और ढूंढ़ लूंगा।"

"अगर चड्ढा तू ऐसी बात सोच सकता है, तो तू प्यार नहीं करता।"

"अच्छा, न सही; लेकिन चलो तो।" ऐसा कहकर चड्ढा हँस पड़ा।

६

एक दिन संध्या समय जब जगदीश कॉलेज से लौटा तो उसने पाया उसका कमरा कुछ बदला हुआ है। लकड़ी की एक लम्बी आल्मारी आ गई है। उसमें उसके नाप की कुछ क़मीज़ें, पैंट और कुछ टाइयाँ भी है। एक शैल्फ़ में पुस्तकें ढंग से रखी हुई है। सुराही और ग्लास रखने के लिए एक स्टैन्ड है।

रात को जब सब सो जाते थे तब जगदीश साबुन से अपने कपड़े धोकर भीतर ही सुखा देता था। इस काम को करने में वह कोई बुराई नहीं समझता था। फ़ीस से जो रुपये बचे थे, वे उसने भरोसे को लौटा दिये थे। वह सोच ही रहा था कि पाजामे और बनवा ले। कुर्ते भी वह बनवाना चाहता था। पर पुराने कपड़े ग़ायब हो गए। आ गए उसके स्थान पर एकदम नए कपड़े। एक सप्ताह हुआ साबुन से रात में वह अपने कपड़े धोकर सुखा रहा था कि एक छाया-सी उसने दूर पर देखी थी। निश्चित रूप से नयन उधर से निकली होगी। लेकिन इस प्रकार कब तक चलेगा ?

भरोसे से जगदीश ने बहुत-सी बातें जाननी चाही हैं। भरोसे कुछ बताता नहीं। अभी इतना ही पता चल पाया है कि नयन के पिता बहुत धनी आदमी थे। तीन वर्ष हुए उनकी मृत्यु हो गई। नयन की मा की भी इसी साल मृत्यु हो गई। भरोसे पुराना नौकर है और नयन को उसने गोद में खिलाया है। इसके आगे जगदीश पूछता ही क्या ? पता नहीं वह क्या सोचे ! सोच सकता है कि जो व्यक्ति इतना तक नहीं जानता, वह यहाँ रहता क्यों है ! लेकिन भरोसे है बहुत अच्छा नौकर। उसे किसी बात का कष्ट नहीं होने देता। खाने के समय कितना आग्रह करता है।

जगदीश कुर्सी पर बैठा बहुत-सी बातें सोच रहा है। वह कॉलेज के प्रिंसिपल से मिला था। कई संस्थाएँ कॉलेज के साधनहीन विद्यार्थियों को स्कॉलरशिप देती थीं। लेकिन ये उनके लिए थे जो कुछ दिन वहाँ रहकर अपनी प्रतिभा का परिचय देते थे। जगदीश तो अभी आया ही है। फिर भी प्रिंसिपल उससे बहुत प्रभावित हैं और उन्होंने एक ट्यूशन के लिए अपने एक मुसलमान मित्र के नाम पत्र दिया है।

कमरे म नयनतारा ने प्रवेश किया। जगदीश उठकर खड़ा हो गया। उसे सचमुच बड़ी प्रसन्नता हुई।

"बैठिए। यह क्या करते हैं !"

जगदीश ने प्रिंसिपल का पत्र नयन को दिखाया। पढ़कर उसने उसे लौटा दिया।

"आपने मुझे स्मरण किया था ?"

"हाँ।"

"इस काम के लिए तो नहीं ही बुलाया ?"

"नहीं।"

"फिर ?"

"आप मेरी इतनी चिंता क्यों करती हैं ?" जगदीश ने सहसा पूछा।

"आपने ही तो कहा था कि संसार में आपकी चिंता करने वाला कहीं कोई नहीं है।"

"कब तक करेंगी ऐसा?"

"जब तक आपकी देखभाल करने वाला कोई दूसरा प्राणी आपको नहीं मिल जाता।"

"अगर वह जीवन भर न मिले तो?"

"ऐसा नहीं होता। जल्दी ही मिल जायगा।"

"आपको मालूम है।"

"हाँ मुझे मालूम है।"

"कैसे?"

"अब इस बात को छोड़िए। मिल जायगा तो मैं ही आपको बता भी दूँगी।"

जगदीश चुप हो गया। फिर उसकी ओर देखता हुआ बोला, "कपड़े तो आपने भिजवा दिए। लेकिन मैं गाँव का आदमी हूँ। आपको मालूम होना चाहिए कि टाई मुझसे बाँधनी नहीं आती।"

"तो टाई बाँधना मैं सिखाऊँगी?"

"हाँ। और भी जो मुझसे नहीं आता, वह सब मैं आपसे सीखूँगा।"

"आप समझते हैं वह सब मैं आपको सिखा सकती हूँ?"

"हाँ।"

"कैसे जानते हैं?"

"अब इस बात को छोड़िए..."

नयन हँस पड़ी। बोली, "अच्छा कहाँ है टाइयाँ?"

"जहाँ रखी हों, वहाँ से उठाइए न!"

"कौन सी बाँधेंगे?"

"जो आप ठीक समझें।"

"आप बताइए न?"

"मेरे लिए सब बराबर हैं।"

"फिर भी ?"

"सच, मेरे लिए सब बराबर हैं।"

नयन ने एक बार फिर उसकी ओर देखा। फिर अपने गले में टाई बाँध कर जगदीश को उसने समझाया। धीरे से वह जगदीश के पास आई। लेकिन बहुत प्रयत्न करने पर शरीर कुछ छू ही गया। जगदीश आँख मींच कर चुप खड़ा रहा। उसने कुछ कहा नहीं।

नयन ने टाई में नॉट दी।

"देखेंगे नहीं तो सीखेंगे कैसे ? आँख खोलिए न !"

"इतनी जल्दी सीखने की क्या आवश्यकता है ?"

"नहीं सीखेंगे तो बाँधेंगे कैसे ?"

"अपने हाथ से अब मैं टाई बाँधूँगा ही नहीं। बताइए, आप बाँध जाया करेंगी न ?"

"बाँध जाया करूँगी।"

इतनी बातें आँखें मीचे ही हो गईं। जगदीश ने आँखें खोलीं तो देखा नयन वहाँ नहीं है।

बाहर तारे कुछ उजले होकर मुस्करा रहे हैं। दूर पर किसी अट्टालिका का आलोक एकदम बुझ गया है। पवन के झोंके लंबी साँस ले रहे हैं।

जगदीश को जीवन का बहुत कम अनुभव था। नारी और प्रेम के सम्बन्ध में उसे कोई जानकारी न थी। गाँव का रहने वाला था और जहाँ से उसने इंटर किया था, वह भी कोई बहुत बड़ा शहर न था। आधुनिकता का वहाँ कोई विशेष लक्षण न था। कॉलेज में कोई लड़की नहीं पढ़ती थी। लड़कियों का इंटर कॉलेज अलग था। अतः अब तक उसका जीवन नारी के कोमल सम्पर्क के बिना ही बीता था। सच बात यह है कि नारी के सम्पर्क में आने में उसे एक प्रकार के संकोच का अनुभव होता था। गाँव में पड़ौस में कई महिलाएँ थीं जिन्हें वह भाभी कहता था। मकान एक-

दूसरे से सटे हुए थे; अतः जब कभी वह छत पर चढ़कर उनके घर में झाँकता या वे छत पर आकर उसकी मा से बातें करतीं, तो उससे भी मज़ाक कर बैठतीं। मजाक विवाह को लेकर चलता। उसमें उसे कुछ रस न आता। कभी कभी किसी विशेष अवसर पर गीत गाए जाते और रतजगा होता और वह गाँव में होता तो वे गीत उसके कानों में भी पड़ते। वह बाहरी कमरे के सामने कुएँ के पास पक्के चबूतरे पर सोता था। पर प्रयत्न करने पर भी नींद न आती। इन गानों में कभी कभी बड़े रसपूर्ण गाने होते थे। न जाने कैसे अश्लील संकेत उनमें रहते। ऐसे गाने प्राय: रात ढलने पर गाए जाते। सुना तो यहाँ तक गया था कि विवाह के अवसर पर जब बारात गाँव से बाहर जाती, तो तीन दिन गाँव की औरतें ऐसे ही गीत गाया करती थीं। इन गीतों के साथ नाच भी होता। गाँव के मनचले लड़के आसपास छिपकर इन गीतों को सुनते। कोई कोई तो ऐसा भी प्रबन्ध कर लेता कि नाच देख सके। एकाध बार उसके समवयस्क मित्रों ने साथ चलने के लिए उससे भी आग्रह किया; पर वह सहमत नहीं हुआ। गीत जब उसके घर में होते तो उनकी समाप्ति पर उसे बड़ी उलझन होती। औरतों के निकलने का रास्ता उसके पास से ही था और उनमें से कोई-कोई उसे छूकर जो मन में आता कह जाती थी।

बारात जब उसके गाँव में आती तब तो और भी ऊधम मचता। वह ईश्वर से प्रार्थना करता कि उसके पड़ौस में किसी लड़की का विवाह न हो। उन विवाहों में जो गालियाँ गाई जातीं, उनकी चर्चा न करना ही अच्छा होगा। हे राम! किसने उन्हें लिखा होगा। कैसे ये औरतें गाती हैं और कैसे ये पुरुष सुनते हैं और आश्चर्य यह कि सब हँसते हैं। कोई लज्जा या संकोच का अनुभव नहीं करता।

लेकिन ये संस्कार बहुत क्षीण होते हैं। इनसे आदमी कुछ सीखता नहीं।

जब वह इंटर में आया तो उसके होस्टिल में कुछ विद्यार्थी ऐसे भी थे

जिनका विवाह हो गया था। वे अपने अनुभव अपने मित्रों को सुनाया करते। उनमें एक थे निरंजन शर्मा। शर्माजी के सम्बन्ध में प्रसिद्ध था कि वे धार्मिक विचारों के हैं। जब देखो तब उनके हाथ में गीता का गुटका पाया जाता। शर्मा जी विवाह करके लौटे तो मित्रों ने उन्हें घेर लिया।

"सुनाइए शर्मा जी कैसी हैं ?"

"बहुत सुन्दर हैं जैसे गीता का श्लोक, बहुत चंचल है जैसे यमुना की तरङ्ग, बहुत कम बोलती हैं।"

"तब तो आपको बहुत उलझन हुई होगी ?"

"बहुत कोशिश की। कुछ हुआ नहीं।"

"अमाँ यार, झूठ न बोलो। असली बात बताओ।"

"पता चला वे भी कुछ धार्मिक प्रवृत्ति की है। जब देखो तब रामायण, भागवत, सुखसागर हाथ में लिए बैठी हैं। एक दिन पास से निकलीं तो मैंने धीरे से कहा—आइए, आज आपको गीता पढ़ा दें। इस बात पर राज़ी हो गईं।"

मित्र लोग कुछ खिसक आए। उत्सुकता से पूछा, "फिर क्या हुआ शर्मा जी ?"

"थोड़ी देर तो गम्भीरता से हम गीता के श्लोकों का अर्थ समझाते रहे; लेकिन उनकी ओर देखा तो मन चंचल हो उठा। हमने खींच कर उन्हें कलेजे से लगा लिया और ओठों पर चूम लिया। धीरे से बोलीं, "हाय राम, यह गीता पढ़ाई जा रही है !"

"जय हो निरञ्जन शर्मा की ! जय हो गीता की !" कह कर मित्र लोग विदा हो गए।

उन विद्यार्थियों में एक ज़मींदार का लड़का भी था। वह कहीं से अश्लील चित्रों का एक सैट ले आया था। उसका कहना था कि वे सीधे पेरिस से आते हैं और लाहौर के कुछ दूकानदार केवल इन्हीं को बेचने का धन्धा करते हैं। उसने जगदीश से पूछा भी था : क्या वे उसे चाहिए ?

जगदीश उस पर बहुत बिगड़ा। लेकिन लड़का एक ही दुष्ट था। एक रात उसके तकिये के नीचे 'विवाहित आनंद' की एक प्रति छिपाकर रख गया। जगदीश ने उसे फाड़कर खिड़की के बाहर फेंक दिया। दूसरे दिन जब प्रातःकाल वह अपने कमरे से बाहर निकला, तो उसने देखा उसके दरवाज़े की किवाड़ों पर खड़िया से लिखा था—भगवन!—भगवन वे लड़के कहलाते थे जो खोपड़ी घुटी रखते या जिनके सिर के बाल बहुत छोटे होते थे; मोटा कपड़ा पहनते और पैरों में चमरौधे का जूता या चट्टी खटखटाते फिरते और साथ ही जो औरत के नाम से चिढ़ते थे। तो जगदीश अब जिधर से भी निकलता, लड़के कहते : आइए भगवन!

यह था नारी के सम्बन्ध में जगदीश का अनुभव। इसी से अभी-अभी जो घटना घट गई, उसका सुख वह समझ नहीं पा रहा था। नयनतारा के रूप के प्रभाव और वातावरण के इंद्रजाल ने मिलकर उसके मन में एक प्रकार की मादकता, कोमलता और थ्रिल की सृष्टि कर दी थी। सब मिला कर उसे बहुत अच्छा लग रहा था। नयन की साड़ी ही उससे थोड़ी छू गई थी। मात्र इतने से उसे विलक्षण उष्णता का अनुभव हुआ।

इतने में बाहर बादलों के गरजने की ध्वनि सुनाई दी। ठंडी हवा के झोंके आने लगे और खिड़कियों से स्पष्ट दिखाई दिया बूंदें पड़ रही हैं। वर्षा कुछ घनी हुई और बिजली चमककर खिड़की के पार आने लगी। जगदीश खिड़की के पास आकर खड़ा हो गया और देर तक प्रकृति का यह खेल देखता रहा।

उसकी आँखों के सामने एक दृश्य घूम गया।

वह बारह वर्ष का है। अपने गाँव की नदी के किनारे वह चुप बैठा है। इतने में उसके साथी उसके पास आते हैं। दूर पर एक मल्लाह नाव को कठिनाई से चढ़ाव की ओर खींचे लिए जा रहा है। इन्हीं में लल्लू नाम का एक लड़का है जो उससे बहुत ईर्ष्या करता है। ये लोग खेलते-खेलते थक गए हैं।

लल्लू पूछता है, "तू भई यहाँ बैठा-बैठा क्या करता रहता है ! हम लोगों के साथ खेलता क्या नहीं ? क्या किसी दिन इसमें डूब मरेगा !"

"कुछ भी हो, पर तेरी तरह तिक्तिक् नहीं करूँगा । हल नहीं जोतूँगा ।"

"अरे पता तो चले आख़िर क्या करेगा ?"

"पढ़ूँगा ।"

लड़के हँसते हैं । वे उसके घर की दशा को जानते हैं । गाँव में एक प्राइमरी स्कूल है । उसमें भी गाँव के सब लड़के पढ़ने नहीं जाते । गाँव से बाहर तो कभी कोई गया ही नहीं । बड़े होकर सब खेती या दूकान या कुछ ऐसा ही करते हैं ।

लल्लू मुँह बनाकर कहता है, "तेरे बाप-दादे भी पढ़े थे जो तू पढ़ेगा । अब साले, यही बैलों के पीछे तिक्तिक् करनी पड़ेगी ।"

लड़के हँसते हुए भाग जाते हैं । वह अकेला रह जाता है ।

बात बहुत साधारण थी; पर जगदीश के चुभ गई ।

वह धीरे-धीरे नदी में उतरता है—दूर से एक ठहाका आता है—अबे, डूबने जा रहा है क्या ?

अपनी मा से उसने सुना है गंगा मा हैं । उनका जल पवित्र होता है । वह अपने सीधे हाथ की हथेली में जल लेता है और कहता है : आज मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि मैं इस गाँव के घेरे के बाहर जाऊँगा ।

उसने अपनी कल्पना में देखा—नदी हरहराती बही चली जा रही है ।

७

नगर में हिन्दी के साहित्यिक कम हैं । प्रसिद्ध तो उनमें से दो ही तीन हैं । अधिकतर लेखकों की ख्याति स्थानीय ही अधिक है । एक संस्था

ब्रजभाषा और कवित्त-सवैये लिखने वालों की है, दूसरी ऐसे लोगों की जिनका झुकाव आधुनिक खड़ी बोली काव्य की ओर है। इन दोनों में प्रतिद्वन्द्विता चलती रहती है। एक तीसरी संस्था 'मानसरोवर' नाम की है जिसमें बिना राग-द्वेष के कुछ कलाकार मिलते हैं। यहाँ साहित्यिकों में प्रतिस्पर्द्धा के लिए स्थान नहीं है। वे एक-दूसरे की निंदा-स्तुति नहीं करते। बाहर की पत्र-पत्रिकाओं में ये लोग कम लिखते हैं। इनकी अपनी एक पत्रिका है जिसकी बिक्री अधिक नहीं है। इनमें से भी दो-एक लेखक ही ऐसे हैं जिनकी पुस्तकें प्रकाश में आ चुकी हैं। एक का एक लघु उपन्यास प्रकाशित हो चुका है, दूसरे का एक गद्य-गीत संग्रह। 'मानसरोवर' के अधिकतर सदस्य सम्पन्न हैं। एक प्रकाशक है, दूसरा इंजीनियर, तीसरा एक होमियोपैथ, चौथा एक लैक्चरर। कुछ ऐसे भी नवयुवक हैं जिन्हें साहित्य से केवल प्रेम है। इनमें से दो-एक व्यापारी या सेठों के लड़के हैं। ये संस्था के उपयोगी सदस्य हैं और समय पड़ने पर इनसे अधिक चंदा ले लिया जाता है। कभी कभी बाहर से जब कोई साहित्यिक या कलाकार आता है तो वह इनमें से ही किसी की कोठी में ठहरा दिया जाता है।

'मानसरोवर' की गोष्ठियाँ महीने में एक बार होती हैं। अवसर पड़ने पर उसकी विशिष्ट गोष्ठी भी हो जाती है। आज ऐसा ही अवसर है। रवीन्द्र-जयंती के उपलक्ष्य में आज गोष्ठी का विशेष आयोजन है। एक धनी सदस्य के सुसज्जित कमरे में आमंत्रित अतिथि बैठे हैं। एक ओर रवीन्द्रनाथ का बड़ा-सा चित्र। सामने धूपदान में बत्तियाँ जलकर गन्ध विकीर्ण कर रही हैं जिससे सारा वातावरण सुवासित हो गया है। पहली बार बंगाली सज्जन और महिलाएँ कुछ अधिक संख्या में दिखाई दे रही हैं। आकृतियों से उत्साह और प्रसन्नता का आभास मिलता है। बंगाली लोग अन्य जाति वालों से प्रायः दूर रहते हैं। वे अपने को बंगाली और दूसरों को हिंदुस्तानी कहते हैं—जैसे वे केवल बंगाली हों, हिंदुस्तानी न हों। ऐसे अवसरों पर ही वे हिंदुस्तानियों के निकट आते हैं और संभव है थोड़ा-बहुत

सद्भाव भी उनके मन में जगता हो। पर रवीन्द्र, शरत्, सुभाष और अरविंद की जयंतियाँ तो नित्य नहीं पड़तीं। पूजा के अवसर पर वे हिन्दुस्तानियों को अपनी ओर से भी आमंत्रित करते है; पर फिर अलग हो जाते है।

सभापति एक बंगाली विद्वान् को ही बनाया गया था। वे अपने यौवन के दिनों में बंगाली में लिखते थे। कलकत्ते से वे कानपुर आये और फिर यहीं बस गए। कार्यक्रम सरस्वती-वंदना से प्रारंभ हुआ। कुछ नवयुवक कवियों ने रवीन्द्रनाथ की प्रशंसा में कविताएँ सुनाईं। बंगाली प्रसन्न दिखाई दिए। रवीन्द्रनाथ के सम्मान को उन्होंने बंगाल का सम्मान समझा, बंगाल के सम्मान को बंगाली जाति का, बंगाली जाति के सम्मान को वहाँ बैठे प्रत्येक व्यक्ति का। बंगाली युवकों में से कई ने रवीन्द्रनाथ की कविताओं का पाठ किया। उनका अनुवाद 'मानसरोवर' के एक सदस्य ने किया। सदस्यों में से बहुतों ने अपनी श्रद्धाञ्जलियाँ अर्पित कीं। संस्था के बाहर के लोगों में से भी कुछ ने उनके साहित्य और जीवन-दर्शन पर प्रकाश डाला। इसी भीड़ में एक ओर जगदीश बैठा था। 'मानसरोवर' का वह सदस्य नहीं था; पर संस्था के लोगों से यह छिपा न रह गया था कि वह लेखक है। उससे आग्रह किया गया कि वह अवश्य सम्मिलित हो और कुछ कहे भी; लेकिन वह न जाने क्यों बहुत उदास बैठा था। वहाँ के वातावरण ने उसकी उदासी कुछ कम की।

सहसा सभापति ने घोषित किया कि अब रवि बाबू के गीति-काव्य पर एक नवयुवक कवि कुछ प्रकाश डालेंगे। नाम लिया संस्था के संयोजक ने। जगदीश खड़ा हुआ और उसने विनम्रता से कहा कि उसने रवि बाबू को पढ़ा अवश्य है; लेकिन वह बोलने के लिए बिल्कुल तैयार नहीं है। सभापति ने मुस्कराकर कहा कि आप थोड़ी देर बाद बोल सकते हैं। विषय महत्वपूर्ण है। इस पर किसी को अवश्य कुछ कहना चाहिए।

जगदीश ने पहले हिन्दी-पद-साहित्य और गीति-काव्य के विकास पर प्रकाश डाला। फिर बँगला गीति-काव्य की थोड़ी चर्चा के उपरान्त अँग्रेज़ी

लिरिक-काव्य का संक्षिप्त-सा विवेचन किया। इसके उपरान्त रवीन्द्र के गीतों की विशेषताओं की व्यवस्था करते हुए विश्व-साहित्य में उनकी देन का उल्लेख किया। चर्चा अधिकतर विद्यापति, सूर, मीरा, महादेवी, चंडादास, शेली और कीट्स तक सीमित रही। जगदीश को लगा उसकी बात साहित्यिक अधिक होती जा रही है; अतः उसने जल्दी ही अपनी बात समाप्त करते हुए सभापति, उपस्थित श्रोताओं और 'मानसरोवर' के संयोजक को धन्यवाद दिया। उसे लगा सुनने वालों पर उसकी बात का प्रभाव कुछ न कुछ पड़ा है। इससे उसने संतोष का अनुभव किया।

और तभी संयोजक ने घोषणा की कि अब वे कार्यक्रम का सबसे आकर्षक अंश प्रस्तुत करने जा रहे हैं। इससे उत्सुक श्रोताओं का ध्यान एकदम उनकी ओर खिंच गया। उन्होंने कहा : आप सभी ने सीमा भट्टाचार्य का नाम सुना होगा। वे हमारे नगर की शोभा और गौरव हैं—(लोगों की दृष्टि इधर-उधर कुछ खोजने लगी।) रेडियो पर उनका गाना सुनकर कौन नहीं मुग्ध हुआ है। पर क्योंकि घर से बाहर वे कम निकलती हैं, सभा-संस्थाओं में भी कम ही जाती हैं; अतः आप में से बहुत कम लोगों ने उन्हें देखा होगा। इससे हम लोग उनके मुख से कुछ सुनने के लिए वंचित रहे हैं; लेकिन इससे यह भी पता चलता है कि आजकल की शिक्षित लड़कियों की भाँति वे एकदम आधुनिका नहीं हैं (यद्यपि यहाँ इस बात के कहने की कोई आवश्यकता नहीं थी) वे हमारी प्राचीन सभ्यता और संस्कृति की प्रतीक हैं, उसकी उपासिका हैं, साथ ही वे शील की मूर्ति भी हैं। यह हमारा सौभाग्य है कि आज वे हमारे बीच विद्यमान हैं। इतने बड़े कलाकार के संबंध में जितना कहा जाय थोड़ा है। मैं उनसे प्रार्थना करूँगा कि वे—हो सके तो रवीन्द्रनाथ के गीतों में से, नहीं तो अपने मन से—दो-एक गीत सुनाकर हमें अनुगृहीत करें।

लोगों ने तालियाँ बजानी प्रारम्भ कर दीं। सीमा ने विनम्रता से उत्तर दिया कि उसका शरीर ठीक नहीं है और वह इस समय नहीं गा सकेगी।

श्रोताओं को बड़ी निराशा हुई। तभी युवक संयोजक ने सभापति के कान में कुछ कहा। सभापति ने सीमा को संबोधित करते हुए समझाया : बेटी, विद्वानों के अनुरोध को इस प्रकार नहीं टालते। तुम कुछ गाओ। बाद में जगदीश को पता चला कि सीमा सभापति की ही पुत्री थी, संयोजक उस पर आसक्त थे और सीमा को देखने के लिए ही उन्होंने यह आयोजन किया था। रवीन्द्रनाथ के प्रति श्रद्धा तो बहुत ऊपरी चीज थी। भट्टाचार्य जी को भी सभापति इसीलिए बनाया गया था कि सीमा आ सके। बाद में मित्रों ने व्यंग्य करते हुए एक दिन उनसे पूछा भी : कहाँ तक सफल हुए ? संयोजक ने बहुत उदास होकर उत्तर दिया था : कहाँ यार; वह तो बात ही नहीं करती।

८

युवावस्था का अपना एक प्रभाव होता है। उसके सपने होते हैं। अपना जीवन होता है। यह अवस्था बड़ी कोमल होती है। सुख दुःख के बीज इसी में पड़ जाते हैं। लेकिन दुर्भाग्य की बात है कि हमारे देश में इस अवस्था का संरक्षक कोई नहीं है। मा-बाप युवक पुत्र को शिक्षा के लिए बाहर भेज देते हैं और उसका जीवन कैसे व्यतीत हो रहा है, इसकी कोई ख़बर नहीं लेते। 'लड़का बड़ा हो गया है' ऐसा सोचकर वे उससे कुछ भी नहीं कहते। जिन अध्यापकों और प्रोफ़ेसरों की देख-रेख में वह अध्ययन करता है, वे तो उस ओर और भी कम ध्यान देते हैं। मा-बाप सोचते हैं, सब ठीक है, अगर कोई बदमाशी की बात नहीं उठती तो। अध्यापक सोचते हैं, सब ठीक है, अगर कहीं से कोई शिकायत नहीं आती तो। कोई दुर्घटना हो जाती है, तो तुरंत शान्त कर दी जाती है। उस पर कोई गहराई

से नहीं सोचता। तालाब में कंकड़ फेंकने से जैसे एक शब्द होता है—बस इतना ही और फिर सब शान्त। कोई किसी को मार-पीट आया, कोई किसी के साथ भाग गया, किसी ने आत्महत्या कर ली, तो बस धमका दिया गया, रजिस्टर से उसका नाम काट दिया गया, एक छोटा-सा शोक-प्रस्ताव पास हो गया और काम फिर पूर्ववत चलने लगा। लड़का बड़ा हो गया है और अपना भला-बुरा समझता है, ऐसा कहकर माता-पिता का उदासीन हो जाना, कहाँ तक उचित है, कहा नहीं जा सकता। प्रोफेसरों और विद्यार्थियों के बीच जो और अधिक निकट का, और अधिक आत्मीयता का सम्पर्क होना चाहिए, वह कहीं दिखाई नहीं देता। इसके लिए किसे दोष दिया जाय? युवकों की शक्ति के विकास के उपायों की खोज कब होगी, कहा नहीं जा सकता। ऐसी दशा में इसके अतिरिक्त क्या होगा कि जो जिसे जिधर बहा ले जाय, वह उधर बह जाय। अधिकतर बहकाने वाली तो अपनी प्रवृत्ति ही होती है। इस काल में साथियों का चुनाव भी हम कुछ समझ बूझकर नहीं करते। कॉलेज-जीवन के ये साथी न जाने कहाँ बह जाते है कि फिर कभी मिलते ही नहीं। उस समय की मित्रता कितनी अस्थायी होती है, प्यार कितना आधारहीन होता है!

जगदीश प्रीति के संपर्क में क्या आया कि उसे सारी सृष्टि सुन्दर लगने लगी। जो भाव उसके मन में नयन नहीं जगा पायी थी, वह प्रीति ने जगा दिया। उसे आकाश, धरती, नदी, वृक्ष, लता, फूल, सब आकर्षित करने लगे। उसे वर्षा, चाँदनी, घाम, शीत, सब प्रिय लगने लगे। उसे कोकिल, मोर, पपीहा, सब की वाणी में रस और दर्द का आभास मिलने लगा। उसे कण-कण मादक प्रतीत होने लगा।

यह उसके अपने शरीर का विकास था जो सभी कहीं फूल-से खिलाता फिरता था। यह उसके अपने मन का ही रस था जिससे सारा धरातल उसे रहस्यमय और रसमय प्रतीत होता था। यह उसकी अपनी इंद्रियों की चेतना ही थी जो कण-कण को स्फूर्तियुक्त कर जाती थी। जीवन को

इस मादकता से जगदीश आकुल था—यद्यपि यह आकुलता उसे बहुत प्रिय थी। किसी मूल्य पर भी वह इसे खोना नहीं चाहता था। वह सोचता था जीवन ऐसे ही बीत जायगा।

चलते-फिरते, उठते-बैठते जैसे उसका शरीर मरोड़ में रहता, वैसे ही उसके मन में तरंगें सी उठती रहतीं। कभी लगता भीतर बहुत आग है, कभी लगता बहुत आवेश है, कभी लगता बहुत आँधी है, कभी लगता बहुत बिजली है, कभी लगता बहुत चाँदनी है। अपनी इस मनोदशा से वह बहुत परेशान था। भाव जो इस काल में उठते थे, वे बहुत स्पष्ट नहीं होते थे। कभी लगता भीतर कोई फूल खिला है, कभी लगता अंतःकरण में उजाला करता हुआ कोई तारा टूटा है, कभी लगता कोई आँसू गिरा है। अपना हृदय उसे कभी शिला सा, कभी मोम-सा, कभी झरने सा, कभी ओस-विन्दु-सा लगता। वह प्रायः सोचता रह जाता, उसे क्या हो गया है!

वह बैठा है तो बैठा है, टहल रहा है तो टहल रहा है, सो रहा है तो सो रहा है और पढ़ रहा है तो पढ़ रहा है। सबसे अच्छा उसे इन दिनों स्नान करना लगता। दिन में वह दो बार अवश्य नहाता। नहाने से उसे न जाने क्यों बड़ा चैन सा मिलता। नल खोल दिया और उसके नीचे बैठे हैं। कपड़े सब अलग हैं। कभी-कभी वह अपने पूरे शरीर को देखता। वह उसे सुगठित और सुन्दर लगता। फिर वह रुएँदार तौलिया से कस कर अपने शरीर को पोंछता। तौलिया का गुदगुदापन उसे मोहाविष्ट कर जाता।

एक रात वह अपने कमरे में अकेला सो रहा था। शरद की चाँदनी रात थी। चाँदनी छनकर उसकी खिड़की से आ रही थी। इस चाँदनी को अभी पीते-पीते ही वह सोया था। बाहर हरसिंगार का वृक्ष अपने यौवन पर था। उसकी महक भीतर तक भर गयी थी। लेकिन उसे कमरा बड़ा गरम लगा। उसे संदेह हुआ उसे ज्वर है। यह ज्वर भीतर का था। भीतर कहीं ज्वालामुखी सा धधक रहा था। उसकी इच्छा हुई कि वह अपने कपड़े उतारकर फेंक दे। इस बात के सोचते ही उसके मन में बड़ी

झिझक उत्पन्न हुई। फिर साहस करके उसने अपने कपड़े उतार दिए और चादर ओढ़ कर नंगा सो गया। उसकी पलकें झँपती जा रही थीं और वह धीरे-धीरे कह रहा था : नंगे सोकर मैंने कुछ अनुचित नहीं किया — यह चाँदनी नंगी है, आकाश निरावरण है, फूल वस्त्रहीन हैं। मैं कोई प्रकृति से बाहर नहीं हूँ...।

और तब से जब भी उसे एकान्त में अकेले सोने का अवसर मिलता, वह अपने सारे कपडे उतारकर सोता। जाडों में विशेष रूप से वह ऊपर से लिहाफ़ ओढे होता और भीतर बिना कपड़ों के होता। लेकिन मनुष्य के संस्कार तो मिटते नहीं। वे कहीं न कहीं रह ही जाते हैं। एक दिन वह बिना कुछ सोचे-समझे लोहे का एक मोटा डंडा कहीं से उठा लाया। अब जब वह सोता तो उसे अवश्य अपने पास रख लेता। उसे स्मरण आया कि जब वह छोटा था तो अपनी मौसी के पास सोया करता था और ऐसे ही कपड़े उतार देता था। एक दिन मौसी ने डराने के लिए कहा था, "मुन्ने, नंगे सोने से भूत आ जाते हैं।" "तो वे कैसे भागते हैं मौसी ?" उसने अपने भोलेपन में प्रश्न किया। "लोहे का डंडा पास रखने से भागते हैं बेटे।" संभव है अब भी उसे कहीं भीतर डर लगा हो और इसीलिए उसने लोहे का डंडा अपने पास रख लिया हो।

जगदीश की आजकल ऐसी मानसिक दशा थी और मित्र मिल गया उसे श्याममोहन चड्ढा, जो मैथमैटिक्स पढ़ाता था और प्यार करता था।

संध्या के समय दोनों बड़े उत्साह से जा रहे थे। श्याममोहन जब नयन की कोठी के पास से निकला तो उसे आशंका हुई कि कहीं वह उसके घर ही तो नहीं चल रहा; लेकिन चड्ढा ने चौराहा पार किया और डा० माथुर के घर के सामने जाकर खड़ा हो गया। जगदीश उसके मुँह की ओर देखने लगा।

"अबे कहाँ लिए जा रहा है मुझे ? डाक्टर की लड़की से प्यार करता है क्या ?" बोर्ड की ओर देखते हुए जगदीश ने पूछा।

"क्यों, डाक्टर की लड़की से प्यार करना कोई गुनाह है ?"

"साले, किसी दिन जहर दे देगी।"

"तो जहर पी लेंगे और तर जायँगे।"

इसी बीच प्रीति पास आ गई थी। जगदीश को देखकर वह कुछ चकित हुई; लेकिन उसने अपने को सँभाल लिया। मुस्कराते हुए बोली, "आइए न।"

"अपना यह दोस्त कुछ संकोची स्वभाव का है।" चड्ढा बोला।

"संकोच तो लड़कियों को करना चाहिए।" प्रीति ने कहा।

बाहर लॉन में कुर्सियाँ पड़ी हुई थीं। वहीं तीनों बैठ गए।

"श्याममोहन ने आपकी इतनी प्रशंसा की है कि अगर पत्थरों के कान होते तो वे उठकर आपको देखने चले आते।" जगदीश बोला।

"अब पत्थर ही तो हमें देखने आयेंगे।" सहसा प्रीति ने उत्तर दिया।

"और मज़ाक करो !" चड्ढा बोला।

"नहीं मजाक की बात नहीं है। यह तो स्पष्ट है कि ये और दस लड़कियों से कुछ भिन्न हैं।"

"आपको कैसे पता चला ?"

"गद्य-गीतों को देख कर ही मैंने कुछ अनुमान लगाया।"

"कैसा अनुमान ?"

"इस समय नहीं, फिर बताऊँगा" इतना कहकर जगदीश चुप हो गया। प्रीति ने भी अधिक आग्रह नहीं किया। बोली, "मैं तो नहीं समझती कि उनमें कोई विशेष बात है। आप पहले आदमी हैं जिसने कहा है कि वे पढ़ने योग्य भी हैं। चड्ढा साहब का तो कविता में विश्वास ही नहीं है। उनका कहना है कि कविता भावुक व्यक्तियों के काल्पनिक जगत की उपज मात्र है और उसका प्रमाण यह है कि उसकी आज तक कोई स्थिर व्याख्या नहीं—वैसी जैसे आप मैथमैटिकल टर्म्स को डिफ़ाइन कर सकते हैं।

जगदीश ने कुछ सोचते हुए कहा, "क्यों, कविता की व्याख्या क्यों नहीं की जा सकती ?"

'तो करके दिखाइए न ।" चड्ढा ने सिगरेट जलाते हुए कहा ।

"तुमने चड्ढा रामायण कभी देखी है ?"

"देखी हो या न देखी हो; लेकिन तुम्हारे तर्क को मैं समझ सकूँगा ।" चड्ढा ने धुएँ को सीधे फेंकते हुए कहा ।

"उसके प्रारम्भ में वाणी के देवताओं को स्मरण करते हुए तुलसीदास ने कहा है—वर्णों, अर्थों, छन्दों, रसों और मंगलों के प्रदाता सरस्वती और गणेश की मैं वंदना करता हूँ । लोग इसे केवल प्रार्थना का एक अंश ही समझते हैं; लेकिन इसमें गोस्वामी जी ने काव्य की अत्यन्त स्पष्ट व्याख्या की है । हिन्दी ज़रा कड़ी है । कहो तो मैं इसकी व्याख्या करूँ ।"

"हाँ, मैं सुनना चाहता हूँ ।"

"पहले उन्होंने कहा, 'शब्द'-समूह को कविता कहते हैं । लेकिन कोई सन्देह कर सकता था कि शब्द तो निरर्थक भी हो सकते हैं; इसी से आगे 'अर्थ' शब्द का प्रयोग किया—अर्थात् सार्थक शब्दों के समूह का नाम कविता है । बात इतने से बनी नहीं । कोई कह सकता था कि गद्य भी तो सार्थक शब्दों का समूह है । इसी से 'छन्द' कहा—अर्थात् कविता सार्थक शब्दों का वह समूह है जो छन्दबद्ध हो । फिर उन्हें ध्यान आया लोग इतने पर भी सन्तुष्ट नहीं होंगे । कोई कह सकता है कि यदि औषधियों के नामों को छन्दबद्ध कर दिया जाय तो क्या वह कविता हो जायगी ? इसी से वे 'रस' शब्द लाए—अर्थात् कविता सार्थक शब्दों का वह समूह है जो छन्दबद्ध हो और जिससे रस की निष्पत्ति होती हो । फिर उन्होंने सोचा कि इतने पर भी लोग काव्य का दुरुपयोग कर सकते हैं । अश्लील काव्य को भी काव्य कह सकते हैं, इसी से उन्होंने अन्त में 'मंगल' शब्द का प्रयोग किया—अर्थात् कविता सार्थक शब्दों का वह समूह है जो छन्द-बद्ध हो, जिससे रस की निष्पत्ति हो और जो सभी का मंगल करे । इसमें

चड्ढा शब्द, अर्थ, छन्द, रस आदि पारिभाषिक शब्द आ गए हैं। उनके स्थान पर मै दूसरे शब्द नहीं रख सकता; फिर भी मेरा विश्वास है, कुछ तो तुम्हारी समझ में आया ही होगा।"

"हाँ, इस व्याख्या को मैं मानता हूँ। यह एकदम पूर्ण तो नहीं; लेकिन पूर्णता के निकट है।" चड्ढा बोला।

"इस पर बहस नहीं होगी।" प्रीति बोली।

"आर्डर इज आर्डर सर।" श्याममोहन ने सिर झुकाया।

बंसी चाय ले आया था। चाय पीकर चड्ढा और जगदीश दोनों उठ खड़े हुए।

"आप फिर तो आयँगे न?" प्रीति ने जगदीश से पूछा।

"मेरा आना चड्ढा के हाथ में है।" जगदीश ने कहा।

"नहीं, आपके जब मन में आये, आइए!" प्रीति बोली।

"अच्छी बात है।" जगदीश ने प्रसन्न होकर कहा।

दोनों चले गए।

६

एक दिन जगदीश कॉलेज से लौट रहा था कि किसी ने आवाज़ दी। देखा भट्टाचार्य जी हैं। जगदीश ने निर्मल बाबू को प्रणाम किया। भट्टाचार्य ने कहा : आप तो किसी को पहचानता नहीं, पर हम तो विदेशी आदमी हैं। चार आदमियों से मेल-मुलाकात नहीं बढ़ायेगा, तो जीवित कैसे रहेगा। उस दिन के भाषण से ही हमने जान लिया कि आप गुणी आदमी है। जगदीश को सिर झुकाए देखकर वे फिर बोले, "नहीं-नहीं, संकुचित

होने की बात नहीं; पर गुणी आदमी को ऐसे ही विनम्र होना चाहिए। इसी में उसकी शोभा है।"

भट्टाचार्य जी का मकान सड़क के किनारे ही था। जिस समय उन्होंने जगदीश को आवाज दी, उस समय वे अपने कमरे के सामने टहल रहे थे। बात करते-करते वे उसे अपने कमरे में ले आए। वृद्धा नौकरानी को बुलाकर उन्होंने कहा : बाबू के लिए चाय लाओ। जगदीश के मना करने पर भी नौकरानी ऊपर चली गई। मकान कुछ पुराने ढंग का था। तो सीमा यहीं रहती है। कैसे-कैसे छोटे स्थानों पर कैसे-कैसे सुन्दर प्राणी रहते हैं! पर बिना परिचय उन तक कैसे पहुँचा जा सकता है। जगदीश की इच्छा हुई कि वह सीमा को देख पाता!

इतने में भट्टाचार्य जी ने पूछा, "आप यहीं का रहने वाला है?"

"नहीं, मैं बाहर से आया हूँ। यहाँ पढ़ता हूँ।"

"आप गुरुदेव पर बोला, इससे चित्त प्रसन्न हो गया। रवि बाबू को आपने पढ़ा है?"

"मैंने बंकिम, शरत्, रवि और द्विजेन्द्रलाल राय सभी को पढ़ा है?"

"अनुवाद से?"

"नहीं, मूल में पढ़ा है।"

"आप बँगला जानता है? बोल सकता है?"

"छपी हुई बँगला पढ़ लेता हूँ। कोई बोले तो समझ लेता हूँ। थोड़ा बोल भी सकता हूँ; लेकिन अशुद्ध उच्चारण के भय से बोलता नहीं।"

"बहुत अच्छा, बहुत अच्छा। आप हमारे साथ बँगला में बातचीत करे। हम आपको बँगला सिखायेगा। बँगला भाषा जैसी मीठी भाषा और कहीं नहीं। आप क्या सोचता है?"

"ब्रजभाषा और फ़ारसी भी ऐसी ही मधुर भाषाएँ हैं।"

"आप फ़ारसी जानता है?"

"थोड़ी।"

"ओह बाबा ! हिन्दी और फ़ारसी दोनों जानता है ! हमने तभी कह दिया जो रवि बाबू पर इस माफ़िक बोल सकता है, वह बहुत गुणी आदमी है।"

इतने में नौकरानी चाय ले आई।

"आप कुछ कविताई भी करता है ?"

"ऐसे ही कुछ टूटा-फूटा लिख लेता हूँ।"

"पद लिखता है—मीरा के माफ़िक ?"

"नहीं व्रजभाषा में मैं नहीं लिखता और न पद ही लिखता हूँ। खड़ी बोली में नए ढंग की कविता करता हूँ।"

"राष्ट्रीय रचनाएँ ?"

"नहीं, प्रेम, प्रकृति और सामान्य जीवन से सम्बन्धित कुछ लिखता रहता हूँ।"

"मैं भी अपने यौवन-काल में—जब तुम्हारे माफ़िक था—बँगला में लिखता था। लेकिन प्रसिद्ध नहीं हो पाया। फिर छोड़ दिया।"

भट्टाचार्य जी न जाने किस ध्यान में डूबे थोड़ी देर बैठे रहे। जगदीश सीमा के संबंध में सोचता रहा। उस दिन संयोजक का सीमा के गाने के लिए प्रस्ताव करना, सीमा का मना करना, भट्टाचार्य का आग्रह और फिर सीमा का गाना ! वह भी उस दिन आवेश में आकर आधे घण्टे तक बोलता रहा था। सीमा के ऊपर इसका क्या प्रभाव पड़ा होगा ? हमारे अंतश्चेतन में भी न जाने कहाँ क्या छिपा पड़ा रहता है ! समय आने पर ही वह स्पष्ट होता है। उसे अपने पर आश्चर्य हुआ ! सीमा को देखने की जो लालसा मन में है, उसके पीछे क्या उसका रूप है ? उसकी कला है ?

"कविता करना आपने क्या छोड़ दिया ?"

"बतावेगा किसी दिन, अभी नहीं।"

"कानपुर में आप कब से हैं ?"

"बहुत दिन हो गया। सीमा के जन्म से पहले से ही है।"

"इन्हें गाने का अभ्यास आपने कराया है ?"

"बचपन में मैंने थोड़ा सिखाया है। कुछ इसने अपने गुरु से भी सीखा। शास्त्रीय संगीत तो बिना गुरु के नहीं आता।"

"बंगाली और महाराष्ट्रियन दोनों ही बड़ी संगीत-प्रिय जातियाँ हैं। सोने से पहले अधिकांश घरों में संगीत का अभ्यास थोड़ा-सा होता है, ऐसा मैंने देखा है। अतः संगीत उनके रक्त में, उनके संस्कारों में ही है। उन्हें केवल थोड़े अभ्यास की आवश्यकता पड़ती है।"

"आप बंगालियों के सम्पर्क में रहा है ?"

"हाई स्कूल में मेरे कई अध्यापक बंगाली थे। उनके यहाँ आना-जाना रहता था। इन्टरमीडिएट में हमारे प्रिंसिपल बंगाली थे। वे मुझे बहुत प्यार करते थे और अपने लड़के के समान ही समझते थे। हमारे ये प्रिंसिपल भी बंगाली ही हैं। ये तो रविबाबू के सम्पर्क में थोड़े दिन शान्ति-निकेतन में भी रहे हैं।"

इतने में नौकरानी पास आकर खड़ी हो गई। भट्टाचार्य से उसने कहा, "आपको ऊपर बुलाया है।"

"देखता नहीं है, हम बाबू से बात कर रहा है। सीमा को बोलो, हम थोड़ी देर में आयेगा।"

नौकरानी चली गई।

"यह जो सीमा हमारी लड़की है, वह रेडियो पर गाती है, यह आप जानता है। रेडियो वाला जो गीत भेजता है, उसमें से कुछ तो अच्छा होता है, कुछ कूड़ा। हिन्दी का कवि न जाने कैसी भाषा लिखता है। रवि बाबू का तो सारे संसार में नाम है, लेकिन उसका एक-एक गीत कैसा है—प्राणों में मूर्च्छना भर देता है। कोमल मसृण सिहरनभरी भाषा—रवि बाबू के समान रवि बाबू ही लिख सकता है। हिन्दी कवि की बहुत-सी पंक्तियों को तो पढ़ा ही नहीं जा सकता। बहुत से शब्दों का उच्चारण ही नहीं हो सकता। ऐसा ऊटपटाँग लिखेगा, तो बंगाली लड़की कैसे उच्चारण करेगा।

गीत की भाषा बहुत सरल होनी चाहिए, बाबा ! ये हिन्दी का कवि खाली मन से लिखता हैं। मन भरा-भरा हो तो भाषा सहज भाव से निकलती है। कठिन शब्दों को गाने में कैसे बिठायेगा ? कोई खेल है ! छन्द लिखता है लम्बा-लम्बा—चार-चार छः-छः पंक्तियों का। आर्टिस्ट का जान ले लेता है। जो भेज देता है उसे गाओ। यह कोई बात है। लेकिन कौन कहे, बाबा। प्रोग्राम लेना है, तो जो कहे सो गाओ। अरे, एक मुखड़ा लिखो। दो पंक्तियों के बाद फिर तुक। तीन-तीन पंक्तियों के तीन-चार छन्दों में गीत पूरा। लिखने वाले को भी आसान, आर्टिस्ट को भी आसान, श्रोताओं को भी आसान। आप ऐसे गीत लिखता है ?"

"मुझे तो रेडियो के लिए कभी गीत लिखने की आवश्यकता पड़ी नहीं।"

"लेकिन लिख सकता है ?"

"शायद लिख सकूं।"

"यही तो, यही तो।"

"लेकिन यह बात उठी क्यों ?"

"बात यह है बाबा, कि सीमा रेडियो पर गाता है। तो कुछ गीत तो वह भेजता है; पर कुछ आर्टिस्ट उनकी आज्ञा लेकर अपने मन से गा सकता है। अगर आप रेडियो के लिए गीत लिख सकता है, तो हमारी लड़की आपके गीत गा सकता है। इससे आपको ख्याति मिलेगी।"

जगदीश को मिलने की एक क्षीण-सी आशा हुई। लेकिन वह अपने मुँह से कैसे कहे। यह दुर्बलता उसके भीतर कहाँ से आ गई। ऊपर जाना! सीमा के पास बैठना ! उसे एक हल्का सा रोमांच हुआ। सीमा कितनी सुन्दर है ! कितनी कोमल ! उसके मुख का वह लावण्य—लावण्य जो केवल बंगाली लड़कियों में ही पाया जाता है।

"आप क्या सोचने लगा ?"

"सरल गीत लिखना, ऐसे गीत जो भावपूर्ण भी हों, कठिन काम है।"

"हम कहता था न कि कठिन काम है। आप हमारी बात से सहमत है?"

"हाँ।"

१०

डा० राजनाथ माथुर बड़े उदार स्वभाव के व्यक्ति थे। उनके एक ही लड़की थी। उसे वे अधिक से अधिक स्वतन्त्रता देना चाहते थे। अकेले बच्चे को एक खाते-पीते घर में जितना भी प्यार मिल सकता है, वह प्रीति को मिला था। अपने समय में राजनाथ स्वयं बड़े रोमान्टिक क़िस्म के नवयुवकों में रहे थे; लेकिन भाग्य की बात है कि विवाह हुआ दमयंती से। दमयंती हाई स्कूल में फ़ेल हो गई थी। उसके आगे वह नहीं पढ़ सकी। राजनाथ सम्पन्न घर के थे और दमयंती के पिता अत्यंत साधारण स्थिति के। किसी का भी स्वप्न में यह विचार नहीं था कि दोनों का विवाह हो जायगा। राजनाथ अपने पिता की कार लेकर अक्सर ऐंग्लो-इंडियन लड़कियों के साथ घूमते दिखाई देते थे। लोग सोचते थे इन्हीं में से किसी के साथ उनका विवाह होगा। ग़रीब घर की होते हुए भी दमयंती में हद की सैक्स अपील थी और प्रारम्भ में राजनाथ एक साधारण लड़की समझकर उसकी ओर आकर्षित हुए थे। वे कहा करते थे कि यह तो बहुत 'ईज़ी केस' है। लेकिन दमयंती थी कि राजनाथ को आकर्षित करती गयी और पीछे हटती गयी। लोगों का कहना है कि दोनों को थोड़ी छूट देने में दमयंती की मा का भी हाथ था। और एक दिन सभी ने आश्चर्य के साथ सुना कि दमयंती का विवाह राजनाथ के साथ हो गया।

राजनाथ का विवाह तो हो गया; लेकिन स्वभाव उनका बहुत दिनों

तक बदला नहीं। दमयंती धीरे-धीरे उन्हें अपने पाश में जकड़ती चली गयी। राजनाथ का स्वास्थ्य पहले ही बहुत अच्छा नहीं था। अब और गिरने लगा। और फिर एक समय ऐसा भी आया कि डांस में सम्मिलित होना, छिपकर पुरानी प्रेमिकाओं से मिलने जाना और अंग्रेजी में लंबे प्रेम-पत्र लिखना आदि कम होने लगा। इसी बीच प्रीति का जन्म हुआ। लड़की के जन्म के उपरान्त न जाने राजनाथ में क्या परिवर्तन आया कि वे एकदम भले आदमी हो गए। अपनी प्रेक्टिस और घर से ही उनका संबंध रह गया। इस बात पर मित्रों को और भी आश्चर्य हुआ।

राजनाथ पर अधिकार करके दमयंती बहुत सुखी हुई; लेकिन जब प्रीति के उपरान्त उसके कोई दूसरा बच्चा नहीं हुआ तो वह कुछ चिंतित और उदास रहने लगी। उसकी बड़ी इच्छा लड़के का मुख देखने की थी। लेकिन आज सोलह वर्ष हो गए, उसकी इच्छा पूरी नहीं हुई। उसका दुःख थोड़े चिड़चिड़ेपन में भी बदल गया। इस खीझ को वह कभी डाक्टर पर उतारती और कभी प्रीति पर। डाक्टर पर इस अभाव का कोई प्रभाव नहीं पड़ा। वे अपनी लड़की को ही लड़के से अधिक समझते थे और दमयंती अपने ख़राब मूड में होती तो हँसकर टाल देते।

प्रीति बड़ी हुई। पढ़ने के लिए गई। वहाँ वह भली-बुरी चार लड़कियों के सम्पर्क में आई और उसके मन में भी अस्पष्ट-सा कुछ जगने लगा। पढ़ने में प्रीति होशियार थी; लेकिन उसने अपने पिता से कहा कि वह मैथ-मैटिक्स में कमज़ोर है। उसके लिए एक ट्यूटर की आवश्यकता है। एक दिन श्याममोहन चड्ढा बीमार हुए। डा० माथुर की डिस्पेन्सरी में गए। वहाँ उनसे बात होने लगी। पता चला मैथमैटिक्स में तेज़ हैं। पिता ने उन्हें अपनी लड़की का ट्यूटर नियुक्त कर दिया। चड्ढा पढ़ाने लगे। प्रीति का मन लगा। चड्ढा सुन्दर व्यक्ति था और प्रीति को उसके पास बैठने में अच्छा लगता था; लेकिन धीरे-धीरे वह यह जान गई थी कि यह

आदमी 'सिन्सियर' क़िस्म का नहीं है। इसी बीच एक दूसरा व्यक्ति प्रीति के जीवन में आया। इस व्यक्ति को लाने वाली उसकी मा थी।

लड़के का नाम अरविन्द था और वह डी० ए० वी० कॉलेज में पढ़ रहा था। उसके पिता मुरादाबाद या बरेली में सिविल सर्जन थे। सर्जन माथुर के सात लड़कियाँ थीं और एक लड़का। उनके एक छोटे भाई थे जो कानपुर में अँग्रेजी दवाइयों और विदेशी शराब की दूकान चलाते थे। इन्होंने अपना विवाह नहीं किया था और बड़े भाई के बच्चों को पिता से भी अधिक प्यार करते थे। अरविंद माथुर का सारा खर्च वे ही उठा रहे थे। भगवान जाने बात कहाँ तक ठीक है; पर वे अपनी भाभी से विवाह करना चाहते थे। बात पहले उन्हीं के लिए उठी थी। बड़े भाई का रिश्ता किसी दूसरे स्थान पर तय हो गया था और दोनों विवाह आगे-पीछे होने वाले थे; पर वह रिश्ता लेन-देन के मामले पर आगे चलकर टूट गया और इनके पिता ने यह कहकर कि पहले बड़े भाई का विवाह होगा, इनकी मँगेतर को इनसे छीनकर बड़े लड़के को सौंप दिया। छोटे भाई ने फिर विवाह नहीं किया। हो सकता है ये जीवन भर अपनी भाभी को प्यार करते रहे हों। पर भाभी साध्वी स्त्री थीं; उन्होंने इनकी ओर कभी आँख उठाकर भी नहीं देखा; यहाँ तक कि उनके पति और बच्चे इनके यहाँ आते-जाते रहे; पर वे कभी कानपुर नहीं आईं। अरविद पढ़ने में बहुत होशियार था और किसी कम्पटीशन में बैठने की तैयारी कर रहा था। राजनाथ और उसके चचा में काफी घनिष्ठता थी। एक दिन राजनाथ ने दोनों को खाने पर घर बुलाया। दमयंती की दृष्टि अरविंद माथुर पर पड़ी और उसने निश्चय कर लिया कि वह प्रीति का विवाह इस लड़के से करेगी। अरविंद का आना-जाना घर में प्रारम्भ हो गया।

लड़की ने मा के इस खेल को समझ लिया। लेकिन प्रीति कुछ स्वतंत्र स्वभाव की लड़की थी। यदि अरविंद से उसकी भेंट अचानक हो गई होती तो वह स्वयं उसका स्वागत करती। अरविंद बातचीत करने में कुशल,

आकर्षक व्यक्तित्व का व्यक्ति था। टेनिस खेलने के लिए वह सारे कानपुर में प्रसिद्ध था। उसमें यदि कोई दोष था तो यह कि वह हाथ हिलाकर बात करता था जिसमें थोड़ा 'फ़ैमीनिन टच' झलकता था। प्रारम्भ में प्रीति ने उसकी ओर ध्यान ही नहीं दिया। फिर वह मा के आग्रह से उसके साथ एकाध बार कार में घूमने चली गयी। मा अपनी बेटी के साथ वही करना चाहती थी जो उसकी मा ने अपनी बेटी के साथ किया था; लेकिन बेटी थी कि भीतर से विद्रोह कर रही थी। मा समझती थी कि ये सब दिखावे की बातें हैं—अभी नासमझ है, ठीक हो जायगी।

इसी असन्तोष और मानसिक द्वन्द्व के बीच उसकी दृष्टि एक दिन जगदीश पर पड़ी। पहले तो वह जान ही नहीं पायी कि वह उसे ही देखने आता है या किसी और को; लेकिन जब उसे निश्चय हो गया तो उसने उसे अपने बँगले में प्रवेश करने और अपने निकट आने का अवसर दिया। बरसात वाले दिन प्रीति से विदा लेते समय जगदीश जो कुछ अनायास कह गया था, उसे सुनकर किसी भी सभ्य लड़की को अप्रसन्न हो जाना चाहिए था; लेकिन जगदीश के चले जाने के बाद प्रीति अपने कमरे में लौट आई, पलंग पर गिर गई और एक तकिये को कसकर उसने अपने वक्ष से लगा लिया। जगदीश उसे कुछ 'क्रूड' और अनगढ़ व्यक्तित्व का आदमी लगा और बहुत पसन्द भी नहीं आया; लेकिन उसे इस बात से प्रसन्नता हुई कि किसी ने खुलकर कुछ स्वीकार तो किया। अरविन्द है कि मारे शिष्टता के उसके मुँह से कुछ निकलता ही नहीं और चड्ढा का सारा प्रयत्न यह है कि वह प्रीति के मन के भाव को जान ले और पहले अपनी ओर से कुछ न कहे। जब जगदीश ने उधर से निकलना बन्द कर दिया, तो अपने उत्तर के लिए वह बहुत पछतायी। फिर एक दिन चड्ढा ने अपने एक कवि मित्र की प्रशंसा की और जब वह प्रीति के गद्य-गीतों के साथ एक दिन जगदीश को अपने साथ लाया, तो प्रीति की समझ में नहीं आया कि वह क्या करे। वह सचमुच बहुत प्रसन्न हुई। उसने निश्चय

किया कि वह अपने को बचाकर तो रखेगी; लेकिन अब उसे अपने द्वार से लौटायेगी नहीं।

इसी मानसिक उलझन में उसके दिन व्यतीत हो रहे थे कि नित्य की भाँति एक दिन श्याममोहन चड्ढा प्रीति को पढ़ाने आया।

श्याममोहन को बैठे थोड़ी ही देर हुई होगी कि प्रीति की मा उधर से निकलीं। उन्होंने धीरे-से कहा, "श्याममोहन तुम्हें आदमी की बिल्कुल पहचान नहीं है। उसे तुम साधू कहते हो!" श्याममोहन सकपका गया। उसने पूछा, "क्या हुआ मा जी?" "कुछ नहीं। तुम अपना काम करो।" इतना कहकर दमयंती चली गयी।

दमयंती प्रीति को पढ़ाते समय दो-एक बार उधर से ज़रूर निकलती थी जिससे दोनों चौकन्ने रहें। वह अपने पति के समान लड़कियों को अधिक स्वतन्त्रता देने के पक्ष में नहीं थी। इसलिए श्याममोहन चाहता था कि वह कभी-कभी बाहर जा सके तो अच्छा हो। दमयंती के मन में लड़के की भूख है, यह वह जान गया था; अतः एक दिन अवसर पाकर वह बोला, "शहर में आजकल एक बहुत पहुँचे हुए महात्मा आये हुए हैं। पता नहीं आपने उनके दर्शन किए या नहीं? आहा! जो उन्हें देखता है, वही उनकी प्रशंसा करता है। सुना है वे सबकी मनोकामना पूरी करते हैं। कोई भी उनके द्वार से निराश नहीं लौटा।" चड्ढा ने दो-तीन बार जब भक्ति-भाव से आहा-ओहो की तो दमयंती के मन की सुप्त कामना जग उठी।

नवाबगंज की समाप्ति पर जो खुला स्थान है, वहाँ पर दो-चार वृक्षों को छोड़कर पहले कुछ नहीं था। एक दिन एक बाबा ने आकर अपना डेरा डाला। जल से भरा एक घड़ा उनके पास रहता था और वे गूदड़ लपेटे रहते थे। धीरे-धीरे वे घँघरिया वाले बाबा के नाम से प्रसिद्ध होने लगे। वे हिंदू थे या मुसलमान, यह तो नहीं कहा जा सकता था; लेकिन उन्होंने इधर-उधर से ईंटें बटोरकर एक समाधि बनायी। जब उनका

और अधिक नाम हुआ तो समाधि पक्की बन गई और उस पर दीपक जलने लगे, फूल बरसने लगे। कुछ लोगों ने उन्हें कभी-कभी गूदड़ों का एक लँहगा भी पहने देखा। बच्चे उन्हें देखकर हँसने लगे, तो उनके मा-बाप और भक्त उन्हें धमकाने लगे। लँहगा पहनने के कारण वे घँघरिया वाले बाबा के नाम से प्रसिद्ध हो गये।

समाधि की बहुत सुन्दर चहारदीवारी बन जाने पर भी वे प्रायः पेड़ के नीचे ही पड़े रहते। वे किसी से कुछ कहते नहीं थे। भक्त लोग दर्शन करके उठ जाते थे। वर्षा में जब उन्हें कष्ट होने लगा और वे पेड़ के नीचे ही पड़े रहे तो शिष्यों ने उनके लिए एक पक्की छतरी बनवा दी। अब वे कभी छतरी में बैठते, कभी समाधि के पास, कभी पेड़ के नीचे। धीरे-धीरे स्त्रियाँ आने लगीं और बड़े घर की स्त्रियाँ आने लगीं। बाबा में एक नया परिवर्तन यह हुआ कि वे घाँघरे के साथ, चोली भी पहनने लगे और मन में आता तो चूनर भी ओढ़ लेते। आदमियों से अधिक अब उन्हें अफ़सरों की पत्नियाँ और सेठानियाँ घेरने लगीं। कोई स्त्री देर तक उनकी ओर देखती तो वे लजाकर कहते, "हाय मरी, ऐसे क्यों देख रही है। मै तो राम की बहुरिया हूँ।" बहुत मगन होते तो नाचने लगते। इस नृत्य को देखकर औरत खूब आनन्दित होतीं।

सबसे आनन्द की बात यह थी कि कभी कभी बाबा चारपाई पर लेटे रहते और नीचे ही न उतरते। जब कोई महिला पूछती, "बाबा, क्या बात है?" तो बाबा उत्तर देते, "हाय मरी, कैसी बात पूछै है! दर्द के मारे मैं तो मरी जाति हूँ।" ऐसी दशा में वे ऐसा अनुभव करते जैसे उनके बच्चा होने वाला है। हिन्दुओं में यह सब अध्यात्मवाद के अंतर्गत चलता है। किसी व्यक्ति ने जब उनके एक शिष्य से प्रश्न किया कि यह सब क्या है, तो उसने उत्तर दिया, "बाबा सखी संप्रदाय के हैं।" लोग चुप रह गए। धर्म के संबंध में किसी को कुछ भी हस्तक्षेप करने का अधिकार नहीं है।

श्याममोहन ने बाबा के बहुत-से क़िस्से सुन रखे थे। वे क़िस्से उसने

दमयंती को सुनाये। उसने कहा, "इस बार तो दीपावली पर कमाल हो गया मा जी। सुनते हैं एक मन घी के दीपक समाधि और कुटी पर जल गए। ऐसा वैभव तो किसी राजा महाराजा का भी नहीं होगा।"

"तुमने अपनी आँखों से देखा श्याममोहन?"

"बिल्कुल। और कुछ दिन पहले बम्बई के एक सेठ आये थे। उन्होंने जिस औरत से विवाह किया था, वह बड़ी सुन्दरी थी। थोड़े दिनों बाद उसके रक्त में कुछ विकार आ गया और श्वेत दाग़ उसके शरीर पर उभर आये। सेठ ने बहुत इलाज कराया—लाखों रुपये पानी में फेंक दिए—लेकिन कुछ फ़ायदा नहीं हुआ। फिर किसी ने उसे समझाया, 'अरे मूरख, तू घघरिया वाले बाबा के पास क्यों नहीं जाता।' तो वह अपनी पत्नी को लेकर दौड़ा आया कानपुर। बाबा ने न जाने उसे कैसी जड़ी-बूटी दे दी कि उसकी पत्नी की काया फिर कंचन-सी हो गई।"

"क्या यह ठीक है श्याममोहन?" दमयंती ने फिर पूछा।

"अरे, आप उनके क़िस्से सुनें तो दंग रह जायँ। कानपुर आने से पहले वे बिहार के किसी बड़े क़स्बे में थे। वहाँ भी उनके हिन्दू-मुसलमान अनेक चेले थे। कबीर के सम्बन्ध में तो आपने सुना ही होगा कि उनके शव को लेकर हिन्दू-मुसलमानों में झगड़ा हुआ था; लेकिन इनके जीवन में तो एक घटना बिल्कुल ऐसी ही घट चुकी है। वहाँ यह औघड़ बाबा के नाम से प्रसिद्ध थे। बाजार से जब ये निकलते तो दूकानदारों की इच्छा होती कि बाबा कैसे ही उनकी चीज़ छू दें कि बरक्कत हो जाय। लेकिन बाबा किसी ओर ध्यान ही नहीं देते थे। एक सन्ध्या को नाचते हुए वे बाज़ार से जा रहे थे कि सहसा गिर गए और उनकी मोक्ष हो गई। सामने के बजाज़ ने नये थान में से लट्ठा फाड़कर उन्हें उढ़ा दिया। थोड़ी देर में भीड़ हो गई। हिन्दू कहने लगे—बाबा हमारे थे, हम जलायेंगे; मुसलमान कहते थे—बाबा हमारे थे, हम दफ़नायँगे। जब झगड़ा बढ़ने लगा तो

बाबा उठ खड़े हुए और बोले, "तुम झगड़ा करते हो। जाओ सालो, हम मरते ही नहीं।" और फिर उस क़स्बे में बाबा को किसी ने नहीं देखा।"

"क्या कलियुग में भी ऐसा हो सकता है श्याममोहन?" दमयती ने दाँतों के नीचे उँगली दबाकर पूछा।

"हो क्या सकता है। हो ही रहा है मा जी।"

और दमयंती चक्कर में आ गई। बाबा के दर्शन को जाने लगी। बाबा ने पहले तो उसकी ओर ध्यान ही नहीं दिया। फिर पिघलकर एक दिन कहा, "कल दोपहर को आना।" बाबा उस समय समाधि के पास लहँगा पहने बैठे थे। पास में अगर की बत्तियाँ जल रही थीं। धूनी के धुएँ के कारण वातावरण में नशा था। बाबा एकान्त में थे। उन्होंने दमयती का हाथ अपने हाथ में लेकर कहा, "हाय निगोड़ी, अब आई है। मेरी तो आँखें पथरा गईं। इतना न सोचा कि तेरा विरह कैसे सहा जायगा?"

दमयती कायस्थ की लड़की थी। बाबा के संकेत को समझ गयी। बोली, "बाबा, मैं फिर किसी समय पूजा की सामग्री लेकर आऊँगी। आप से ऐसे मिलने में लाज लगती है।" और बचकर चली आई।

इसी घटना को लक्ष्य करके दमयती ने चड्ढा से कहा था, "श्याम-मोहन, तुम्हें आदमी की बिल्कुल पहचान नहीं है।"

११

एक दिन जगदीश अपने कमरे में बैठा था कि उसे एक पत्र मिला। उसमें लिखा था : पत्र देखते ही चले आना · तुम्हारी मौसी। यह मौसी जगदीश की सगी मौसी न थी। उसकी मा की एक घनिष्ठ सहेली थी और मथुरा में रहती थी। कम पढ़ी-लिखी थी; लेकिन स्वभाव की मधुर और

बहुत बोलने वाली थी। पति वैद्यक का काम करते थे और जयपुर वाले वैद्य जी के नाम से प्रसिद्ध थे—यद्यपि जयपुर से उनका कभी कोई संबंध नहीं रहा। पिछली बार जगदीश जब गाँव गया, तो इस मौसी से उसकी भेंट हुई। बात-बात में उसने कहा था कि वह कभी मथुरा देखना चाहता है। मौसी ने प्रसन्न होकर उत्तर दिया था : मैं जल्दी ही तुझे बुलाऊँगी।

जगदीश ने एक बार सोचा न जाय। लेकिन पत्र में कुछ स्पष्ट नहीं लिखा था। एक नए नगर के देखने का आकर्षण भी था। मौसी ने कहा था वह वहाँ से उसे वृन्दावन और बरसाने भी ले जायगी - उस बरसाने में जो राधा का गाँव था। राधा का स्मरण आते ही उसे रोमांच हो आया।

मौसी की अवस्था चालीस के आसपास थी। मौसा जी साठ के होंगे। यह उनकी दूसरी शादी थी। गाँव की होते हुए भी मौसी अब गाँव की-सी न लगती थी। सम्पन्नता ने उसकी आकृति पर एक विलक्षण शोभा ला दी थी। इस अवस्था में भी गहने पहनने का उसे शौक था। उँगलियाँ अँगूठियों से भरी रहतीं। हाथों में अब भी मौसी मेंहदी लगाती थी। स्वभाव की इतनी हँसमुख कि रोते आदमी को हँसा दे। जगदीश को यह मौसी बहुत अच्छी लगती थी। और कुछ नहीं तो मौसी से ही बात होंगी। चलते-चलते वह बहुत आग्रह कर गयी थी—बुलाऊँ तो ज़रूर-ज़रूर आना। ऐसा न हो कि न आये।

मथुरा पहुँचने पर वैद्य जी का मकान ढूँढ़ने में जगदीश को कोई कठिनाई नहीं हुई। जयपुर वाले वैद्य जी को सभी जानते थे। पत्थर का दो-मंजिला छोटा-सा मकान। जिस दिन से वैद्य जी मथुरा में आये थे, इसी मकान में रह रहे थे। गली में घुसते ही सड़क के किनारे उनकी बैठक थी, जिसमें ज़मीन पर फ़र्श लगा था और सफेद चादरें बिछी हुई थीं। इसी कमरे में बैठकर उन्होंने लाखों रुपया पैदा किया था; अतः इस घर को वे बहुत शुभ समझते थे। इस समय वे इस स्थिति में थे कि मकान ख़रीद सकें या नया मकान बनवा सकें; पर पता नहीं वह मकान शुभ हो या न

हो; अतः बहुत समझाने पर भी वे मकान बदलने को राजी न हुए। फ़र्श पर एक ओर एक संदूकची रखी थी। सामने कुछ मरीज बैठे थे। पास ही आँगन में एक नौकर खरल में कोई दवा कूट रहा था।

जगदीश ने वैद्य जी को हाथ जोड़कर नमस्कार किया और अपना परिचय दिया। मौसी ने जाने कैसे उसे ऊपर से देख लिया था। सामना होते ही जगदीश ने उसके पैर छुए। मौसी प्रसन्न होकर बोली : चल, ऊपर चल। वहीं बैठकर बातचीत होगी। तेरे मौसा जी को तो संदेह था; लेकिन मैं जानती थी तू जरूर आवेगा।

मौसी के उत्साह से लगा कोई बात है। संदेह मिटाने के लिए जगदीश ने पूछा : क्यों मौसी क्या बात है ?

मौसी ने कहा : तेरे मौसा कितने प्रसिद्ध हैं, यह तो तू जानता ही है। दूर-दूर से मरीज इनके पास आते हैं। डाक्टरों से भी जब किसी का इलाज नहीं हो पाता, तो उसे वे तेरे मौसा के पास भेज देते हैं। सो शहर मे एक डाक्टर इनके मित्र है। इनसे मित्रता हुई तो धीरे-धीरे मेरा भी डाक्टर साहब के यहाँ आना-जाना प्रारम्भ हुआ। पति-पत्नी दोनों स्वभाव के बहुत ही अच्छे है और दोनों ही दुःखी है। अब मै क्या करूँ ?

"आप क्या कर सकती है मौसी ?"

"यह तूने क्या कहा रे ! कर क्यों नहीं सकती। कोई रुपये-पैसे की कमी है उन्हें, जा दुःखी हो !"

"तब मौसी ?"

"मा-बाप की सबसे बड़ी चिन्ता होती है यह कि उसके घर में उनकी लड़की विवाह योग्य हो जाय। इसमें धनी निर्धन में कोई अन्तर नहीं। लड़की है, आ हा ! जैसे चाँद का टुकड़ा। लेकिन चाँद का टुकड़ा तो दूसरे घर का उजाला होता है। वह तो जहां जायगी, उस घर को जगमग करेगी। इस चाँद के टुकड़े के कारण न डाक्टर को नींद आती है और न

डाक्टरनी को। एक दिन मैं गयी तो दोनों अपना दुखड़ा रोने लगे। अब मुझसे तो किसी का दुःख देखा जाता है नहीं।"

"हाँ, दुःख तो आप किसी का नहीं देख सकतीं।"

मैंने कहा : अब मैं किसे देखने जाऊँ। मेरा अपना एक लड़का है। बी० ए० में पढ़ता है। जहाँ रहता है दूर-दूर तक वहाँ उसका नाम है। लेकिन गाँव में तो वह रहने से रहा। अरे बी० ए०, एम० ए० क्या वह गाँव में रहने के लिए कर रहा है? सुशील ऐसा है कि किसी की ओर निगाह उठाकर नहीं देखता। देखने में सुन्दर-सुरूप! डाक्टर बोले : बहिन जी, मै तो थक गया लड़के देखते-देखते। लड़के शिक्षित मिलते हैं तो आचरणवान नहीं मिलते। दोनों बातें मिलती हैं तो अवस्था अधिक होती है। ऊपर से दहेज अंधाधुंध माँगते हैं। वह भी मैं देने के लिए तैयार हूँ; लेकिन लड़का तो मन का-सा हो। उनका इस प्रकार गिड़गिड़ाना देखकर मैं तो सोच नहीं सकी क्या करूँ और मैंने तुझे वह पत्र लिख दिया।

जगदीश की समझ में अब आया मौसी के पत्र का आशय। वह गंभीर होकर बोला, "तुझे तो मालूम है मौसी, आजकल न कोई विद्वत्ता देखता है और न सुशीलता। सब धन को देखते हैं। और तुझे यह भी मालूम है कि मेरे पास पैसा नहीं। इसी से इस बात को अब आगे बढ़ाना ठीक नहीं। मैं तुझे देख चला, यह बहुत है। रात की गाड़ी से मैं वापस चला जाऊँगा।"

मौसी दुनिया देखे हुई थी। हतोत्साह नहीं हुई। अपना अधिकार जताते हुए कुछ झुँझलाकर बोली, "मुझसे भूल हुई। मा-बापों को समझ लेना चाहिए कि आजकल के लड़कों पर उनका कोई अधिकार नहीं। तुझे तो अब क्या याद होगा! विवाह के बाद तेरे मौसा जी बहुत दिनों तक गाँव में ही रहे थे। तेरी मा तो जैसी लापरवाह है तुझे मालूम ही है। मेरे तो एक लड़की बहुत बाद में यहाँ आकर हुई। तब महीने में बीस दिन लाला जी, मेरे पास ही रहते थे और बीमारी में तो मै तुझे वहाँ छोड़ती

ही न थी। इतने बड़े जो आप हो गए हैं, वह इस मौसी की वजह से ही। जब पोदना-से थे, तभी उठाकर कहीं फेंक देती, तो ऐसी बात न सुननी पड़ती। राम रे, आज के बच्चों से कोई समझदारी की बात कहो, तो फ़ौरन काट देते हैं। पैसे की बात तुमसे उठायी किसने—लड़की ने, कि उसकी मा ने, कि उसके बाप ने, कि उसके पड़ौसी ने, कि काने चोर ने ?"

जगदीश मौसी के गले से लिपट गया। बोला, "दूसरे की बात तो सुनती नहीं। अपनी कहे चली जाती है।"

मौसी उसे हटाते हुए बोली, "हट, ढोंगी कहीं का। मैं तुझे बचपन से जानती हूँ। नालायक़। हट न, क्यों मेरी गरदन तोड़े डालता है। इतने दिन से कभी न आया मौसी से प्यार जताने। बुलाने पर आया है। पालने के लिए मैं थी। कमायी उन्हें खिलायेगा जिन्होंने कभी तेरे लिए दुःख नहीं उठाया।"

"इस बात का डाक्टर साहब को पता है कि तूने मुझे बुलाने के लिए पत्र लिखा ?"

"पता क्यों नहीं है रे।"

"लेकिन होता तो यह है कि लड़की वाले लड़के वाले के पास जाते हैं।"

"तो समझ ले कि वे मेरे पास आये। अब मेरा लड़का कहीं बाहर है तो मैं उसे बुलाऊँगी कि नहीं ?"

"हमारी ओर से उत्सुकता कुछ ज़्यादा लगेगी। तू सोच ले। मुझे कोई आपत्ति नहीं है।"

"वह मैंने सब ठीक कर दिया है। किसी को कुछ भी पता नहीं लगेगा। घर की-सी बात है। तेरे हाँ कहने पर तेरी मा को मैं ठीक कर लूँगी। लड़की ऐसी तुझे मिलेगी नहीं जीवन भर, यह मैं बताए देती हूँ।"

"नाम क्या है ?"

"शारदा।"

"तुम्हीं उनके यहाँ जाती हो या वे लोग भी तुम्हारे यहाँ कभी आते है ?"

"देख, मै बराबर का व्यवहार रखती हूँ। जो मेरे यहाँ नहीं आता, मैं उस मुहल्ले में नहीं झाँकती।"

"तो, ऐसा नहीं हो सकता मौसी कि उस लड़की को तू यहाँ किसी बहाने से बुला ले और उन लोगों को पता न चले कि मै यहाँ आया हुआ हूँ।"

मौसी खिलखिलाकर हँस पड़ी। बोली : मैं तो तुझे बहुत सीधा समझती थी रे ! अच्छा, मै कोशिश करती हूँ।

मौसी नीचे चली गई। जगदीश ऊपर अकेला रह गया। उसे लगा वह वैद्य जी से कुछ बातचीत कर रही है। इसके बाद कुछ भी सुनाई नहीं दिया। मरीजों का आना-जाना रुक गया था। नौकर ने खरल में दवा कूटना बन्द कर दिया था। क्या उसे कहीं भेज दिया गया ? एक बार उसे यह भी सन्देह हुआ कि स्वयं मौसी कहीं बाहर गयी है।

सामान उसका ऊपर ही आ गया था। उसने हाथ-मुंह धोकर शेव किया और स्नान करने चला गया। लौटकर कपड़ पहने। वैद्य जी के रहने-सहने का ढंग पुराना था। कहीं भी मेज़ और कुर्सियाँ दिखाई नहीं दीं, अतः वह कुर्ता-धोती पहनकर बैठ गया। उसके रहन-सहन में थोड़ा परिवर्तन नयन के कारण आया था। लेकिन वह रहन-सहन उसका अपना नहीं था, दूसरे का दिया हुआ था। धोती-कुर्ता में ही वह अपनी स्वाभाविक दशा में रहता था। सच बात यह है कि टाई की नॉट अब भी उससे बहुत अच्छी लगानी नहीं आती थी। डाक्टर अवश्य आधुनिक ढंग के होंगे। उनकी लड़की भी ऐसी ही होगी। वहाँ उसी ढंग से जाना ठीक है, पहले उसने सोचा। लेकिन क्या कपड़ों से किसी व्यक्ति के सम्बन्ध में धारणा बनानी चाहिए ? बहुत सोचने पर उसने निश्चय किया कि वह हिन्दुस्तानी

ड्रैस में ही जायगा—अगर जाना पड़ा तो। मैं जैसा हूँ वे लोग मुझे वैसा ही देखें।

उसका ट्रंक उसके पास रखा था—खुला हुआ। सबके ऊपर उसमें शीशा था। शीशा पहले उसने बाहर रख लिया था और कई बार देखा था। फिर उसे ध्यान आया—कोई आया तो जरूर सोचेगा मैंने देखने के लिए शीशा बाहर रख छोड़ा है। अतः शीशा उसने ट्रंक में रख दिया। अनजाने में ही कई बार ऐसा हुआ कि उसने ट्रंक खोला, शीशा निकाला और देखकर फिर रख दिया। उसने निश्चय किया अब वह शीशा नहीं ही देखेगा। फिर भी दो-एक बार भूल हो ही गई। उसे अपने पर झुझलाहट आई। समय जैसे-जैसे व्यतीत होता जाता था, उसके मन की घबराहट बढ़ती जाती थी। कभी वह यह देखता कि कमर से नीचे कमीज में कहीं सिकुड़न तो नहीं पड़ गई है, कभी वह धोती को ढग से सँभालता। सबसे बड़ संकोच की बात यह थी कि बाल उसके सिर पर छोटे थे। जिस दिन नयन ने टाइयाँ लाकर दी थीं, उस दिन से उसने बाल बढ़ाने और उन्हें रखने का निश्चय किया था; लेकिन इसी बीच मौसी का पत्र आ पहुँचा। कुछ भी हो, वह एक प्रकार की ऐसी मानसिक उलझन का सामना कर रहा था जिसका इससे पहले उसे कोई ज्ञान न था। कहाँ झझट में आ फँसा—एक बार उसने ऐसा भी सोचा; लेकिन अब उद्धार का कोई उपाय नहीं था, सिवाय इसके कि नियति ही कोई उपाय कर दे।

जगदीश की इच्छा हुई वह भाग जाय। लेकिन यह तो बहुत लड़कपन की बात होगी। अगर वह सहसा बीमार पड़ जाता। तब तो डाक्टर की लड़की से पहले डाक्टर ही उसे देखने आयगा। वह उठकर कमरे में घूमने लगा। गली में भी उसने कई बार झाँका। कोई नहीं आ रहा। वह फिर बैठ गया। इतने में ज़ीने में किवाड़ों के खटकने की आवाज आई। बिल्ली थी जो उधर से निकल गई।

वह फिर सोचने लगा। कैसी होगी डाक्टर की लड़की। मौसी कहती

है बहुत सुन्दर है—सुन्दर जैसे चाँद का टुकड़ा। लेकिन क्या मौसी को सचमुच सौंदर्य का ज्ञान है ? क्या वह जानती है सुन्दर किसे कहते हैं ? और उसका मन उदास हो गया। क्या उसके भाग्य में सुन्दर प्राणी लिखा है ? क्या होता है यह विवाह ? क्यों होता है ? क्या आवश्यकता है इसकी ?

मान लो शारदा आ गई शारदा जिसे मैंने कभी देखा नहीं, जिसने मुझे कभी जाना नहीं। यदि उसे यह पता चले कि मैं उसे देखने आया हूँ। क्या सोचेगी वह ? जब लडकियों को कोई देखने आता है, तब उनके मन का भाव कैसा होता है ? क्या सोचती है वे ? क्या उनके मन की बात जानी जा सकती है ?

उसे लगा शारदा को उसने कहीं देखा है। अपनी कल्पना से एक चित्र उसने उसका बनाया। लेकिन यह उसके मन का ही चित्र था। उसके मन में जन्म-जन्मान्तर से कोई नारी बैठी थी - उसी का चित्र था वह। यह क्या इंदुकुँवरि का मुख है ? नहीं। नयन का ? नहीं। सीमा का ? नहीं, नहीं ? तब क्या शारदा का मुख इससे मिलता है ? कौन जाने मिलता हो, कौन जाने न मिलता हो।

इतने में नीचे कुछ कोलाहल-सा हुआ। एक झबरे-से कुत्ते के साथ एक सज्जन थे। तो ये डाक्टर साहब है। उसका मन उदास हो गया।

डाक्टर एकदम ऊपर आ गए। जगदीश ने नमस्कार किया।

"आप बैठिए। अभी तो मै जाऊंगा। जल्दी में हूँ। मुझे अभी सूचना मिली। रात को आप खाना हमारे यहाँ ही खायेंगे। ना नहीं सुनी जायगी।"

और वे मुस्कराकर नीचे उतर गए।

१२

संध्या समय डाक्टर की कार आकर जगदीश को ले गयी। कार में डाक्टर की छोटी लड़की भी थी। लड़की की अवस्था होगी कोई ग्यारह-बारह वर्ष की। उसे देखकर जगदीश ने अनुमान लगाया कि इसकी बड़ी बहिन कैसी होगी। कल्पना करके उसे बहुत सुख मिला।

"तुम्हारा नाम क्या है ?"

"मेरा नाम कुछ नहीं।"

"अच्छा नाम है।"

लड़की ने हँसकर पूछा, "और आपका नाम क्या है ?"

"हमारा नाम भी कुछ नहीं।"

"वाह, आपका नाम यह कैसे हो सकता है।"

' आप हमें जानती हैं ?"

"जी हाँ, जी नहीं।"

"यह क्या बात हुई ?"

"थोड़ा-थोड़ा जानते हैं।"

जगदीश शारदा के संबंध में कुछ पूछना चाहता था; लेकिन ड्राइवर का संकोच था।

"आपके घर पर इस समय क्या हो रहा है ?"

"खाना हो रहा है।"

"कौन कर रहा है ?"

"महाराजिन बना रही है। चाची जी पास बैठी हैं।"

"चाची जी कब से हैं ?"

"अरे, वह तो दोपहर से ही वहाँ हैं।"

"आपकी ममी नहीं हैं चौके में ?"

"नहीं। वे चौके में नहीं जातीं।"

"आपसे कुछ बनाना आता है ?"

"आता क्यों नहीं ।"

"तो आप कुछ बनाइए, हम खायेंगे ।"

"कल को हम बना देंगे ।"

"हम तो आज रात को चले जायेंगे ।"

"आपको जाने कौन देगा । पापा कह रहे थे अभी आप दो-तीन दिन नहीं जा सकते ।"

"अगर आपके घर में हमें किसी ने नहीं घुसने दिया तो..."

"अरे आप कैसी बात करते है । मै कैसी साथ हूँ । आप तो बहुत डरपोक आदमी मालूम होते हैं । जीजी ठीक ही कह रही थी ।"

जगदीश को उत्सुकता हुई, "क्या कह रही थी जीजी तुम्हारी ?"

"मै आ नहीं रही थी तो जीजी ने कहा : गाँव के आदमी है । यहाँ आते डरते है । जा तू साथ ले आ ।"

ऐसा कहकर लड़की हँस पड़ी । कार रुक गई ।

सूर्य डूबने ही वाला था । उसकी लालिमा दूर आकाश पर फैल रही थी । संध्या का एक अपना सौन्दर्य होता है, अपना प्रभाव । जगदीश संकोची स्वभाव का व्यक्ति था । मिलने-जुलने का उसे बहुत कम अभ्यास था । लेकिन जिस आत्मीयता से दोपहर को डाक्टर ने बात की थी उससे वह आश्वस्त हो गया था । फिर भी न जाने उसे कैसा लग रहा था । उसकी इस भेंट का क्या परिणाम होगा, वह जानता नहीं था । लेकिन उसे ऐसा लगता था कि किसी को बिना देखे ही वह आकर्षित हो गया है । इसी से उसे डर लग रहा था कि कहीं ऐसा न हो जिससे उसका सपना टूट जाय ।

डाक्टर दरवाज़े पर ही मिले । उन्होंने हँसकर उसका स्वागत किया । मकान नया था और काफ़ी बड़ा था । डाक्टर ने बताया कि यह मकान उन्होंने अभी बनवाया है । जगदीश को जिस बात ने सबसे अधिक चकित किया, वह था डाक्टर का पशु पक्षी प्रेम । न जाने कितने प्रकार की

चिड़ियाँ उन्होंने पाल रखी थीं। पिंजड़ों पर जाकर उन्होंने सभी की विशेषताएँ बतलाईं। बाहर ही एक कोने पर एक टीला-सा बना दिया गया था जिस पर दो मोर बैठे थे। निर्मल जल के एक कृत्रिम कुंड में उन्होंने विलक्षण रंग वाली मछलियाँ दिखलाईं। जगदीश की ऊपर दृष्टि गई तो छतरी पर कबूतरों का एक जोड़ा उतर रहा था। इतने में दाहिने हाथ के दरवाज़े से एक हिरन दौड़ता हुआ आया। उसके पीछे एक लड़की थी। हिरन बायें हाथ के कमरे के दरवाज़े में घुस गया। लड़की ने पिता के साथ एक अतिथि को देखा तो वह संकोच के कारण हिरन को छोड़कर पीछे की ओर भाग गई। जगदीश उसकी केवल एक झलक देख पाया। वह झलक जैसे उसकी आँखों में होकर अन्तर्प्रदेश में उतर गई। सम्पन्न घरों की सभी ओर से रक्षित सुन्दरता का क्या कहना है! वह सोचने लगा : क्या उसका ऐसा भाग्य है कि इस लड़की को पा सके।

दोनों ड्राइंग-रूम में आ गए।

इससे पहले कि डाक्टर घुमा-फिराकर कुछ बातें करें—यद्यपि यह डाक्टर का स्वभाव नहीं मालूम होता था, वह काफ़ी खुले स्वभाव के व्यक्ति थे जगदीश ने कहना प्रारम्भ किया, "मौसी ने जब मुझे पत्र लिखा था, तब मुझे बिल्कुल पता नहीं था कि उन्होंने मुझे किसलिए बुलाया है। मुझे इस बात का पता होता तो मैं शायद नहीं ही आता। यह पत्र लिखने में उनसे भूल हो गई है, ऐसा मैं इस समय सोचता हूँ। मेरे संबंध में भी उन्होने जो कुछ कहा होगा, वह स्नेह के वशीभूत होकर ही। लेकिन सच बात यह है कि एक तो मेरा जन्म गाँव में हुआ है जिसका प्रभाव अभी मेरी बोली और वेशभूषा पर है और दूसरे, हम लोग बहुत गरीब हैं। बहुत दिन से मेरे पिता कुछ भी नहीं कर रहे। यह शिक्षा भी कठिनाई से चल रही है। ऐसी दशा में मैं यह नहीं सोच सकता कि आप केवल मौसी जी के कहने पर इस संबंध के लिए हाँ कर देंगे......"

डाक्टर का हँसने का शायद स्वभाव ही था। वह मुस्कराते हुए बोले,

"आपने जिस स्पष्टता से बात की है, वह मुझे बहुत अच्छी लगी। पहले जब आपकी चर्चा बहिन जी ने की थी तो मेरा अनुमान था कि जैसे आज-कल के और पढ़े-लिखे लड़के होते हैं, वैसे ही आप भी होंगे। लेकिन मेरा वह अनुमान ग़लत निकला। हम लोग यहाँ आकर बहुत दिनों से बस गये हैं; लेकिन हमारे बाबा खुद एक गाँव के रहने वाले थे। गाँव में जन्म लेना कोई बुरी बात नहीं है। मेरी ड्रेस अंग्रेज़ी है; लेकिन अपने देश की वेशभूषा कोई हीनता का कारण नहीं हो सकती। आपकी बातचीत से भी मुझे नहीं लगता कि आप गाँव के रहने वाले हैं। और शिक्षा आप गाँव में रहने के लिए तो नहीं ही पा रहे। एक बार जो गाँव से निकल आता है, वह फिर शहर का हो जाता है। कठिनाई से ही गाँव उसे दोबारा लौटा सकता है।"

"लेकिन मैं सचमुच ऐसी स्थिति में नहीं हूँ कि किसी उत्तरदायित्व को सँभाल सकूँ......"

"एक तो हम आपकी शिक्षा समाप्त होने तक प्रतीक्षा कर सकते हैं। दूसरे, लड़की को कोई कष्ट नहीं होगा, इसका विश्वास मैं दिलाना चाहता हूँ। अभी सत्तर-अस्सी हज़ार रुपया मेरा बैंक में है और मेरी प्रैक्टिस चल रही है। मेरे कोई लड़का नहीं है और केवल ये ही दो लड़कियाँ हैं। आवश्यकता पड़ने पर किसी समय भी पचास हजार तक मैं बड़ी लड़की के नाम कर सकता हूँ। आपको कोई कठिनाई हो, तो घर से अब आप कुछ न मँगाएँ, मैं भेज दिया करूँगा। इससे आपको इस सचाई का विश्वास हो जायगा कि मैंने मन से लड़की का संकल्प आपके नाम कर दिया है..."

जगदीश अंतिम वाक्य को सुनकर कुछ चकित हुआ। उसे प्रसन्नता भी बहुत हुई। जो आशंका थी वह मन से जाती रही। वह बोला, "नहीं नहीं, मेरा आशय यह नहीं था। मुझे संघर्ष करने में सुख मिलता है। मेरा सारा जीवन संघर्ष में ही बीता है और अब मुझे इसका अभ्यास हो गया है। मुझे पैसा देकर आप मेरी शक्ति को कुंठित न करें। यह मुझे

सहायता करने के स्थान पर बिगाड़ना होगा। आपके देने पर भी मैं इस काम के लिए पैसा स्वीकार नहीं कर सकूँगा। नहीं-नहीं; यह मेरा मतलब नहीं था। अपनी बात मैं ठीक से आपको नहीं समझा पाया।"

"मैंने बहिन जी से पूछा था कि क्या आपके पिता जी को लिखा जाय तो उन्होंने कहा : वे तो देवता आदमी हैं। कुछ कहते-सुनते नहीं। इसकी मा को मै ठीक कर लूँगी; लेकिन असली उत्तर लड़का ही देगा। इसी से मैंने आपसे इतनी बातें कीं। अब आप इसमें व्यर्थ के संदेह उठाकर अड़चन न डाले।"

क्या संसार में इतने अच्छे आदमी हो सकते हैं, जगदीश सोचने लगा। इतने में मौसी ने सहसा प्रवेश किया। आते ही बोलीं, "अरे, कुछ खायेगा-पीयेगा भी कि बातें ही करता रहेगा।"

डाक्टर ने कुछ संकोच का-सा अनुभव करते हुए कहा, "हाँ, हाँ, आपको खाना खिलाइए। आपको तो जल्दी खाने की आदत होगी।"

"जी नहीं, ऐसी कोई बात नहीं।"

"फिर भी आइये।" और वे दोनों डाइनिंग-रूम में जाकर मेज़ के सामने आ बैठे।

खाने पर डाक्टर और जगदीश दो ही थे। मौसी चौके में चली गई। खाना खिलाने का काम दो लड़कियाँ कर रही थीं। जगदीश ने देखा शारदा उनमें न थी। संभवतः दोनों उसकी सहेलियाँ थीं। या हो तो कौन जाने! इसके पूर्व शारदा को उसने देखा तो था नहीं। तब हिरन के पीछे दौड़ती वह लड़की कौन थी? कौन थी जो बिजली-सी चमककर कहीं छिप गई! बाहर की लड़की होती तो वैसा संकोच क्यों करती? नहीं-नहीं, शारदा ऐसी साधारण नहीं हो सकती।

खाने पर अनेक प्रकार के आग्रह हुए। डाइनिंग-रूम के दरवाज़े पर पर्दा पड़ा हुआ था। वहाँ कुछ बातें हो रही थीं। वह जगदीश स्पष्टता से सुन नहीं सका। इस बीच डाक्टर की छोटी लड़की आकर जगदीश के पास

बैठ गई। जगदीश ने उससे आग्रह किया कि वह भी कुछ खाय; लेकिन वह जगदीश के साथ न बैठकर पिता के साथ खाने लगी।

"यह मेरी छोटी लड़की ज्योत्स्ना है। इससे तो आपका परिचय हो चुका है।"

"जी हाँ, इनका नाम तो 'कुछ नहीं' है।"

"आपका नाम भी तो कुछ नहीं है।"

"अच्छा हम दोनों कुछ नहीं हैं।"

"आप 'कुछ नहीं' होंगे, मै तो ज्योत्स्ना हूँ।"

डाक्टर हँस पड़े।

खाना खाकर डाक्टर और जगदीश दोनों ड्राइंग-रूम में आ गए। ड्राइंग-रूम के आँगन की ओर वाले दरवाज़े पर एक पर्दा पड़ा हुआ था। वहाँ भी धीरे-धीरे बातचीत की कुछ ध्वनि आ रही थी। ऐसा लगता था जैसे कोई किसी को भीतर कमरे में लाने का प्रयत्न कर रहा है।

मौसी ने पर्दे के पीछे से कहा: डाक्टर साहब अब आप बाहर जाइए। ये लड़कियाँ कुछ बात करेंगी।

डाक्टर हँसते हुए उठ खड़े हुए। बोले: मैं तो अब देर से लौटूँगा। ड्राइवर बहिन जी और आपको घर पहुँचा देगा।

"मै पहुँचा दूँगी पापा", ज्योत्स्ना ने टोकते हुए कहा।

डाक्टर ने बच्ची को थपथपाते हुए कहा, "अच्छी बात है।" और चले गए।

डाक्टर के जाते ही हँसी का फव्वारा ड्राइंग-रूम में घुस आया। इनमें शारदा, उसकी दोनों सहेलियाँ, डाक्टरनी और मौसी थीं। जगदीश उठकर खड़ा हो गया।

ड्राइंग-रूम में तीन सोफ़े और चार कुर्सियाँ थीं। डाक्टरनी और मौसी एक सोफ़े पर बैठ गयीं। दोनों सहेलियाँ दूसरे सोफे पर। शारदा खड़ी रही।

जगदीश ने शारदा से कहा, "आप बैठिए न।"

शारदा ने गर्दन झुका ली। बैठी नहीं।

एक सहेली बोली, "कह रहे हैं। बैठ जा न। आज्ञा का उल्लंघन नहीं करते—वेदों में लिखा है।"

शारदा ने मधुर चितवन से सहेली की ओर देखा और बैठ गई।

एक सहेली बोली, "मौसी, हमने सुना है, आप पान बहुत अच्छे लगाती हैं।"

मौसी बोली, "अच्छा मैं जा रही हूँ।" फिर जगदीश की ओर देख कर बोली, "ये लड़कियाँ बहुत देर से मेरी जान खा रही हैं। इन्हें किसी तरह पता चल गया है कि तू कविता लिखता है। कोई याद हो तो सुना दे न।"

"आप मौसी जाइए भी न। हम सुन लेंगी।" दूसरी सहेली बोली। डाक्टरनी की ओर देखकर उसने कहा, "आपने तो अभी खाना भी नहीं खाया।"

डाक्टरनी हँसी और उठकर चलने लगी। मा के चलते ही शारदा भी पीछे हो ली। एक सहेली ने उसका अंचल पकड़ कर खींचा और बोली, "शारदा इस ढोंग से क्या फ़ायदा है?"

मा ने मुड़कर कहा, "बैठ न शारदा।"

शारदा बिना कुछ झंझट किए जिस सोफे़ पर मा और मौसी बैठी थीं, वहीं आकर चुपचाप बैठ गई।

"मेरा नाम चन्द्रा है।" पहली सहेली ने कहा।

"और मेरा यमुना।" दूसरी बोली।

"जब आपने नहीं पूछा तो सोचा स्वयं ही अपने को इंट्रोड्यूस करें।" चंद्रा ने हँसकर कहा।

जगदीश ने एक उड़ती दृष्टि शारदा पर डाली। शारदा को बहुत सुन्दर लड़कियों में गिना जा सकता था। दोनों सहेलियों की आकृति पर

मथुरा के सौंदर्य की छाप थी। गोपियों के सौंदर्य के सम्बन्ध में हमारी एक धारणा है। प्रायः चित्रों में भी हम उन्हें देखते हैं। चन्द्रा और यमुना के परिवार संभवतः शताब्दियों से वहाँ रहते आये हैं; अतः उनकी छवि में गोपियों की छवि की-सी कुछ झलक थी। लेकिन शारदा को देखकर लगा कि यह मथुरा की लड़की नहीं है। लखनऊ में जैसी सुन्दर लड़कियाँ देखने को मिलती हैं, वैसी ही वह है। इसका कारण संभवतः यह हो कि उसकी मा स्वयं लखनऊ के एक प्रसिद्ध डाक्टर की लड़की थी। शारदा के उठने-बैठने से एक गरिमा टपकती थी। शील उसमें था, पर झूठी लज्जा न थी—लज्जा जो केवल हमारे संस्कारों का परिणाम होती है, लड़कियों को बचपन से ही जिसका पाठ पढ़ाया जाता है और जो उनके स्वभाव में बद्धमूल हो जाती है। हल्का पीलापन लिए गौर वर्ण, कोमल त्वचा, मुख पर मन को खींचने वाला अवर्णनीय लावण्य, कपड़े पहनने के ढंग से एक प्रकार की 'स्मार्टनैस' का परिचय।

"लीजिए साहब, किसी को इस बात का अभी पता तक नहीं है कि कुछ लोग उनसे बातें करना चाहते हैं।"

जगदीश अभी उस सौंदर्य से अभिभूत था। उसने सँभलते हुए कहा, "आपने मुझसे कुछ पूछा?"

" 'उनसे' के माने क्या होते हैं?" चन्द्रा ने पूछा।

जगदीश की समझ में कुछ भी नहीं आया। अत्यन्त सरल भाव से बोला, "जी, मैं समझा नहीं।"

यमुना ने हँसकर उत्तर दिया, "क्यों ऐसे सीधे आदमी को तंग करती है? 'उनसे' माने 'उनसे'।

"यानी?"

"उनसे माने कोई भी एक।" यमुना ने कहा।

"जैसे?"

"जैसे 'तू' ही!"

जगदीश ने शारदा की ओर देखा। शारदा ने कहा, "आपकी कोई कविता इस शीर्षक से किसी पत्रिका में निकली थी। उसी की चर्चा है। उसे ये आपसे सुनना चाहती है।"

"ओह!" जगदीश को सहसा हँसी आ गई। "वह कविता तो मुझे याद नहीं है।"

"कविता तो ख़ैर अभी भीतर से लाई जा सकती है।"

"यह तो ख़ैर आपकी कृपा है और यह मेरा सौभाग्य है कि आपने उसे पढ़ा; लेकिन कविता मुझसे पढ़नी नहीं आती।"

"हमें तो साहब वह कविता शारदा ने दिखाई थी और जब वह हमारे सिर ही पड़ गई तब हमें पढ़नी भी पड़ी। लेकिन सच कहें लगी अच्छी। कहाँ से आप लोग ऐसी कल्पनाएँ करते हैं? और जहाँ तक पढ़ने का सम्बन्ध है मौसी जी आपकी प्रशंसा करते थकती नहीं। और मौसी जी झूठ बोलेंगी यह तो हम नहीं मानते।" यमुना बोली।

"सुना दीजिए न।" चन्द्रा ने शरारतभरी वाणी में अनुनय की।

"शारदा ने सुबह से ही हम दोनो की वह ख़ुशामद की है, वह ख़ुशामद की है कि क्या कहें। लेकिन साहब हम तो न आते। हमसे कहा कि अरी ये वे ही हैं जिन्होंने 'उनसे' कविता लिखी है, तो हम तैयार हो गए। मथुरा कवियों की नगरी तो है नहीं। कभी भूले-भटके बाहर का कोई कवि यहाँ आ जाता है, तो इसके भाग जग जाते हैं। अब इतना निराश तो न कीजिए।"

शारदा ने इस बीच चन्द्रा और यमुना दोनों को तिरछी चितवन से देखा। दोनों ने जान-बूझकर उधर ध्यान ही नहीं दिया।

"इस समय तो मुझे क्षमा कीजिए; लेकिन फिर कभी आपके दर्शन का सौभाग्य प्राप्त हुआ तो जैसा भी टूटा-फूटा लिखता हूँ, ज़रूर सुना दूँगा।"

"अच्छा इतना ही बता दीजिए कि यह 'उनसे' है कौन?" चन्द्रा ने पूछा।

"कविता लिखने के लिए किसी का होना ज़रूरी है क्या ?"

"पढ़कर तो लगता है कि कोई है।"

"कल्पना है।"

चन्द्रा हँसकर बोली, "यह तो आप शारदा के डर से कह रहे हैं।"

शारदा उठकर खड़ी हो गई। बोली, "मौसी जी शायद भूल गईं। मैं पान लाती हूँ।"

मौसी ने भीतर से कहा, "अरे, उठेगा कि नहीं। यहाँ तो ज़िन्दगी भर बैठना है।"

जगदीश खड़ा हो गया।

डाक्टरनी पान लेकर आई और कहने लगी, "इन लड़कियों ने आपसे कुछ कहा हो तो बुरा न मानें।"

"कहिए साहब, हम लोगों ने कुछ ऐसा कहा था जिससे आप बुरा मानें ?" चन्द्रा ने हँसकर पूछा और आग्रह किया, "एक पान तो और लीजिए।"

जगदीश ने दूसरा पान ले लिया। डाक्टरनी की ओर देखकर बोला, "इतने अच्छे लोग कहाँ देखने और बात करने को मिलते हैं।"

"इसमें आपने देखने वाली बात किसी और के लिए और बात करने वाली बात किसी और के लिए कही है," यमुना बोली।

जगदीश हँस पड़ा। दोनों सहेलियाँ भीतर चली गयीं।

"कल भी आप यहीं खाना खाएँगे। मैंने बहिन जी से कह दिया है।"

"कल तो मैं चला जाऊँगा।"

"लेकिन कल आप कैसे जा सकते हैं ? अभी तो आपसे बहुत-सी बातें करनी हैं। मैंने तो आपसे कोई बात अभी की ही नहीं।"

"इससे अब क्या बात करनी है। इसके बारे में अब मैं बात करूँगी।" इतना कहते हुए मौसी ड्राइंग रूम में आ गई।

डाक्टरनी ने दोनों को कार से विदा किया।

१३

जगदीश मौसी की छत पर आकर बैठ गया। उसका पलंग पहले ही नौकर बिछा गया था। पूर्णिमा की चाँदनी रात। दूधिया चाँदनी चारों ओर छिटकी हुई थी। ऐसे ही एक बड़े चन्द्रमा का मुख जगदीश के बाहर और भीतर उगा था। जीवन में इतनी प्रसन्नता जगदीश को शायद ही कभी हुई हो। यह ठीक है कि शारदा ने उससे बातें नहीं की थीं; लेकिन आँखों के सामने उसका इतना रहना भी कम नहीं था। ऐसे अवसरों पर मध्य वर्ग की लड़कियाँ इतनी भी नहीं निकल पातीं। खाने के समय पापड़ या बाद में पान देकर चली जाती हैं। फिर भी शारदा कुछ खुल नहीं पायी। यदि कुछ कहती तो अच्छा होता। लेकिन सहेलियाँ जो थीं। सारी बातें तो उन्हीं ने कीं। यदि वे न होतीं तो निश्चित रूप से उसके मन का कुछ पता चलता। लेकिन अब क्या हो सकता है!

मैं कल न जाऊँ? लेकिन क्या शारदा से एकांत में भेंट हो जायगी? डाक्टरनी ने कल भी तो मुझे खाने पर बुलाया है। हो सकता है कल वे मुझे एकांत में उससे बात करने का अवसर दे दें। यदि ऐसा हो तो मैं क्या कहूँगा? क्या पूछूँगा?

चाँदनी रात में मन प्रायः कल्पनाशील हो जाता है। चन्द्रमा की ओर उसने देखा। वह कितना सुन्दर था! कितना मधुर था! आकाश—कितना निर्मल था! पत्थर के मकानों की दीवारों पर पड़ने वाली चाँदनी कितनी आकर्षक थी! इच्छा होती थी वह कहीं खो जाय! उसने कल्पना की··· शारदा उसके सामने बैठी है। पहले तो वह बोल ही नहीं पा रहा। फिर धीरे-धीरे वह अपनी परिस्थिति उसे समझाता है। समझाता है कि यदि कभी ऐसा हुआ कि वे दोनों साथ रहे तो फिर वह जीवन में किसी अभाव का अनुभव नहीं करेगा! शारदा पलकें उठाकर केवल उसकी ओर देखती है और चुप रह जाती है।

यह स्वप्न बहुत देर नहीं चला । उसने सहसा आवाज़ दी—मौसी । मौसी ने उत्तर दिया -आई रे । उसने सम्भवतः आँगन में नीचे ही सोने का प्रबन्ध कर लिया था । मौसा जी से वह कुछ बातें कर रही थी ।

आते ही मौसी ने कहा, "क्यों नींद नहीं आ रही है क्या ? इस समय मौसी को क्यों तंग किया ? अब क्या कमी रह गई ? देख ली न लड़की ! मैं जो कहती थी कि चाँद का टुकड़ा है । है न ? इसकी मा भी किसी समय ऐसी ही सुन्दर थी । जहाँ से निकल जाती थी, वहाँ उजाला हो जाता था ।"

जगदीश ने मौसी को हाथ पकड़ कर बिठा लिया । बोला, "यह तो ठीक है मौसी, लेकिन पर्दे के पीछे क्या बात हो रही थी, यह तो तूने बताया ही नहीं ।"

"बात क्या होती रे । जब मैं खाना परस चुकी तो मैंने शारदा से कहा कि थाल ले जा । शारदा ने चन्द्रा और यमुना की ओर संकेत करके कहा—ये ले जायँगी ।"

"तो ?"

चन्द्रा ने कहा, "देखने तुझे आये हैं या मुझे ?"

यमुना बोली, "विवाह तेरा होगा या हमारा ?"

"यह तो कोई बात नहीं हुई ।"

"इसी से तो कहती हूँ, इसमें पूछना क्या है ?"

"और भी तो कुछ कहा होगा ?"

मौसी ने झिझकते हुए कहा, "कुछ नहीं रे ! पागलपन की बात है ।"

"वही तो मौसी । तू कुछ छिपा रही है ।"

"एक बार चन्द्रा और यमुना ने उसे छेड़ते हुए कहा था—ठीक बता शारदा, तेरे मन में क्या है ? उसने कहा 'हिस्ट' ! लेकिन चलते समय मैंने उससे पूछा था : शारदा, मैं तेरी मा के बराबर हूँ । लड़के को देखकर तेरे मन पर क्या असर पड़ा, तू मुझे तो बता दे ?"

"क्या उत्तर दिया ?"

"मैं कह तो रही हूँ कि पागलपन की बात है—एकदम पागलपन की बात।"

"मौसी तुझे मेरी सौगन्ध है जो बताये न।"

"कहने लगी : मौसी जितना तुम कहती थीं, उतने सुन्दर तो नहीं हैं।—लेकिन तू अब सोजा।"

इतना कहकर मौसी जीने से नीचे गयी। जगदीश ने अपना सिर तकिए में छुपा लिया। उसे लगा जैसे उसे पहाड़ पर से किसी ने धक्का दे दिया है। उसकी आँखों के आगे अँधेरा है और पता नहीं वह कहाँ जाकर गिरेगा!

१४

विवाह से पूर्व लड़कियों के मन को समझना बहुत कठिन काम है। वे स्वयं भी उसकी गति-विधि से परिचित नहीं होतीं। एक ओर सस्कारों का भय रहता है, दूसरी ओर घर का, तीसरी ओर समाज का। और इस सबके भीतर से एक तूफ़ानी नदी में होकर उन्हें अपनी नौका खेनी पड़ती है। लक्ष्य का पता नहीं, किनारो का पता नहीं, खेवक का पता नहीं। केवल चंचल लहरें, लहरें, लहरें! नाविक दिग्भ्रष्ट होकर न जाने कहाँ ले जाय, पता नहीं। पतवार कब टूट जाय, ख़बर नहीं। डाँड़ कब हाथ से छूट जाय, कहा नहीं जा सकता। बहुत प्रयत्न करने पर भी किस किनारे पर कब जा लगेगी, इसका ज्ञान नहीं। उस सुनसान प्रदेश में उनका कोई होगा भी या नहीं, ईश्वर ही जानता है। और ऐसी ही भी स्थिति हो सकती है कि वे लाख हाथ-पैर मारने पर भी डूब जायँ—अतल में—वहाँ जहाँ उनका कभी कोई पता ही न पा सके।

आधुनिक लड़की का मन पिछले सभी युगों की लड़कियों के मन की अपेक्षा बहुत कम्प्लैक्स हो गया है। अब वे केवल एक ही का चिंतन नहीं करतीं और इसे वे बुरा भी नहीं समझतीं। वह एक कौन है, जब उसका पता उन्हें चल जाता है, तो वे आत्म-निवेदन कर बैठती हैं, लेकिन अनजान में आत्म-निवेदन कभी-कभी ग़लत व्यक्ति के प्रति भी हो जाता है। उसका दंड उन्हें मिलता है। उसका दुःख वे भोगती हैं। उसके लिए पश्चात्ताप उन्हें भी करना पड़ता है। लेकिन उनके बाहरी व्यवहार को देखकर उनके सम्बन्ध में कोई निर्णय देना बहुत भारी भूल है। अगर वे किसी के साथ हँसती-बोलती, उठती-बैठती, आती-जाती, खाती-पीती हैं, तो उसे प्रेम की संज्ञा देना ठीक नहीं है। कल ही यह सारा व्यवहार बदल सकता है, बन्द हो सकता है। अंतर के नियम ही इसे शासित करते हैं। बाहर का व्यक्ति उसके सम्बन्ध में बहुत कम जानता है। ऐसी दशा में यदि कोई लड़की एक से अधिक लड़कों के साथ 'इंटीमेट' है, तो उसे मात्र इतने से 'फ्लर्ट' कह देना, उसके प्रति अन्याय करना है।

कितने संदेह, अनुशासन, ताड़ना और संकट के भीतर से मध्यवर्ग की लड़कियाँ गुज़रती हैं, यह वे ही जानती हैं! बड़े होते ही मा और बड़ी बहिन उनके एक-एक आचरण को संदेह की दृष्टि से देखती हैं। घर में दादी हुई तब तो आफ़त ही है। बात-बात पर उन्हें टोका जाता है—हम भी बड़े हुए थे, लेकिन हिरनियों जैसी कुलाचें नहीं मारते फिरते थे; ओढ़ने-पहनने को अपना मन भी था और किसी से कम नहीं था; लेकिन ऐसी चोली ब्लाउज़ नहीं पहनते थे कि सारा शरीर दिखाई दे। राम-रे-राम, आजकल की लड़कियाँ लाज-शरम तो एकदम घोलकर पी गयीं हैं। आग लगे इस सिंगार-पटार में। अपने पतियों के लिए तो सभी काजल-महावर-मेंहदी लगाती हैं; लेकिन ये न जाने किसके लिए इतना करती हैं! और बस, आज की लड़की का सारा उत्साह ठंडा पड़ जाता है। भाई सारी दुनिया की लड़कियों से रोमांस करते फिरेंगे और बहिन की किसी छोटी

से छोटी बात का भी पता चल जायगा, तो इस बुरी तरह से डाट देंगे कि जैसे सारा स्नेह-सम्बन्ध ही समाप्त हो गया है। और आज की लड़कियों से जो मिलने आते हैं, उनमें से सबकी दृष्टि केवल उनके शरीर पर रहती है। उनका वश चले तो वे उन्हें कच्चा ही निगल जायँ। घर में, बाज़ार में, छवि-गृह में, उत्सवों में, घूरे चले जा रहे हैं, घूरे चले जा रहे हैं—जैसे सुन्दर लड़की को कभी देखा ही नहीं है—जैसे इनमें से सब कामदेव के अवतार हैं कि दृष्टि उठाई नहीं और लड़की इनकी ओर आकर्षित हो गई। पर सच बात यह है कि आज की लड़की के मन को जीतना बहुत कठिन काम है। जीतना तो दूर, उसको समझाना भी इतना सरल नहीं रह गया है।

श्याममोहन चड्ढा प्रीति के ड्राइंग-रूम में बैठे हुए हैं। पढ़ाने आए है!

"आज तो पढ़ाने को मन नहीं करता।"

"तो मत पढ़ाइए। कौन कहता है कि रोज़-रोज़ पढ़ाइए।"

"अच्छा, यह जगदीश आपको कैसा लगता है?"

"एक दिन में आदमी का क्या पता चलता है? आपके तो मित्र हैं। आप ही ज़्यादा जानते होंगे। मैं क्या सबके सम्बन्ध में सोचती रहती हूँ?"

"आदमी शायद बुरा नहीं है; लेकिन भावुक बहुत है। भावुक न हो, तो कविता कैसे लिखे! सुन्दरता के प्रति बहुत बड़ी दुर्बलता उसके मन में है।"

"तब तो अपने को कोई डर नहीं।" प्रीति मुस्कराई।

निशाना ग़लत बैठ गया। चड्ढा ने फिर बात बढ़ायी, "नवाबगंज में गुरु का जो रैस्ट्राँ है, उसी में हज़रत अकेले बैठे रहते थे। कोई साथी, न संगी! एक दिन मुझे किसी से मज़ाक करते देखा तो खिल पड़े। पास आकर बोले: ऐसा ख़ुशमिज़ाज आदमी मैंने ज़िन्दगी में दूसरा नहीं देखा। मैं तो भाई बहुत उदास रहता हूँ और तुम जानते ही हो कि उदास स्वभाव

वाले व्यक्ति को ख़ुशमिज़ाज आदमियों की कितनी ज़रूरत रहती है। तो भाई चड्डा, कभी-कभी हमारे पास भी बैठ जाया करो। उस दिन से थोड़ा मेल हो गया। अब जगदीश साहब हैं कि कहते फिरते हैं कि चड्ढा उनका सबसे बड़ा दोस्त है। उस दिन उन्हें यहाँ ले आया तो रामायण सुनाकर आप पर रौब गाँठ गये।"

"नही, मेरे ऊपर तो कोई रौब नहीं पड़ा।"

"कोशिश तो उन्होने ऐसी ही की थी।"

"ऐसा भी नहीं लगता कि मुझे प्रभावित करने के लिए ही उन्होंने वह प्रसंग उठाया हो। बात चल पड़ी थी और बात आपने ही उठायी थी। मैंने तो उसे बन्द ही कर दिया था—यह सोचकर कि आपकी साहित्य में रुचि नहीं है। उत्तर दे पायें, न दे पायें।"

चड्ढा ने प्रसन्न होकर कहा, "मैं जानता हूँ आप मेरा कितना ध्यान रखती हैं!"

"इसमें ध्यान रखने की तो कोई बात नहीं। व्यर्थ की 'अनप्लैज़ेंटनैस' 'क्रिएट' होनी।"

बात फिर कहीं की कहीं जा पड़ी। चड्ढा ने कुछ सोचकर कहा, "बुरा न मानें तो एक बात कहूँ।"

"कहिए। मैंने किसी बात के लिए कभी आपको टोका है?"

"आजकल मैं पढ़ता हूँ तो न जाने क्या बात है कि आपका चित्र उन पृष्ठों पर तैरने लगता है। रात को कभी-कभी सपनों में भी आपको देखता हूँ। हर समय आपकी याद आती रहती है।"

प्रीति फिर मुस्करायी। गम्भीर होकर बोली, "यह तो अच्छी बात है। इसमें न कहने की क्या बात थी?"

"डर लगता था आप कहीं बुरा न मान जायँ। सुनकर आपको कैसा लगा?"

"अच्छा लगा।" प्रीति ने धीरे से उत्तर दिया।

चड्ढा का उत्साह बढ़ा। उसने पूछा, "आप ऐसे सपने नहीं देखतीं ?"

प्रीति ने उत्तर दिया, "नहीं, मैं तो ऐसे सपने नहीं देखती। क्या यह आवश्यक है कि जैसे सपने आप देखते हैं, वैसे मैं भी देखूँ ?"

प्रीति की यह स्पष्टता चड्ढा को अच्छी नहीं लगी। लड़कियों को क्या इतना स्पष्ट होना चाहिए ? उसने साहस करके पूछा, "आपने क्या सपने में मुझे कभी नहीं देखा ?"

प्रीति ने सिर हिलाकर कहा, "कभी भी नहीं।"

"सपने में कभी भी किसी को नहीं देखतीं ?"

"क्यों नहीं देखती ?"

"किसको देखती हैं ?"

"आपको बताने की बात नहीं है।"

"हम भी तो जानें कौन है वह।"

"मेरी बुढ़िया सास है - भावी सास। हाथ में मोटा सोटा लेकर मेरे पीछे दौड़ रही है और मैं भागती फिरती हूँ। फिर देखती हूँ मैं पकड़ाई में आ गई हूँ और उसने एक सोटा मेरी पीठ पर जड़ दिया है और इतने में मेरी आँख खुल जाती है..."

इतना कहकर प्रीति हँस पड़ी। उसने बंसी को आवाज़ दी। नौकर थोड़ी देर में चाय रखकर चला गया।

"तो आजकल आप विवाह के सम्बंध में सोचती रहती हैं ?" चड्ढा ने मुस्कराकर पूछा।

"हाँ।" प्रीति ने दाँतों से नीचे के ओंठ को दबाकर चड्ढा की ओर तिरछी चितवन से देखकर उत्तर किया।

"विवाह क्या अपनी ही जाति में करेंगी ?'

"कोई आवश्यक नहीं। बाहर भी कर सकती हूँ।"

"आपकी माता जी इस बात के लिए राज़ी हो जायँगी ?"

"वे तो नहीं होंगी। लेकिन पिता जी को आश्वयकता पड़ने पर मना

लूँगी। माता जी मेरे मन को बिल्कुल नहीं समझतीं; लेकिन पिता जी समझते हैं।"

"अगर वे भी राज़ी न हुए तो ?"

"तो ज़बरदस्ती करूँगी।"

"है आप में इतनी हिम्मत ?"

"अब यह तो समय आने पर देखा जायगा। पहले ऐसा आदमी तो दिखाई दे, जिसके लिए मैं इतनी 'रिस्क' ले सकूँ।"

श्याममोहन का बढ़ा हुआ उत्साह एकदम ठंडा पड़ गया। बात उसने आगे नहीं बढ़ाई।

चड्ढा ने कॉलेज में ही जगदीश को पकड़ने की कोशिश की। बोला, "बहुत आवश्यक काम है। आज शाम को गुरु की दुकान पर ज़रूर मिलना।" यह आवश्यक काम प्रीति के सम्बंध में बात करना ही था। जगदीश भी चाहता था कि कोई प्रीति के सम्बन्ध में कुछ कहे।

"आज तो कमाल हो गया।" चड्ढा बोला।

"क्यों, क्या हुआ ?"

"तुम्हें मालूम ही है कि ट्यूशन के सम्बन्ध में मेरे सिद्धांत कितने सख़्त हैं—साठ से इकसठवाँ मिनट नहीं बैठता, सनडे ऑफ़, पचास रुपये। चाहे पढ़ लो, चाहे बात कर लो। मेरे बैठते ही कहने लगीं—"आज तो पढ़ने को मन नहीं करता।"

जगदीश ने कहा, "यह तो अच्छी बात है। तुमने पूछा नहीं कि फिर क्या करने को मन करता है ?"

"मैं बोला, फिर रहने दीजिए। कौन कहता है कि रोज़-रोज़ पढ़िए। पूछ रही थीं कि जगदीश जी के बारे में आपका क्या विचार है ? मैंने पूछा, "आप ही बताइए न ?" तो बोलीं, "बुरा न मानिए चड्ढा साहब, मुझे तो वे कुछ सिलबिल्ले-से लगे। शायद अभी गाँव से आए हैं, इसलिए

ऐसे हों।" इस पर मुझे बड़ा क्रोध आया और मैंने कहा : आप लोग आदमी को केवल बाहर से देखती हैं। उसके मन का आपको पता नहीं रहता। मेरा दोस्त एक गीत आपको सुना दे तो रोमांच हो जाय। इस पर वे हँसने लगी और हँसना जो प्रारम्भ किया है तो बस रुकना ही नहीं जानतीं। इसमें हँसने की क्या बात थी ?"

"तुम मेरा पक्ष क्यों लेते हो ? जैसी धारणा वे स्वयं बनायें, बनाने दो।"

"भई वाह ! अब मित्र होकर तुम्हारा पक्ष नहीं लूँगा, तो कौन लेगा। ट्यूशन जाए भाड़-चूल्हे में और प्रीति रहे अपने घर; लेकिन मित्र की बुराई मै तो बर्दाश्त नहीं कर सकता।"

"और क्या बातें हुई ?" जगदीश ने पूछा।

"कह रही थीं ऐसा लगता है कि थोड़े दिनो में मैं पागल हो जाऊँगी। पढ़ने बैठती हूँ तो आपका चित्र पृष्ठों पर तैरने लगता है। सोती हूँ तो सपनों में आ खड़े होते हैं। इच्छा होती है कि आँखें अब खोलूँ ही नहीं। कोई ऐसा पल नहीं, जब आपकी याद न आती हो।"

"तुम सौभाग्यशाली हो चड्ढा।" जगदीश ने एक लम्बी साँस फेंकते हुए कहा।

"तुन्हें ईर्ष्या हुई ज़गदीश ?"

"मुझे प्रसन्नता हुई।"

"अच्छा, इस लड़की से मेरा विवाह हो जाय, तो कैसा रहेगा ?"

"लेकिन तुम खत्री, वह कायस्थ। दोनों के घर वाले राजी हो जायँगे ?"

"न हों। हम ज़बरदस्ती विवाह कर लेंगे।"

"क्या प्रीति सहमत है ?"

"मेरा विश्वास है सहमत हो जायगी।"

"लेकिन खत्रियों में तो बहुत सुन्दर लड़कियाँ मिल सकती हैं।"

"तुम समझते हो प्रीति किसी खत्री की लड़की से कम सुन्दर है ?"

"मैं तो समझता हूँ खत्रियों में प्रीति से कहीं सुन्दर लड़कियाँ होती हैं..."

"लेकिन यह नमक...?"

"लावण्य भी होता ही है उनमें। तुम शायद प्यार में हो, इसी से प्रीति से सुन्दर तुम्हें कोई नहीं दिखाई देता। प्यार में ऐसा ही होता है।"

"तो तुम मानते हो, मेरी यह फ़ीलिंग, प्यार की फीलिंग है ?"

"सौ फ़ी सदी।"

"लेकिन जितना मैं समझता हूँ, उतना तुम उसे सुन्दर क्यों नहीं समझते ?"

"मैं तो प्यार नहीं करता न।"

"मुझे तो कभी-कभी सन्देह होता है कि तुम उसे प्यार करते हो और......?"

"इस बातचीत के बाद भी और...?"

"अरे यार, लड़कियों का कोई भरोसा नहीं। वे यों ही पलट जाती हैं। अच्छा, अगर यह जानना हो कि किसी लड़की के मन में हमारे लिए प्यार है कि नहीं तो उसकी क्या पहचान है ?"

"एक बहुत बड़े आदमी ने कहा तो है—व्हैन दे से नो, दे मीन यस।"

"मैं भी यही मानता हूँ। प्यार में लड़कियाँ उल्टी बात करती हैं। तुम यह नहीं मानते ?"

"नहीं।"

"क्या कहा—नहीं ?"

"मैं तो समझता हूँ अपने सम्पर्क में आने वाले व्यक्तियों के प्रति उनके मन में सामान्यतया एक प्रकार की सद्भावना ही रहती है और उनमें से अधिकांश के प्रति वे शिष्ट व्यवहार ही करती हैं—इससे अधिक कुछ नहीं। कुछ के प्रति फ़ीलिंग भी रहती है और तब वही व्यवहार थोड़ा और

आत्मीय हो जाता है। दो-एक के प्रति आकर्षण भी रहता होगा। उनके छोटे-मोटे अपराधों पर वे ध्यान नहीं देतीं। व्यवहार भी उनके प्रति कुछ और ही प्रकार की मधुरता से मिश्रित होता है। किसी-किसी को वे प्यार भी करती ही हैं। ऐसे व्यक्ति को कुछ नहीं करना पड़ता। उसके लिए वे अपनी ओर से सब ठीक कर देती हैं।"

"तुमने कहीं प्यार किया है जगदीश ?"

"करना चाहा था।"

"तुम्हें किसी ने ?"

"शायद किया हो। मैं ठीक से जानता नहीं।"

"चाय एक-एक प्याला और हो जाय ?"

"हाँ, हाँ।"

रविवार की सन्ध्या को जगदीश प्रीति के यहाँ पहुँचा। प्रीति फाटक पर ही खड़ी थी। उसे देखकर बहुत प्रसन्न हुई। बोली : लॉन में ही बैठिए। मैं अभी आती हूँ। माता जी शायद कहीं जाने वाली हैं। आपको देख लिया तो फिर नहीं जायँगी।

"आप क्या कर रही थीं ?"

"मैं कुछ लिख रही थी। लेकिन उसको अभी देखिएगा नहीं। देखें तो मैं उसे उठाकर ले जाऊँ।"

"अच्छा, नहीं देखेंगे। लेकिन जल्दी लौटिए।"

लॉन में प्रीति की कुर्सी पर जगदीश जा बैठा। प्रीति को पैड के काग़ज़ों पर ही लिखने का अभ्यास था। उसने जो लिखा था उसे पहले ही नीचे लगा दिया था। ऊपर का कागज एकदम कोरा था। पैन वह खुला ही छोड़ गई थी। जगदीश बङ्गले की ओर पीठ किए बैठा था।

प्रीति पीछे से आई और उसे चौंकाती हुई बोली, "क्या लिख रहे हैं ?"

वह पास की कुर्सी पर बैठ गई। जगदीश ने लिखे को दोनों हाथों से

छिपा लिया। "कुछ नहीं है। सचमुच कुछ नहीं है। कुछ होता तो मैं आपको अवश्य दिखा देता।" वह बोला।

"तब तो और भी दिखाना चाहिए। दिखाइए, नहीं तो हम छू लेंगे।"

"डर लगता है।"

"मैं कहती हूँ डर की कोई बात नहीं है, दिखाइए।"

जगदीश ने पैड का कागज आगे बढ़ा दिया। पूरे पृष्ठ पर लिखा हुआ था—प्रीति...प्रीति...प्रीति...।

प्रीति ने आँख उठाकर जगदीश की ओर देखा। पैड के कागज को चार भागों में मोड़ा और चुप से कसी हुई ब्लाउज के भीतर रख लिया।

"इसे तो लौटा दीजिए।"

"नहीं।"

जगदीश चुप हो गया। काग़ज़ ऐसे स्थान पर था कि छीना नहीं जा सकता था।

"क्या सोच रहे हैं?" प्रीति ने पूछा।

"कुछ भी नहीं।"

"बताइए न?"

"सुनता तो मैं कुछ और ही था; लेकिन व्यवहार में वैसा नहीं हैं; इसी से समझ में कुछ भी नहीं आ रहा है।" और फिर श्याममोहन और उसके बीच जो बात हुई थी, वह उसने पूरी सुना दी।

प्रीति बोली, "उस समय तो मुझे हँसी नहीं आयी थी; लेकिन इस समय सचमुच आ रही है।" और इतना कहकर वह खिलखिलाकर हँस पड़ी। "चड्ढा साहब हैं बहुत दिलचस्प आदमी।" उसने अपनी हँसी को नियन्त्रित करते हुए कहा। "अच्छा, छोड़िए इस बात को। आपने जब इधर से निकलना बन्द कर दिया था, उस बीच हिन्दी के एक कहानी-संग्रह में मैंने एक दुःखभरी कहानी पढ़ी थी। उसका प्रभाव अब तक मेरे

मस्तिष्क से नहीं हटा है। इस टक्कर की कहानी हिन्दी में मैंने नहीं देखी..."

जगदीश को उत्सुकता हुई। बोला, "आप गुलेरी जी की 'उसने कहा था' के लिए ही तो कह रही हैं ?"

"नहीं, कहानी गुलेरी जी की नहीं है, प्रेमचन्द की भी नहीं है, है भगवतीप्रसाद वाजपेयी की।"

"क्या शीर्षक है ?"

"शीर्षक है—दुखवा मैं कासों कहों मोरी सजनी। आपने यह कहानी पढ़ी है ?"

"बहुत पहले पढ़ी थी। बहुत ही दर्दनाक कहानी है। अब मिल जाय तो मैं उसे फिर पढ़ना चाहूँगा; लेकिन लेखक का नाम आप भूल गई हैं। कहानी चतुरसेन शास्त्री की है।"

"नहीं, भगवतीप्रसाद वाजपेयी की है।"

"अच्छा शर्त हो जाय।"

"हो जाय।"

"सोच लीजिए।"

"सोच लिया। मुझे पूरा विश्वास है। संग्रह पिता जी की पुस्तकों में रखा हुआ है। मैं अभी लाकर दिखा सकती हूँ।"

"क्या शर्त रहेगी ?"

"जो आप कहें।"

"यदि मै हार जाऊँ तो जो आप माँगेंगी, मैं दूँगा और यदि आप हार गईं...तो सोच लीजिए।"

प्रीति ने हाथ आगे बढ़ाकर कहा, "मंज़ूर है। मेरे हारने की बात ही नहीं उठती।" बड़े उत्साह में वह उठकर गई। उधर से लौटी तो चाल बहुत धीमी थी।

"हम हार गए।" वह कुछ घबराकर बोली।

"हमने माफ़ कर दिया।" जगदीश ने हँसकर कहा।

"नहीं, नहीं, ऐसा उपकार हम नहीं चाहते।"

"अच्छा, चाय पी लें। फिर माँग लेंगे। ऐसी जल्दी क्या है?" जगदीश बोला।

प्रीति भीतर उठकर चली गई और थोड़ी देर में चाय की ट्रे स्वयं ही ले आई। दोनों चाय पीने लगे। "अब माँगिए।"

"माँग लेंगे साहब। आपको क्या जल्दी है? थोड़ा सोच लें। अच्छा, वह कागज़ निकालिए।"

"वह कागज़ तो नहीं मिल सकता। उसे तो हम कहीं रख भी आए।"

"इतनी जल्दी रख भी आई?"

"हाँ।"

"अच्छा, पैड का कागज़ दीजिए और फिर बुरा नहीं मानिए।"

"बुरा मानने की बात होगी तो क्यों नहीं मानेंगे।"

"तब हम लिखते ही नहीं।"

"क्यों तंग करते है? लिखिए न।"

जगदीश ने काँपते हाथों से उस पर कुछ लिखा और काग़ज़ आगे सरका दिया।

प्रीति ने काग़ज़ लेकर फाड़ दिया। बोली, "बहुत गुस्सा आता है आपके ऊपर। आप बहुत ख़राब आदमी हैं।" वह उठी और काग़ज़ के उन टुकड़ों को फाटक के बाहर फेंक आई। उधर से लौटी तो जैसे वह सब कुछ भूल गई थी—एकदम नॉर्मिल।

"आपको उर्दू शायरी से कुछ शौक नहीं है?"

"है क्यों नहीं।"

"कुछ याद है?"

"अधिक तो नहीं—ये ही दो-एक ग़ज़ल, दस-बीस शेर। आपके घर में किसी को शौक़ है?"

"पिता जी उर्दू शायरी के बड़े प्रेमी हैं। किसी समय तो वे लिखा भी करते थे। उनके पास कई प्रसिद्ध उर्दू शायरों के दीवान हैं।"

"मिर्ज़ा ग़ालिब का दीवान है?"

"है तो। कभी-कभी वे उसमें से माता जी को अशआर सुनाया करते हैं।"

"क्या आप एक सप्ताह के लिए उसे मुझे दे सकेंगी?"

"पिता जी के पुस्तकालय में है। ढूँढ़ना पड़ेगा आपको। यों उर्दू की सब पुस्तकें एक ही अल्मारी में रखी हैं।"

"बहुत दूर है?"

"नहीं, नहीं, पास में ही है।"

"तो चलिए, दिखाइए न।"

"अच्छा, मैं माता जी से कह आऊँ। अभी आती हूँ।"

"माता जी आपके सब कामों में चलती हैं?"

"इसी से सब काम चल रहे हैं, नहीं तो आफ़त आ जाय..."

प्रीति उसे पुस्तकालय में ले गई। अल्मारी के पास पहुँचकर पुस्तक उसने आसानी से निकाल दी। वह उसकी पहचानी हुई थी। कमरे में हल्का अंधकार था। खिड़कियों से डूबते सूरज का अंतिम आलोक विदा लेने वाला था। प्रीति जगदीश की बाहों की पहुँच में चुप खड़ी हो गई। उसने बाहें बढ़ाकर उसे पास खींच लिया। थोड़ी देर उसे देखता रहा और फिर सहसा 'किस' कर लिया।

प्रीति ने वक्ष से लगे हुए ही पूछा, "हो गई शर्त पूरी?"

"हो तो गई।" जगदीश ने उस सुख से विह्वल होते हुए आँखें मींचे ही उत्तर दिया।

प्रीति ने उसके कालर को झटकते हुए कहा, "अब आँख तो खोलिए। माता जी आ गईं तो आपका तो कुछ नहीं बिगड़ेगा, लेकिन मुझे घर से निकाल देंगी।"

१५

प्रिंसिपल मजूमदार का पत्र जगदीश ने शम्सउद्दीन साहब को जाकर दिया। शम्सउद्दीन नगर के प्रसिद्ध व्यापारियों में से थे। अब वृद्ध हो चले थे। आकार में लम्बे और दृढ़ शरीर वाले व्यक्ति थे। दाढ़ी श्वेत हो चली थी जो उनके मुख को अत्यन्त भव्य बनाती थी। जिस समय जगदीश पहुँचा, वे बैठे हुए हुक्का पी रहे थे। जगदीश से उन्होंने बड़ी मिठास और सहानुभूति के साथ बातचीत की। पत्र को पढ़कर वे बोले, "मजूमदार मेरे पुराने दोस्तों में से हैं। कभी-कभी यहाँ आते रहते हैं। पिछली बार उन्होंने तुम्हारी चर्चा की थी। मैं अक्सर बाहर रहता हूँ। मेरी एक बड़ी लड़की है। उसे मैंने खुद ही पढ़ाया है। स्कूल कॉलेज में कहीं वह गयी नहीं। लेकिन वह थोड़ी अँग्रेजी पढ़ना चाहती है। उसकी सभी सहेलियाँ अँग्रेजी पढ़ी हुई हैं। आजकल ज़माना भी बदल गया है। स्कूल के ढंग से नहीं, अपने ढंग से तुम अगर उसे अँग्रेजी की थोड़ी जानकारी करा सको, तो अच्छा हो। इसके लिए मजूमदार जो कहेंगे, वह मैं दे सकूँगा। अपने को बाहर का न समझकर, बल्कि यह सोचकर कि तुम इसी घर के लड़के हो, यहाँ आते-जाते रहोगे। लड़की की माँ नहीं है। एक आया के सहारे वह रहती है। लेकिन पढ़ने में शायद होशियार निकले। तुम्हारा ज्यादा वक्त जाया नहीं करेगी। अब यह तुम्हारा घर है और वह लड़की है। इसके अलावा तुम्हें कोई तकलीफ हो, तो तुम उससे कह देना। बीच में तुम्हें पैसे की जरूरत हो, तो उससे माँग लेना। मैं उसे समझा दूँगा। मजूमदार ने जैसी तुम्हारी तारीफ़ की है, वैसी उन्होंने आज तक मुझसे किसी की नहीं की।"

जगदीश काफ़ी देर तक यह सब कुछ सुनता रहा। फिर उसने शान्त भाव से कहा, "मैं गाँव का रहने वाला एक ग़रीब विद्यार्थी हूँ। आगे पढ़ने की इच्छा ने मुझे यहाँ-वहाँ भटकाया है। इसमें मुझे काफ़ी कटु अनुभव

हुए हैं। शहर कैसा होता है, उसके आदमी कितने भले-बुरे होते हैं, मैं जानता नहीं। जिनसे मेरा परिचय हुआ, वे मुझे सब अच्छे ही मिले। मुझसे भी कभी किसी को कोई शिकायत नहीं रही। मैंने किसी का कुछ बिगाड़ा हो, मुझे याद नहीं। आजकल जहाँ मैं रहता हूँ, वहाँ बहुत आराम से रह सकता था; लेकिन उनका एहसान मेरे ऊपर बहुत हो गया है। इससे मेरा मन भीतर से कुछ अशान्त है। इसी से मेरी पढ़ाई भी ठीक से नहीं हो पाती। मैं कुछ काम करके ही खाना चाहता हूँ। मैं सोचता हूँ हर आदमी को अपनी रोटी ख़ुद कमाकर खानी चाहिए। इसी में उसकी आत्मा को सच्चा सुख मिल सकता है। मैं समझता हूँ ग़रीब आदमी शायद बेईमान नहीं होता..."

"नहीं, नहीं, यह तुमने क्या कहा।" शम्सउद्दीन साहब ने बीच में टोकते हुए उसे समझाया, "मेरा यह मतलब बिल्कुल नहीं था। यह बात मैंने वैसे ही कही। और उन्होंने आवाज दी, "आया!"

एक बुड्ढी नौकरानी सामने आकर खड़ी हो गई।

"बानू क्या कर रही है?"

"अभी नहाकर अपने कमरे में ऊपर चली गई हैं।"

"उससे कहो कि हम आना चाहते हैं।"

"आप कहें तो मैं उन्हें यहीं भेज दूँ?"

"नहीं, हम चले चलेंगे।"

बुड्ढा जगदीश को छोड़कर ऊपर चला गया। जगदीश को यह कुछ विचित्र-सा लगा। लेकिन उसने सुन रखा था कि मुसलमानों में पर्दा बहुत होता है; अतः कुछ कहा नहीं। एक तरह से बुरा भी नहीं माना।

आया ने पूछा, "आप यहीं के बाशिंदे हैं?"

"नहीं, मैं बाहर का रहने वाला हूँ।"

"कहीं पढ़ते हैं?"

"हाँ, एक कॉलेज में पढ़ता हूँ।"

"बानू को पढ़ाने के सिलसिले में आये हैं ?"

"आया तो हूँ।"

अब जगदीश के पूछने की बारी आई।

"तुम यहाँ कब से हो ?"

"मेरी तो उम्र ही बीत गई। बानू की मा की शादी जब हुई थी, तब मैं आई थी।"

"कहाँ की थीं वे ?"

"रामपुर की।"

"तुम उनके मैके की हो ?"

"हाँ।"

"वे तो अब नहीं हैं न ?"

"दूसरा बच्चा होने में उनकी मौत हो गई।"

"इन्होंने फिर दूसरी शादी नहीं की ?"

"कैसी बातें करते हैं आप ?"

जगदीश को लगा प्रश्न करने में उससे कहीं भूल हो गई। उसने फिर पूछा, "बानू को फिर तुमने पाला है ?"

"एक तरह से कह सकते हैं।"

"पूरा नाम क्या है ?"

"पूरा नाम मेहर बानू है।"

"ओह !"

इतने में शम्सउद्दीन साहब आते दिखाई दिये। जगदीश उठकर खड़ा हो गया। शम्सउद्दीन ने कहा, "मजूमदार साहब से मेरा सलाम कहना। कल से जिस वक्त भी आप ठीक समझें, पढ़ाने आ सकते हैं। मैं यहाँ होऊँ या नहीं, इससे कोई फ़र्क नहीं पड़ता। लड़की कहीं बाहर आती-जाती नहीं। वह बहुत खुश है और कहती है मैं आज से ही पढ़ूँगी।"

"नहीं मैं कल से आ जाऊँगा। मैं समझता हूँ शाम को ठीक रहेगा।

कॉलेज बंद होते ही घर से हाथ-मुँह धोने के बाद मैं आ जाया करूँगा ? इसमें उन्हें कोई अड़चन तो नहीं होगी ?"

"नहीं ।"

"पास मे ही आया का कमरा है । यह आपको ले जाया करेगी ।" फिर मुड़कर उन्होंने आया से कहा, "देखो आया, इन्हें कोई शिकायत न हो । ये हमारे एक ख़ास दोस्त के अपने आदमी हैं ।"

"जी नहीं । मैं पूरा ख्याल रखूँगी ।"

जगदीश लौट आया । रास्ते भर वह कुछ अनमना-सा रहा ।

१६

जगदीश उस दिन निर्मल भट्टाचार्य के यहाँ से उठ तो आया; पर सीमा की याद उसे बराबर आती रही । उस याद को उसने दबाने का प्रयत्न किया तो जब-तब वह और भी उभरने लगी । न जाने क्यों सीमा को देखने की इच्छा बार-बार उसके मन में जगती । उसे भट्टाचार्य पर कुछ क्रोध आया । बुड्ढा कितना चालाक है । किस कौशल के साथ अपने स्वार्थ की बात करता रहा । यह नहीं हुआ कि ऊपर चलकर सीमा से मिला दे । चाय भी नीचे ही मँगा ली । फिर उसने सोचा—नहीं, यह भट्टाचार्य के प्रति अन्याय करना है । वह पिता है । कौन पिता अपनी युवती कन्या को जिस-तिस से मिलने देगा । लेकिन सीमा के सम्पर्क में तो आना ही है । इसके लिए भट्टाचार्य से थोड़ा झुकना होगा । उसमें कुछ और हो या न हो; पर वह एक सुन्दर लड़की का पिता है । उससे अप्रसन्न नहीं हुआ जा सकता, रूठा नहीं जा सकता ।

और तब न जाने किस अदृश्य प्रेरणा से प्रेरित होकर जगदीश भट्टा-

चार्य के मकान के सामने से निकला। भट्टाचार्य का कमरा उसे प्रायः बन्द मिला। उसने सोचा ज़ीने में जाकर ऊपर आवाज दे ले। बहुत सम्भव है भट्टाचार्य ऊपर हों। लेकिन अगर नहीं हुए तो? तब तो और भी अच्छा है। बहुत सम्भव है दरवाज़ा खोलने सीमा ही आवे। एक बार वह संध्या के अँधेरे में ज़ीने पर चढ़ भी गया। लेकिन आवाज देने का साहस नहीं हुआ और वह उन्हीं पैरों लौट आया। इस तरह चोरी से जाना ठीक नहीं। सीमा जरूर समझ लेगी। हो सकता है कि वह केवल इतना कहे: पिता जी तो घर पर नहीं हैं। तब फिर आगे का आना-जाना बिल्कुल बन्द हो जायगा। यह बात मुझे बुरी लग सकती है। ना, ना, यह ठीक नहीं। भेंट स्वाभाविक रूप से ही होनी चाहिए—धीरे-धीरे, चाहे उसमें कितनी ही देर क्यों न लग जाय!

एक दिन ऐसा हुआ कि भट्टाचार्य अपने कमरे में ही दिखाई दिये। लेकिन मन की भी कैसी गति है! जगदीश भट्टाचार्य के पास न जाकर सीधा चलने लगा—जैसे भट्टाचार्य से उसे कुछ लेना-देना नहीं है। भाग्य उसका कुछ अच्छा था कि भट्टाचार्य ने आवाज़ दे ली। जगदीश भीतर से बहुत प्रसन्न, लेकिन ऊपर से कुछ व्यस्त-सा उनके निकट पहुँचा और प्रणाम करके बैठ गया।

"आप तो फिर आया ही नहीं। हम सोचता था कि आप कोई गीत लायगा। बाबा, बुड्ढे आदमी से इतने नाराज़ होने का क्या बात?"

"अब पढ़ाई कुछ शुरू हो गई है और मैंने एक ट्यूशन कर लिया है; इसी से समय नहीं मिल पाया।"

"चाय तो एक प्याली पियेगा?"

"नहीं, आप क्यों कष्ट करते हैं! मैं कहीं रैस्ट्राँ में चाय पीता हुआ निकल जाऊँगा।"

"ओ बाबा, यह कैसा बात। अपना घर होते हुए रैस्ट्राँ में चाय

पीयेगा ! प्रभात-बेला में इस समय कहाँ जा रहा है ! घूमने निकला है—प्रकृति-सौंदर्य निरीक्षण करने ?"

"आज रविवार है। एक मित्र से मिलना चाहता था।"

"नहीं, पहले चाय पीयेगा, बुड्ढे से बात करेगा, तब मित्र से मिलने जायगा।"

जगदीश हँसने लगा। बोला, "अच्छी बात है। आप तो बहुत सहृदय व्यक्ति हैं। आजकल इतने सहृदय व्यक्ति कहाँ मिलते हैं! आप किसी समय कवि रहे हैं। उसी का प्रभाव है कि अपरिचित व्यक्ति की भावना का इतना ध्यान रखते हैं। यह तो व्यापारियों का नगर है। यहाँ सहृदयता कहाँ !"

"आपने शरत् बाबू को तो पढ़ा है ?"

"जी हाँ।"

"शरत् बाबू ने हमको चौपट कर दिया।"

जगदीश ने चकित होकर पूछा, "यह कैसे !"

बुड्ढे ने हँसकर उत्तर दिया, "यह फिर कभी बतायेगा। शरत् को पढ़ने वाला कभी कठोर नहीं हो सकता। कभी गप-शप करेगा तो बतायेगा, हमने कितना कष्ट उठाया है, कितना त्याग किया है। यह सब शरत् बाबू का दोष है।"

इतना कहकर बुड्ढा जगदीश को ऊपर ले चला। नौकरानी को भी आवाज़ देने की उसने आज आवश्यकता नहीं समझी। जगदीश एक एक सीढ़ी बड़ी प्रसन्नता, बड़े उत्साह से चढ़ने लगा। ऊपर जाकर देखा दो तीन प्राणियों के रहने के लिए काफ़ी स्थान है। खुली हुई छत। सामने दालान। उसके पीछे कमरे। छत के एक कोने पर रसोईघर। घर साफ़-स्वच्छ। कहीं एक तिनके का नाम नहीं। इस मकान के नीचे कई दूकानें थीं। वे सब उठी हुई थीं। ऊपर का भाग मकान-मालिक ने संभवतः अपने रहने के लिए बनवाया था; अतः उसमें किसी प्रकार की असुविधा की कोई बात

न थी। जिधर सड़क थी, उधर काफ़ी चौड़ा एक गोलाकार स्थान था। दीवाल वहाँ कम ऊँची थी; अतः वहाँ खड़े होकर सड़क का दृश्य देखा जा सकता था। कमरों के ऊपर एक छत थी, जहाँ एक झरोखेदार गोल कमरा बना था। कमरे के तीन ओर दरवाज़े थे। वहाँ से दूर-दूर तक नगर दिखाई देता था।

भट्टाचार्य ने आवाज दी। सीमा तब स्नान करके आई थी। बाल खुले थे। चौड़ी पीली किनारी की धोती पहने थी। इससे पहले कि जगदीश कुछ कहे, उसने दोनों हाथ जोड़कर प्रणाम किया। जगदीश देखता रह गया। बरामदे में शीतलपाटी बिछी थी। उसी पर तीनों बैठ गए।

"तुम्हें याद है न सीमा, ये वे ही हैं जिन्होंने उस दिन रवि बाबू की जयंती पर भाषण दिया था। पता चला कि कवि हैं। तुम जो कह रही थीं गीतों के संबंध में...तो इनसे सहायता लो न।"

"ऐसी क्या जल्दी है पिता जी?"

इतने में ज़ीने के दरवाज़े पर देखा बुड्ढी नौकरानी खड़ी है। उसने बतलाया: डिप्टी साहब आये हैं। भट्टाचार्य उठ खड़े हुए। उनके साथ जगदीश भी उठ खड़ा हुआ। भट्टाचार्य ने कहा: आप क्यों उठ खड़े हुए? बैठिए न। बात कीजिए। समय मिला तो मैं अभी आता हूँ। लड़की की ओर देखकर बोले: यह क्या सीमा! घर पर आये अतिथि का इस प्रकार सम्मान करते हैं! इसके लिए कुछ चाय-वाय बनाओ न। अरे गप-शप करो न। मै अभी आया। और वे चले गए।

"ये कौन हैं डिप्टी साहब?"

"एक रिटायर्ड सज्जन हैं, पिताजी के परम मित्र। दोनों शतरंज के शौकीन हैं।"

"वे तो कह रहे थे, अभी लौटकर आयेंगे।"

"अब चार-छः घंटे से पहले क्या आयेंगे।"

इतना कहते-कहते सीमा चाय बनाने उठ गई। लेकिन वह बहुत जल्दी लौट आई। शायद चाय का पानी चढ़ा हुआ था।

चाय का प्याला सामने रखकर बोली, "यहाँ मन नहीं लग रहा न ?"

"नहीं ऐसी बात तो नहीं है।"

"फिर पिता जी के साथ क्यों उठ खड़े हुए ?"

"मुझसे किसी ने बैठने के लिए तो कहा नहीं।"

"तो आप जो ऊपर आये हैं, अपने मन से आए हैं ?"

जगदीश सुनकर चकित रह गया। झिझकते हुए बोला, "कुछ प्रयत्न तो इसमें मेरा भी है।"

सीमा ने इस बात का उत्तर नहीं दिया। बोली, "आप चाय पीजिए। मैं एक मिनट में लौटकर आती हूँ।" थोड़ी देर में सितार पर उँगली पड़ने और उससे एक कोमल मधुर झंकार के उठने का आभास जगदीश को हुआ। सीमा पाँच मिनट के अंदर ही लौट आई।

"क्या सोच रहे हैं ? यही न कि आदमी स्वार्थ को भी कितना सुन्दर बनाकर रख सकता है ?"

जगदीश को यह जानने में देर न लगी कि पिता और पुत्री के व्यक्तित्व में बड़ा अन्तर है। उसने उत्तर दिया, "नहीं, मैं ऐसा नहीं सोचता। आप भी अगर सोचती हैं तो अपने प्रति अन्याय करती हैं।"

"बात जो इतनी स्पष्ट है।"

"परिचय के पीछे मूल भावना सदैव स्वार्थ की ही नहीं होती। दो प्राणी मिलेंगे तो किसी न किसी दिन एक-दूसरे के काम आयेंगे ही। यह एक बात हुई। और पहले से यह सोचकर कि हम अमुक व्यक्ति से अमुक काम लेंगे, परिचय बढ़ाना हुई दूसरी बात। यहाँ यदि स्वार्थ है तो दोनों का।"

"दोनो का ?"

जगदीश ने कुछ सोचकर कहा, "यहाँ आने में मैंने बड़ी भारी प्रसन्नता का अनुभव किया है।"

"तभी इतने दिन लग गए न ! लेकिन पिता जी आपसे कुछ न कुछ काम लेंगे ही, इसे न भूल जाइए।"

जगदीश ने धीरे से कहा, "आख़िर दो प्राणियों के मिलने के लिए कोई आधार तो चाहिए ही; नहीं तो मिलना बहुत कठिन हो जाता है। ऐसा मिलना घर वालों की ही नहीं, बाहर वालों की आँखों में भी खटकने लगता है...आपकी माता जी नहीं हैं क्या आजकल यहाँ...?"

सीमा सहसा उदास हो गई। बोली, "मुझे उनकी कोई स्मृति नहीं। जब मैं दो वर्ष की थी, तभी उनकी मृत्यु हो गई थी।"

"आपको मैंने बिना जाने कष्ट दिया। क्षमा चाहता हूँ।"

"आपको तो मालूम नहीं था।"

"अच्छा, वह गीता वाली क्या बात है?"

"अगली बार जब आयेंगे तब बतलाऊँगी।"

१७

जगदीश जहाँ का निवासी था, वह हिंदुओं की बस्ती थी। आसपास के गाँवों में भी हिंदू ही रहते थे। मुसलमान कहीं थे भी तो दो-चार। उनका होना न होना बराबर था। उसके गाँव में दो-एक जुलाहे थे, एक घोसियों का घर था, एक फ़कीर का। लेकिन वे सब हिंदुओं के वेश में रहते थे, हिंदुओं के पर्व-त्योहारों में भाग लेते थे। मुसलमान एक पृथक जाति है, इसका कोई चिन्ह इनमें शेष न था। ये न रोज़ा रखते थे, न नमाज़ पढ़ते थे, न ताज़िये निकालते थे, न ईद मनाते थे। लेकिन इतना

होने पर भी मुसलमानों से मेल-जोल नहीं हो सकता, इतना उसे स्पष्ट था। उसकी मा विशेष रूप से छुआछूत को मानती थी। यह भावना उसके मन में भी भरने का उसने प्रयत्न किया था। इस सम्बन्ध में वह स्वभाव से बहुत अनुदार थी। उसका विश्वास था कि मुसलमान स्वभाव से क्रूर होते हैं, वे स्वच्छता से नहीं रहते, उनके हाथ का कुछ भी खाया-पीया नहीं जा सकता। हिंदुओं को बलपूर्वक मुसलमान बनाने की कहानियाँ परंपरा से चली आती थीं। अलाउद्दीन के चित्तौड़ पर आक्रमण और पद्मिनी के जौहर की कहानी गाँवों में प्रसिद्ध थी। लोकगीतों में भी जो प्रायः झूले के समय या अन्य अवसरों पर गाये जाते थे, ऐसी कथाएँ प्रचलित थीं जिनमें कोई हिंदू कुमारी अपनी सहेली के साथ नीम या आम के पेड़ में झूला डालकर एकान्त में झूल रही है कि उधर से कोई मुसलमान शासक शिकार खेलने आ निकला है और उसे बलपूर्वक उठाकर ले गया है। लड़की के पिता और भाई ने बहुत अनुनय-विनय की है; पर उसने एक नहीं सुनी और अंत में लड़की ने कहा है कि तुम लोग जाओ। अब मैं ही कुल की मर्यादा रखूँगी और वह अंत में अपने कपड़ों में आग लगाकर जल मरी है और उसका अपहरण करने वाला देखता रह गया है। यह दूरी की भावना हिंदुओं में आपस में भी थी। अछूतों के प्रति तो अस्पृश्यता की भावना शताब्दियों से बद्धमूल थी ही; लेकिन खान-पान में ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्यों में भी अंतर चलता था। उदाहरण के लिए उसकी मा पक्के खाने के लिए तो मना नहीं करती थी; लेकिन कच्चा खाना अर्थात् रोटी-चावल वह क्षत्री या वैश्य के यहाँ भी नहीं खाने देती थी और इस बात की सूचना वह बराबर रखती थी कि उसका लड़का ब्राह्मण होकर कभी किसी क्षत्री या वैश्य के यहाँ दाल-रोटी तो नहीं खा आया। कायस्थों को उसकी मा आधा मुसलमान कहती थी, क्योंकि वे मुसलमानों के साथ बैठकर गोश्त खा सकते थे। बात यहाँ तक बढ़ गई थी कि ब्राह्मणों में भी वह यह जानना चाहती थी कि वे कौन ब्राह्मण हैं। कान्य-

कुञ्जों से उसे विशेष रूप से परहेज़ था। वे लोग मांस-मछली जो खाते थे। उनके बर्तनों में वह खाना खा ही नहीं सकती थी। जगदीश इन्हीं संस्कारों में पला था; लेकिन मा ऐसा क्यों करती है या समझाती है, यह उसकी समझ में ही न आता था। किसी के यहाँ कुछ खाने-पीने से या किसी से छू जाने से धर्म कैसे भ्रष्ट हो जाता है, वह बहुत सोचकर भी सोच नहीं पाता था। उसकी मा नदी से नहाकर लौटने पर यदि कभी भूल से किसी से छू जाती तो दोबारा घर आकर नहाती थी। इस पर उसे बड़ी हँसी आती। अपनी मा से उसने कई बार कहा भी था कि उसे छुआछूत का रोग है। मा हँसकर या झुँझलाकर टाल देती थी।

शम्सउद्दीन और उनके घर को जब उसने देखा तो पाया कि वह बहुत साफ़ है। यह बात उसे स्पष्ट हो गई कि मुसलमानों के संबंध में उसकी मा का यह कहना कि वे सफ़ाई से नहीं रहते, झूठी बात है। इतनी सफ़ाई तो ब्राह्मणों के घरों में भी नहीं होगी। उनकी नौकरानी तक को उसने मैले कपड़े पहने नहीं देखा। मेहरबानू के कमरे को देखकर तो वह अवाक् रह गया। कमरे में मोटा गद्दा बिछा था। उसके एक कोने पर मख़मल का गलीचा। दीवारें सादी। उन पर केवल चार चित्र थे जिनमें से एक सूर्योदय, दूसरा सूर्यास्त का था, एक में उमर ख़ैयाम की एक रुबाई को चित्रित किया गया था और चौथा मिर्ज़ा ग़ालिब का था। बानू को जब पहली बार उसने देखा तो वह एक नीली रेशमी साड़ी पहने हुए थी। नयन, सीमा और शारदा तीनों से उसका सौन्दर्य भिन्न था—शरद के नीलाकाश में जैसे चाँदनी छिटक उठी हो, नीलगिरि के किसी कोने में जैसे निर्मल जल का झरना फूट पड़ा हो, काले बादलों में जैसे बिजली स्थिर हो गई हो। सुन्दरता और सौम्यता का ऐसा संयोग कठिनाई से देखने को मिलता है। संसार में कितना सौंदर्य बिखरा पड़ा है! दुर्भाग्य से हम उसके सम्पर्क में आते ही नहीं। कानपुर की सड़कों और गलियों से जब जगदीश निकलता तो उसकी ऐसी धारणा होती कि इस नगर में

सुन्दरता का नाम नहीं। कभी कोई सुन्दर प्राणी उसे देखने को मिल जाता; लेकिन वह अपवादस्वरूप होता। अब उसे पता चला कि बहुत-सा सौंदर्य घरों में छिपा पड़ा है। वह बाहर आता ही नहीं। उसका किसी को पता चले तो कैसे?

नयन को देखकर वह अवाक् रह गया था, प्रीति के सौंदर्य में वह खो गया, सीमा को देखकर उसके सम्पर्क में आने की कामना उसके अंतर में जगी और शारदा को वह जीवन की ऐसी निधि समझने लगा था कि उसे प्राप्त करने के सपने ही वह सँजोने लगा; लेकिन बानू ने उसके अंतःकरण को अनुपम शान्ति-से जैसे भर दिया। बानू गंभीर और सरल स्वभाव की लड़की थी। वह हँस भी ज़ोर से नहीं सकती थी। मुस्कराती तो मोतियों की लड़ी जैसे बिखर जाती। मोती की मुसिकान इसी को कहते होंगे। अंग्रेज़ी का उसे बिल्कुल ज्ञान नहीं था; अतः उसे पढ़ाना कुछ कठिन नहीं था। लेकिन पहले चार-छह दिन जगदीश 'हाँ', 'ना' के अतिरिक्त कोई उत्तर ही नहीं पा सका। बहुत ही कम वह बोलती थी। पहले जब वह पढ़ाने आता तो आया एक कोने में बैठी रहती। यह बात जगदीश को कुछ बुरी लगी; लेकिन उसे रुपये की आवश्यकता थी; अतः उसने अपनी झुँझलाहट संकेत से भी प्रकट नहीं की। एकाध दिन वह नहीं आई। फिर तीसरे-चौथे दिन बैठने लगी और अब यह तो नहीं कि उसने बिल्कुल आना बन्द कर दिया हो; लेकिन एक तरह से नहीं आती थी। पर बानू का कम बोलना वैसे ही बना रहा।

एक दिन पढ़ाते-पढ़ाते जगदीश ने कहा, "मुझे प्यास लगी है।" बानू ने मीठे स्वर में पुकारा, "आया"। उसके आने पर बोली, "आया, मास्टर जी पानी पीयेंगे।" आया चली गई। बानू फिर सिर झुकाकर पढ़ने लगी। थोड़ी देर होने पर जगदीश ने हँसकर कहा, "आया शायद भूल गई।" बानू ने कहा, "जी नहीं, भूल नहीं सकती। भूल करने पर क्या इसी घर में रह जायगी?" जगदीश ने बात को आगे बढ़ाने के आशय से

कहा, "इतनी छोटी बात के लिए, इतनी बड़ी सज़ा दीजिएगा ?" बानू ने उन काली आँखों को जिनमें पतला काजल लगा था और जिसकी कोर कुछ आगे बढ़कर उनकों ओर बड़ा बना रही थी, ऊपर उठाकर जगदीश की ओर देखा और फिर पलकों को सहसा नीचे गिरा दिया।

इतने में एक दुबला-पतला लड़का दरवाजे के कोने पर दिखाई दिया। उस के हाथ में पानी से भरा चाँदी का एक ग्लास था। पानी उसने सामने लाकर रख दिया और चला गया।

"यह आपका दूसरा नौकर है ?"

"जी नहीं, यह अगरवाल साहब का नौकर है।"

"कौन अगरवाल साहब ?"

"कोठी वाले। हमारे पड़ौसी।"

"आपने पानी बाहर से मँगवाया है ?"

"जी हाँ।"

"क्यों ?"

"आप क्या हमारे यहाँ का पानी पी सकते हैं ?"

"क्यों नहीं पी सकता ?"

बानू ने आश्चर्य में पड़कर कहा, "क्या सचमुच पी सकते हैं ?"

"क्यों नहीं पी सकता ? जिसको जानता हूँ उसके यहाँ का पानी नही पी सकता ?"

"ऊँची ज़ात के जितने हिन्दू साहिबान हमारे यहाँ आते हैं उन सबके लिए अब्बा अगरवाल साहब के यहाँ से ही पानी मँगाते हैं।"

"तब समझ लीजिए मैं ऊँची ज़ात का नहीं हूँ, नीची ज़ात का हूँ।"

"आपके कहने से थोड़े-ही कुछ बदला जा सकता है। जो है वह मुझे मालूम है।"

"मैं किसी अगरवाल के यहाँ का पानी नहीं पीने का। अपने घर का पानी मँगाइए।"

"अच्छा, आज पी लीजिए। कल अपने घर का पानी पिला दूँगी।"

जगदीश ने पानी नहीं पिया। वह उठकर चला गया। बानू वहीं चुप बैठी अगरवाल साहब के चाँदी के ग्लास में भरे पानी को देखती रही। एक बार उसे यह भी आशंका हुई कि कहीं ऐसा न हो कि जगदीश उसे पढ़ाने अब न आवे। लेकिन दूसरे दिन जब ठीक समय पर जगदीश आया तो वह बहुत प्रसन्न हुई।

"किताब कहाँ है?"

"खो गई।"

"लाइए न फिर मुझे जाने के लिए देर होगी।"

"एक दिन देर ही सही।"

"जी हाँ, देर ही सही। आपकी तरह मैं किसी जौहरी का बेटा हूँ जो फ़िक्र न करूँ।"

"फ़िक्र करने से आप कुछ कर पाइएगा?"

"क्यों नहीं कर पाऊँगा?"

"मेरी तरफ़ निगाह उठाकर देखिए।"

जगदीश ने निगाह नहीं उठाई।

"कल से अभी तक पानी नहीं पिया न?"

जगदीश सन्न रह गया। उसने सचमुच अभी तक पानी मुँह में नहीं डाला था।

बानू ने थोड़ी झुँझलाहट में कहा, "चुप क्यों हैं, मेरी बात का जवाब दीजिए।"

जगदीश ने मुर्झाए-से स्वर में कहा, "आपको कैसे मालूम है?"

"मुझे आपने बिल्कुल जाहिल समझ रखा है? लेकिन यह तो बहुत तकलीफ़ देने वाली बात हुई। इस तरह किसी को दुःख देते हैं?"

इतना कहकर वह उठ खड़ी हुई। बोली, "मैं अभी आती हूँ। जाइएगा नहीं।"

थोड़ी देर में वह ऊपर आई। हाथ में पानी का ग्लास था और एक तश्तरी में सूजी का हलुआ। लाकर उसने जगदीश के सामने रख दिया।

"आया कहाँ है ?"

"सुबह रामपुर से उसका छोटा लड़का आया था। उसी के साथ कहीं चली गई है।"

"यह आपने बनाया है ?"

"आप समझते हैं मैं एकदम फूहड़ हूँ ?"

"आप भी खाइए न ?"

"मेरे लिए और रखा है। मैं भी खाऊँगी।"

"क्या सचमुच बहुत नाराज़ हैं ?"

बानू ने सिर हिलाकर कहा, "ना।"

"तो इसी में खाइए न।"

"क्यों अपना ईमान खोते हैं ?"

"समझ लीजिए मैं बेईमान हूँ।"

"वैसा ही तो नहीं है। बेईमान होते तो आपको आसानी से टाला जा सकता था।"

"खाइए न। आपने कल से अभी तक कुछ खाया नहीं है।"

अब बानू के हैरत में आने की बारी थी। बहुत धीरे-से पूछा, "आपसे किसने कहा ?"

"मैं जौहरियों के ख़ान्दान से तो नहीं; लेकिन लेखक होने के नाते आदमी को पहचानने की दृष्टि मेरे पास भी है।"

"लेखक भी जौहरियों के ख़ान्दान से ही होते हैं।" इतना कहकर बानू चुप हो गई।

१८

जगदीश ने सीमा के लिए कई गीत लिखे और अपनी कोमल और मधुर भावनाओं को उनमें उसने पूरी कलात्मकता से व्यक्त किया। उसे विश्वास था कि सीमा उन गीतों को पसंद करेगी, पर वैसा हुआ नहीं।

"कैसे लगे गीत ?" उसने पूछा।

"ठीक हैं।"

"इसके माने ?"

"कविताएँ ये चाहे हों, गीत तो इन्हें नहीं ही कह सकते।"

"क्या अन्तर है दोनों में ?"

"बहुत से शब्द हैं जो लय में फ़िट नहीं बैठते। उन्हें बदलना होगा।"

"मैं समझता हूँ आपसे ट्यूनिंग करनी नहीं आती। संगीत का आपको बहुत ही कम ज्ञान है, यद्यपि समझती आप यह हैं कि आप बहुत कुछ जानती हैं। यह बहुत संभव है कि आपके स्थान पर कोई दूसरा संगीतज्ञ होता तो ऐसी आपत्ति न करता।"

सुनकर सीमा ने बुरा माना हो, ऐसा नहीं लगा।

बोली, "सचमुच संगीत का मेरा ज्ञान अधूरा है। विधिवत् शिक्षा मुझे बहुत कम मिली है। कल को आयेंगे तो मैं आपके गीतों की ट्यूनिंग करके सुनाऊँगी। लेकिन यह कैसा रहे कि मैं आपको ध्वनियाँ दूँ और आप उन पर गीत कम्पोज़ करें। उन गीतों में कोई भी कठिन शब्द न हो।"

"यह तो कविता लिखने का ढंग नहीं है। प्रेरणा इसके पीछे कहाँ है ?"

"मान लीजिए ऐसा करना काव्य के स्तर से थोड़ा नीचे उतरना है,

मान लीजिए यह शक्ति का अपव्यय है और यह भी मान लीजिए कि काव्य का इससे कोई हित न होगा; लेकिन संगीत की रचना तो ऐसे ही होगी।"

कई दिन बाद सीमा ने जैसा चाहा था, जगदीश ने वैसा ही लिखकर दिया। सीमा ने प्रसन्न होकर कहा, "हाँ, अब कुछ बात बनी।"

जगदीश ने खीझकर कहा, "यानी गीत अब भी ठीक नहीं हैं?"

"नाराज क्यों होते हैं?" सीमा ने कोमल वाणी में कहा और उसके लिए चाय बनाने चली गई।

रेडियो पर जब ये गीत जगदीश ने सुने तो उसे विश्वास नहीं हुआ कि उसी ने लिखे हैं। लय की मधुरता और भाव की मार्मिकता ने उन्हें ऐसा सौंदर्य प्रदान कर दिया था कि मन में आनन्द की विद्युत्-हिलोरें उठने लगीं। सीमा के लौटने पर जब उसने उन गीतों को दोबारा सुनाने का आग्रह किया तो सीमा ने कहा, "नहीं, अब नहीं सुनाऊँगी। आप तो मेरी बात मानते ही नहीं थे। इन गीतों से न केवल यह कि मेरी ही ख्याति बढ़ी है, पर आपको भी लोग जान गए हैं।"

इसके उपरान्त गीत लिखने का क्रम चल पड़ा। जगदीश सीमा के सामने बैठा है। किसी ट्यून को अपने प्राणों में भर रहा है। उठकर ऊपर चला जाता है। कुछ लिखकर लाता है। सीमा उसे देखती है। प्रसन्न होती है। कभी-कभी हफ़्तों ट्यूनिंग उसके कानों में गूँजती रहती है और वह कुछ नहीं लिख पाता। काग़ज और पेंसिल वह अपने सिरहाने रखता है। सहसा रात में उसकी आँख खुलती है और वह लिखने बैठ जाता है और जल्दी ही गीत पूरा कर लेता है। सोचता है कब प्रभात-काल हो और कब वह सीमा के यहाँ जाय। इतने पर भी सीमा किसी शब्द, अभिव्यक्ति के किसी अंश या पंक्ति पर कोई आपत्ति करती है, तो वह उसे बदल देता है। इस प्रकार गीत लिखने का यह क्रम चल रहा है।

एक दिन जगदीश जब सीमा के यहाँ एक गीत पूरा करके पहुँचा तो देखा वहाँ कोई नही है। सीमा स्नानगृह में थी। उसने वहीं से आवाज़

दी, "मैं अभी आती हूँ। जाइएगा नहीं।" जगदीश ने नौकरानी को पुकारा। नौकरानी नहीं बोली। उत्तर दिया सीमा ने, "वह बाहर गई है। आख़िर ऐसी क्या घबराहट है ? चाय ही तो चाहिए न ? मैं आ रही हूँ।"

"और पिता जी ?"

"वे भी बाहर गए हैं।" सीमा ने भीतर कपड़े बदलते हुए कहा।

"तो आज सबको विदा कर दिया ?"

"जी हाँ।" सीमा पास आकर बोली।

"क्यों ?"

"जिससे आपसे अकेले में बातें हो सकें।"

जगदीश झेंपकर रह गया। सीमा ने बतलाया, "पिता जी इलाहाबाद गए हैं। रात को लौटेंगे। उनकी चिंता करने वाली यह बुड्ढी नौकरानी ही है; अतः उसे कभी छुट्टी नहीं देते। उसके एक लड़की है। वह पास ही गाँव में कहीं रहती है। उसे देखने कभी-कभी जाती है। सो आज वह भी चली गयी। रात तक लौट आने को कह गई है। हो सकता है न भी लौटे। आप बैठिए। मैं आपके लिए चाय बना लाऊँ।"

"स्टोव यहीं ले आइए न !"

स्नान के उपरान्त शरीर में एक और ही प्रकार की स्फूर्ति, एक और ही प्रकार का लावण्य आ जाता है। आँखों की पलकों पर अभी ओसकणों-सी हल्की-हल्की बूँदें थीं; अतः उन्हें देखते ही बनता था। सुन्दर प्राणी के सम्पर्क का भी कैसा सुख होता है ! सीमा ने उस दृष्टि को अपनी दृष्टि से साधते हुए कहा, "मै अभी आई। दो मिनट भी तो नहीं लगेंगे।"

"मैं भी चौके में चलूँगा।"

"चलिए न।" सीमा ने पुलकित होते हुए कहा और वहीं पास में उसके लिए शीतलपाटी बिछा दी। आगे बढ़कर उसने ज़ीने की साँकल मार दी।

"साँकल क्यों लगा दी ?"

"इसलिए कि आप भाग न जायँ।"

"आप समझती हैं कि मैं भाग जाऊँगा ?"

"फिर भी ऐसे आदमी के लिए प्रबंध कर रखना ठीक है।"

"और मैं साँकल खोलकर चला जाऊँ तो ?"

"नहीं जा सकते।"

"क्यों ?"

"मनुष्य में संघर्ष करने, परिश्रम करने, प्रकृति पर विजय और वैभव एकत्र करने की चाहे कितनी ही क्षमता हो; पर नारी को समझने की बुद्धि बहुत कम होती है। भावना के क्षेत्र में इसी से पुरुष बहुत दुःख उठाता है। नारी भी कम दुःख नहीं उठाती। पर बिना संकेत के जैसे वह कुछ समझता ही नहीं; अतः उसे बार-बार संकेत करके लौटाना पड़ता है।"

"आपमें इतनी बुद्धि कहाँ से आई ?"

"दुःख के भीतर से ही आई होगी।"

"इतनी कम अवस्था में आपने दुःख देखा है ?"

"मै दो वर्ष की थी जब मेरी मा की मृत्यु हुई। पिता जी ने दूसरा विवाह नहीं किया—चाहते तो कर सकते थे। उन्होंने अपने हाथ से पाल कर मुझे इतना बड़ा किया है। किसी समय सम्पन्न रहे होंगे। उसका मुझे ज्ञान नहीं। मेरे जन्म के उपरान्त एक प्रकार से उनका जीवन अभाव में ही व्यतीत हुआ है। लिखने का उन्हें भी शौक है; पर उससे कुछ काम बना नहीं। यहाँ आकर अध्यापक हो गए और अब रिटायर हो गए हैं। मेरी मा संगीत की प्रेमिका थी। पिता जी की भी संगीत में रुचि है। शायद वे ही संस्कार मेरे भीतर प्रस्फुटित, पल्लवित और विकसित हुए हैं। अब मैं बड़ी हो गई हूँ और पिता जी की चिंता का विषय हूँ। इस बीच सौ आदमी सौ बहानों से आये हैं। उनसे बचकर चलने में किस मानसिक

क्षोभ के बीच से गुज़रना पड़ता है, क्या इसका अनुमान आप नहीं लगा सकते? सौ आदमी सौ बहाने से पिता जी से घनिष्ट होना चाहते हैं। उनकी सीमा निर्धारित करनी पड़ती है।"

"कभी अच्छा भी तो लगता होगा?"

"ऐसा मज़ाक नहीं करते।"

"सचमुच, कभी भी अच्छा नहीं लगा?"

"लगा होता तो क्या आप इस तरह यहाँ बैठे होते?"

"लेकिन मैं भी तो उन्हीं में से एक हो सकता हूँ?"

"नहीं हो सकते, यह तो मैंने नहीं कहा। होना ही अधिक संभव है। लेकिन मैं जानती हूँ आप उन लोगों में से नहीं हैं।"

"यदि किसी दिन हो जाऊँ तो?"

"तो अपराध आपका नहीं, मेरा होगा और उस समय मैं ही आपको रोकूँगी भी।"

जगदीश कुछ सोचने लगा। फिर बोला, "अच्छा, अब मैं चलूँ।"

सीमा ने उसे रोका नहीं।

१६

जगदीश के पास आकाशवाणी की ओर से जब कविता-पाठ के लिए अनुबन्ध-पत्र आया तो वह चकित रह गया। जैसे सबके मन में रेडियो पर बोलने की कामना रहती है, वैसे ही उसके मन में भी दुर्बलता कहीं छिपी थी। उसके एक प्रोफेसर वार्ता प्रसारित करने जाया करते थे और उनकी गणना प्रभावशाली व्यक्तियों में भी थी। उनसे उसने संकेत किया कि वे उसके लिए थोड़ा प्रयत्न कर दें; पर या तो वे कुछ कर नहीं पाये

थे या उधर उन्होंने ध्यान ही नहीं दिया था। उनके प्रति उसका मन एक प्रकार की झुँझलाहट से भर गया था—यद्यपि इतनी-सी छोटी बात पर क्रोध करने का उसे कोई अधिकार नहीं था। इस अनुबन्ध-पत्र को देखकर उसने समझ लिया कि हो न हो, यह सीमा का काम है और उसका हृदय एक प्रकार की सुखद कृतज्ञता से भर गया। लेकिन सीमा है कैसी कि उसने इस बात की चर्चा तक नहीं की। हमें बिना बताए हुए जब हमारे साथ कोई एहसान करता है तो हमारा हृदय कितना कोमल हो जाता है। उसके प्रति किए गये छोटे-से-छोटे अपराध पर हम कितना पछताते हैं। सीमा के इस कर्म के आलोक में उसे अपना स्वभाव बहुत ही बेढंगा और अनुचित लगा। उस बेचारी ने थोड़े-से गीत मुझ से माँगे थे और मैं समझने लगा कि उसका पिता स्वार्थी है। हो सकता है कि यह सुझाव उसी की ओर से आया हो। वह केवल मेरे सम्पर्क में आना चाहती हो और गीत माँगना केवल एक बहाना हो। मैं किसी को ठीक से समझ ही नहीं पाता, यह मेरा कितना बड़ा दोष है। कविता से रेडियो के गीतों की ओर आने में मैंने कितना विरोध उसका नहीं किया। कैसी झुँझलाहट से मैं उसे उत्तर देता था जैसे मैं ही किसी जन्म का कालिदास होऊँ और कैसा हँसकर वह उसे टाल देती थी। सीमा इतनी सहनशील न होती तो मैं एक दिन भी उसके पास नहीं बैठ सकता था। मैं एक मिनट के लिए भी किसी के पास बैठने योग्य नहीं हूँ।

रात उसने बड़ी कठिनाई से काटी। प्रभातकाल होते ही वह सीमा के यहाँ गया। जाते ही भट्टाचार्य जी से भेंट हुई। उन्होंने मुक्त हृदय से आशीर्वाद दिया। कहा, "जाओ, ऊपर जाओ। सीमा सुनेगी, तो बहुत प्रसन्न होगी।" जगदीश ने जब सीमा को बताया कि कविता-पाठ के लिए उसके पास आकाशवाणी की ओर से आफ़र आया है तो उसका चेहरा खिल उठा। बोली, "बैठिए, मैं आपके लिए चाय लाती हूँ।"

जगदीश कल्पना में डूब चला।

वह सोचता है—यह जीवन क्या है ? प्रेम क्या है ? प्रेम और जीवन का क्या सम्बन्ध है ? क्या बिना प्रेम के जीवन नहीं चल सकता ? क्या जीवन में सभी प्रेम करते हैं ? क्या जीवन में सभी को प्रेम मिलता है ? क्या उसके जीवन में कभी प्यार आयेगा ? अच्छा, जब प्यार आता है तो लोग कैसे जान लेते हैं ?

यह सीमा कौन है ? क्यों उसके जीवन में आई है ? क्या वह उसे प्यार करती है ? और क्या वही उसे प्यार करता है ? यदि नहीं, तो यह सब कुछ फिर क्या है ? क्यों वह इतना उसके लिए करती है ? और क्यों वह खिचकर यहाँ आता है ? हो सकता है जीवन की ऊब से बचने वह यहाँ आता हो और मन में इसके अतिरिक्त कोई गहरी भावना न हो। हो सकता है, सीमा के मन की स्थिति भी ऐसी ही हो। उसके भी जीवन में दूर-दूर तक कहीं कोई नहीं है। शायद इसी से उसके प्रति इतना खिंचाव है। लेकिन सीमा का तो कहना है कि बहुत लोगों ने बहुत प्रलोभनों से उसे घेरा है और किसी का बिना कुछ स्वीकार किए वह बची चली आई है। मेरी ओर से जो एक प्रकार का विश्वास-सा उसे है, इसी से वह आकर्षित है शायद ! तब क्या नारी प्यार नहीं चाहती, विश्वास चाहती है ? विश्वास शायद पहले चाहती है। जिस पर विश्वास नहीं कर सकती, उसे प्यार भी नहीं कर सकती। यदि यह विश्वास टूट गया तो ? तब क्यों न किसी दिन परीक्षा के लिए थोड़ा अभिनय करके देखा जाय। फिर मन में आया : छिः जिससे सम्बन्ध बनाए रखना होता है, उसकी परीक्षा नहीं लेते—हँसी में भी नहीं।

सीमा ने चाय सामने लाकर रख दी। लेकिन जगदीश अभी अपनी कल्पना से मुक्त नहीं हो पाया था। वह चाय की ओर न देखकर सीमा की ओर देखने लगा।

"मुझे कभी देखा नहीं है क्या, जो इस तरह देख रहे हैं ?"

"ऐसा ही तो लगता है।"

"क्यों लड़ते हैं अपने से ?" सीमा ने धीरे से कहा।

"क्या कहा आपने ?" जगदीश ने चेतना की परिधि में लौटते हुए पूछा।

"यही कि आपकी गाड़ी किस समय जाती है ?" उस बात को वह टाल गयी।

"दिन निकलने से बहुत पहले—२ बजे के बाद।"

"जिस दिन जायँ ताँगे वाले से कहें कि वह इधर से निकलता हुआ जाय।"

"लेकिन क्यों ?"

"सब बातों में बहस नहीं करते। कभी-कभी चुप-से मान भी जाते हैं।"

जगदीश ने सिर झुका लिया।

और तब वह रात भी आई। जाड़े की रात। ताँगा जब सीमा के दरवाज़े पर पहुँचा तो उसने देखा सीमा ज़ीने से नीचे उतर रही है और उसके हाथ में चाय का प्याला है।

ताँगे से उतरकर जगदीश सीमा के पास आकर खड़ा हो गया। उसने देखा चारो ओर सन्नाटा है। आकाश में उजले नक्षत्र अभी चमक रहे थे।

क्या कहे वह ! कुछ भी तो नहीं कह पाया।

२०

जगदीश पढ़ने आया था; पर उसके आर्थिक संकट ने जीवन के कुछ पक्षों को सीधे समझने का उसे अवसर दिया। नयन, सीमा, प्रीति और बानू के सम्पर्क ने उसकी भावनाओं को समृद्ध किया। इसमें संदेह नहीं कि

इनके सम्पर्क से उसे सुख मिला। उस सुख की वह व्याख्या नहीं कर सकता था। जिस प्रवाह में वह पड़ गया था, उसी में बहा चला जा रहा था। ऐसा नहीं था कि वह कुछ सोचता ही न हो। वह रात के एकान्त में सभी के सम्बन्ध में सोचता और सोचते-सोचते सो जाता। जीवन की गति को वह विशेष दिशा में ले जाना चाहता था। उसके लिए वह प्रयत्न भी करता था। फिर भी सब कुछ क्योंकि हमारे हाथ में नहीं होता; अतः कुछ का कुछ हो जाता है। कभी-कभी छोटी-सी छोटी घटनाएँ हमें कहीं से कहीं ले जाती है। बानू के यहाँ पानी पीने की साधारण-सी घटना ने उसके स्वभाव के जिस कोमल अंश को जगदीश के सामने खोलकर रखा था, उसकी वह आशा तक नहीं करता था। सीमा धीरे-धीरे जिस ओर बढ़ती चली जा रही थी, उससे भी वह कम चकित नहीं था। नयन अब तक उसके लिए आश्चर्य का विषय थी ही। और प्रीति के सम्बन्ध में तो रस भी आने लगा था। इस प्रकार नारी के स्वभाव को वह कुछ तो जान ही गया था; पर वह यह भी जानता था कि नारी को यह पूरा जानना नहीं है। सबसे अधिक वह यह जानने के लिए उत्सुक था कि ये लड़कियाँ उसके सम्बन्ध में क्या सोचती हैं? कुछ सोचती भी हैं या नहीं? क्या उसके सम्बन्ध में अपनी सहेलियों से ये कुछ कहती हैं? लेकिन दूसरी ओर की भावनाओं को जानने का उसके पास कोई उपाय न था। सबसे अधिक आघात उसे शारदा के व्यवहार से पहुँचा था। उस घटना के उपरान्त उसके स्वभाव और व्यवहार में बहुत अन्तर आ गया था। वह ऐसा दुःख था जिसे वह किसी पर प्रकट ही नहीं कर सकता था। शारदा ने वह बात क्या कह दी, उसमें एक प्रकार से थोड़ी हीनता की भावना भर दी। कभी वह सोचता सभी स्त्रियाँ एक-सी होती है। वह किसी से न मिले, किसी के सामने न पड़े। कभी सोचता इसमें शारदा का कोई अपराध नहीं है। जैसी सुन्दर वह स्वयं है, वैसे ही सुन्दर व्यक्ति से विवाह करना चाहती है। यदि पुरुषों को सुन्दर लड़कियों से

विवाह करने का अधिकार है, तो लड़कियों को भी ऐसी कामना रखने का अधिकार मिलना चाहिए। लड़कियाँ क्यों न सुन्दर लड़कों को देखें ? लेकिन अपने एक वाक्य से शारदा ने जो चोट उसे पहुँचाई थी, वह हज़ारों वाक्यों से कोई दूसरी लड़की नहीं पहुँचा सकती थी। हो सकता है कि उसने सारी बात बहुत सहज भाव से कही हो और उसके मन को आघात पहुँचाना उसका लक्ष्य न रहा हो। पर जो होना था, वह तो हो ही गया !

नयन और जगदीश इस समय एक बालकनीनुमा स्थान पर बैठे थे--नयन सोफ़े पर, जगदीश एक कुर्सी पर। उसके पीछे छत के एक भाग को छोड़कर एक कमरा था। सोफ़ा और कुर्सी वहीं से मँगवाकर नयन ने डलवा लिए थे। बालकनी के एक कोने पर छोटे पत्तों और हल्के फूलों वाली एक लता चढ़ी हुई थी। सामने उद्यान था। दूर पर एक पंक्ति में कई कमरे थे। जगदीश इधर कभी आया ही नहीं था ?

"इन कमरों में कौन रहता है ?"

"नौकरों के लिए कमरे हैं। एक में भरोसे रहता है। दूसरे में रामदेई।"

"कौन रामदेई ?"

"मेरी नौकरानी है ! आपने उसे देखा नहीं। अभी मेरे साथ गई थी।"

"एक महीने से अधिक हुआ मैं आपको देख ही नहीं पाया...!"

"भरोसे को मैं समझा तो गई थी। आपको कोई कष्ट हुआ ?"

"नहीं कष्ट क्यों होने लगा; फिर भी..."

नयन ने उत्सुकता से पूछा, "फिर भी क्या ?"

"आपके अभाव को यह मकान और नौकर तो नहीं भर सकते। लगता है जैसे शरीर से प्राण ही उड़कर कहीं दूर चले गए हों..."

"आपको मेरा अभाव खटका ?"

"यह मुझे नहीं मालूम..."

नयन ने कहा, "मेरे पास आकर बैठिये।" जगदीश बिना प्रतिवाद किये सोफ़े पर पास आकर बैठ गया।

"कहाँ चली गयी थीं आप ?"

"जयपुर।"

"कोई काम था ?"

"काम ही समझिये। बिना काम के कोई कहीं जाता है ?"

"वहाँ आपके कोई रिश्तेदार हैं ?"

"नहीं, मेरा अपना मकान है।"

"और आपको कहाँ-कहाँ जाना पड़ता है ?"

"कलकत्ता, बम्बई, काश्मीर।"

"वहाँ भी आपके मकान हैं ?"

"नहीं, केवल कलकत्ते में एक मकान और है।"

"फिर कहीं जायँगी तो बिना सूचना दिए चुप से चली जायँगी ?"

"नहीं, अब बताकर जाया करूँगी।"

"इन स्थानों पर जाना बहुत आवश्यक है ?"

"आदमी को थोड़ा घूमना चाहिए। एक स्थान पर रहते रहते जी ऊब जाता है। आपको पता नहीं, मैं कितनी अकेली हूँ।"

"लेकिन इस स्थिति को तो आप जब चाहें समाप्त कर सकती हैं।"

"नहीं कर सकती—चाहने पर भी नहीं।"

जगदीश चुप हो गया। संध्या घिर आई थी। उसने अपनी जेब से धीरे-से पच्चीस रुपये निकाले और नयन के चरणों में रख दिए। नयन एकदम घबरा-सी गई। बोली, "यह क्या है ?"

"एक स्थान पर मैंने ट्यूशन कर लिया है। उसी के रुपये हैं।"

"तब मुझे क्यों दे रहे हैं ?"

"मैं इनका क्या करूँगा ?"

"अपने पास रखिए न।"

"यह मेरी पहली कमाई के रुपये हैं। किसे जाकर दूँ? मुझे मालूम है आपकी दृष्टि में इन रुपयों का..."

नयन ने उसे टोककर कहा, "ऐसा नहीं कहते।" रुपये उठाकर वह भीतर कहीं चली गई। जगदीश चुप बैठा रहा। नयन जब लौटकर आई तो कुछ उदास थी।

जगदीश ने उस बात को लक्ष्य कर लिया। पूछा "आप उदास क्यों हैं?"

"कुछ नहीं। वैसे ही।" नयन ने कहा।

"आपके पीछे बहुत-सी घटनाएँ घट गईं। यहाँ एक मिस्टर भट्टाचार्य हैं—निर्मल भट्टाचार्य। एक दिन एक उत्सव में उनसे भेंट हो गई। उन्होंने कई बार मुझे बुलाया। उनकी एक बहुत सुन्दर लड़की है। नाम है सीमा। रेडियो से उसका गायन प्रसारित होता है। बाप-बेटी ने न जाने कहाँ से सुन लिया कि मैं कविता करता हूँ। भट्टाचार्य ने अपनी लड़की के लिए गीत लिखने के लिए मुझसे आग्रह किया। पहले तो लड़की को मेरी रचनाएँ पसन्द ही नहीं आईं। यह भी कोई बात हुई? उनके लिए लिखो भी और उनकी आलोचना भी सुनो। साहित्यिक वे लोग मुझे बिल्कुल नहीं लगते, यद्यपि भट्टाचार्य कहते हैं कि वे अपने यौवन-काल में बङ्गाली में कविता लिखा करते थे। जो कवि होगा, वह किसी से भी काव्य के स्तर से नीचे उतरने के लिए क्यों आग्रह करेगा? सीमा चाहती है कि रचनाएँ अत्यन्त सरल हों। हिन्दी नहीं जानती न। और मुझे तो ऐसा लगता है कि संगीत का भी उसे अच्छा ज्ञान नहीं है। यह उसकी अपनी असमर्थता है। मैंने गायकों को विनय-पत्रिका के ऐसे पद गाते सुना है जिसकी भाषा एकदम संस्कृतनिष्ठ है। फिर भी उसके लिए मैंने कुछ गीत लिखकर दिए हैं। अब वह बहुत प्रसन्न है। क्या करता, आप तो यहाँ थीं ही नहीं। किसी

काम में मन ही नहीं लगता था। थोड़ा समय सीमा के लिए गीत लिखने में ही कट गया।"

नयन ने जगदीश को टोका नहीं। वह आकाश की ओर देखती रही। ऊपर दो-एक तारे इधर-उधर छिटक आये थे।

"इसी बीच प्रिंसिपल मजूमदार ने एक पत्र अपने एक परिचित मित्र के लिए लिखकर दिया। पहले उन्होंने एक स्कॉलरशिप दिलाने का वचन मुझे दिया था; पर इस सम्बन्ध में वे कुछ कर नहीं सके। तो उस पत्र को लेकर मैं शम्सउद्दीन साहब के यहाँ गया। सुनते हैं शम्सउद्दीन यहाँ के प्रसिद्ध जौहरी हैं। वे कलकत्ते, बम्बई, भोपाल, हैदराबाद जाते रहते हैं। उन्हीं की लड़की को पढ़ाने की बात थी। मैं डर रहा था बुड्ढा कहीं मना न कर दे। पढ़ाने में बिल्कुल परिश्रम नहीं करना पड़ता। लड़की अँग्रेजी का एक अक्षर नहीं जानती। बिल्कुल बच्चों की तरह पढ़ाना पड़ता है। लेकिन हैं ये कुछ अजब लोग। एक दिन प्यास लगने पर मैंने पानी माँगा, तो अपने घर से न पिलाकर पानी मँगाया उन्होंने पड़ौस के किसी अग्रवाल के यहाँ से। मैंने पानी पिया ही नहीं। झुँझलाहट में उठ आया। दूसरे दिन बानू ने बहुत दुःख प्रकट किया। यह भी कोई बात हुई? आदमी आदमी के घर का पानी नहीं पी सकता।"

तारे कुछ और अधिक खिल आए थे। अंधकार में वे और भी उजले लग रहे थे।

"आप कहीं बाहर भी तो गए थे?"

"गया तो था।"

"कहाँ गए थे?"

"मथुरा।"

"क्या कर आए वहाँ?"

"एक सर्टिफ़िकेट लाया।"

"कैसा सर्टीफ़िकेट?"

"असुन्दरता का !"

अंतिम वाक्य कहते-कहते उसकी वाणी में कुछ ऐसी कसक निहित थी जैसे न निकले हुए आँसुओं के वेग को लेकर लौटी हो; पर उसने अपने को सहसा सँभाल लिया।

"पूरी बात सुनाइए।"

"मुझसे नहीं कही जायगी।"

"नहीं, मेरा आग्रह है सुनाइए।"

"मथुरा में मेरी एक मौसी हैं। उन्हीं ने पत्र लिखकर मुझे अभी बुलाया था। पता चला वहाँ उनके परिवार से परिचित एक डाक्टर हैं। उन्हें अपनी लड़की के लिए एक लड़के की आवश्यकता थी। डाक्टर ने मुझे खाने पर बुलाया।"

"लड़की से भेंट हुई ?"

"हुई तो।"

"क्या बातचीत हुई आपकी ?"

"कोई विशेष बात नहीं हुई। लड़की सुन्दर है। बाद में मौसी से मुझे पता चला कि उसने मुझे 'रिजैक्ट' कर दिया।"

"किस आधार पर ?"

"यह कहकर कि आदमी सुन्दर नहीं है।"

नयन ने चकित होकर पूछा, "क्या कहा ?"

"बताया तो—मै सुन्दर नहीं हूं।"

जगदीश ने अपना सिर झुका लिया।

"बेवकूफ़ कहीं की !" नयन ने कुछ आवेश के स्वर में कहा। फिर जगदीश के कंधे पर हाथ रखकर बोली, "इसमें दुःख करने की क्या बात है ?"

"मैं समझा नहीं सकता मेरा मन कितना दुखा है।"

अँधेरा और भी घिर आया था। नयन ने स्वर को और भी कोमल करते हुए कहा, "सिर ऊपर उठाइए।"

जगदीश ने सिर उठाया। नयन का मुख उस अंधकार में उजली दीप-शिखा-सा चमक रहा था। हाथ पकड़ कर उसने उसे अपने पास खींच लिया और उसके सिर को अपने बाँये कंधे पर रख कर चुप बैठी रही। जो हुआ वह जगदीश के लिए अप्रत्याशित था।

"जीवन में पहली बार मैंने 'हर्ट' फ़ील किया है!"

नयन ने जगदीश को खींचकर उसके ओंठ चूम लिये। वह भीतर तक काँप गया।

जगदीश का स्वर भी काँप रहा था, "मैंने न जाने कितना अपमानित अनुभव किया है!"

नयन ने उसे और पास खींचा और दो-तीन बार उसके ओंठ से अपने ओंठ मिलाये। बोली कुछ भी नहीं।

"इच्छा होती है, अपना मुँह अब मैं किसी को भी न दिखाऊँ।"

नयन ने उसे एकदम अपने हृदय से लगा लिया और कसकर न जाने कितनी बार उसके ओठों का चुम्बन किया और फिर उसका सिर अपने कंधे पर रखकर थपथपाने लगी।

"आज आप अपने कमरे में नहीं जायेंगे। यहीं सोयेंगे।"

"नहीं, मैं चला जाऊँगा। इस 'ऐबनॉर्मल' व्यवहार के लिए मैं बहुत लज्जित हूँ। मुझे यह चर्चा नहीं करनी चाहिए थी।"

"नहीं, इसमें 'ऐबनॉर्मल' कुछ भी नहीं है। लेकिन कमरे में ठीक से तो सोयेंगे न?"

"हाँ।"

रात में किसी समय मैं उधर से निकलूँगी। और आपको सोते न पाया तो अपने साथ ले आऊँगी।"

जगदीश लौट गया।

२१

बानू को पढ़ने का शौक था कम, बातें करने का ज़्यादा। बातें करने से भी अधिक चाव उसे बातें सुनने का था। इसका तात्पर्य यह नहीं कि जगदीश उसे पढ़ाता नहीं था, बातें ही करता रहता था; पर न जाने वह कितनी बातें जानना चाहती थी। जगदीश ने जब देखा कि धार्मिक कट्टरता उसमें बिल्कुल नहीं है, तो महाभारत, रामायण, कथा सरितसागर, पंचतंत्र, पुराणों और उपनिषदों की कितनी ही कहानियाँ उसने उसे सुनाईं। सीता, द्रौपदी, दमयंती और सावित्री की कहानियाँ सुनते-सुनते बानू प्रायः अधीर हो जाती। कभी-कभी लोक-गीतों की वह चर्चा करता। उनमें वर्णित सीता-परित्याग की गाथा सुनकर बानू बहुत रोयी थी। जगदीश ने कहा कि अगर आप इस तरह रोने लगेंगी, तो वह कभी कुछ नहीं सुना पायेगा। बानू ने कहा यह तो दुःख का रोना नहीं है। दूसरे के दुःख पर जिसके आँसू नहीं निकलते वह भी क्या इंसान है। उसने बतलाया, वह अपने आँसू बहुत रोकना चाहती है, लेकिन जहाँ कोई त्याग की बड़ी घटना होती है या बहुत बड़ी तकलीफ़ उठाकर जहाँ कोई इंसानियत के सिर को ऊँचा करता है, वहाँ उसके आँसू निकल ही आते हैं। उसे लगता है ऐसी कहानियाँ उसको भी कुछ बड़ा बना जाती हैं।

पहले बानू बात करने में बहुत झिझकती थी। एक दिन जगदीश ने ईद के सम्बन्ध में जानकारी हासिल करने के लिए पूछा। बानू दस-पन्द्रह मिनट तक बोलती रही। ऐसे ही एक दिन मुहर्रम के बारे में उसने कुछ जानना चाहा। उस दिन तो वह रुकना ही नहीं जानती थी। इसके बाद जगदीश ने बहुत से प्रश्न उससे किये। आप किस-किस के यहाँ जाती हैं? आपके यहाँ कौन कौन आता है? आपने उर्दू में कौन-सी किताबें पढ़ी हैं? पिक्चर आप देखती हैं या नहीं? उसे पता चला बनू बाह्य जगत के सम्पर्क में बहुत कम आई है। सहेलियाँ भी उसकी गिनी-

चुनी हैं। जगदीश किसी ऐसे 'कॉमन इंटरैस्ट' की तलाश में था जिस पर दोनों बात कर सकें। लेकिन वह ऐसी सामान्य बात थी जिसकी ओर उसका ध्यान सबसे पहले जाना चाहिए था और नहीं जा पाया था। वह थी उर्दू की कविता। बानू और जगदीश दोनों को मिर्ज़ा ग़ालिब का कलाम बहुत पसंद था। बानू को जिगर की गज़लें भी बहुत अच्छी लगती थीं। जगदीश जोश और फ़ानी से भी जब कुछ सुनाता तो बानू बड़े चाव से सुनती। फ़ानी को आप कम पढ़ा कीजिए, वह कभी-कभी कहा करती। उसे पढ़कर मन बहुत उदास हो जाता है। मन को उदास करने से क्या फ़ायदा है?

"आज मैं आपसे बात करूँगा, पढ़ाऊँगा नहीं।" जगदीश ने एक संध्या को बानू से कहा।

"यह तो बहुत अच्छी बात है।" बानू बोली।

"जो पूछूँ उसका जवाब देना होगा। यह मत कहिएगा कि हम इस बारे में कुछ नहीं जानते।"

"जैसी मेरी समझ है, उसके मुताबिक़ जवाब दूँगी। लेकिन यह बहुत मुमकिन है कि किसी बात को मैं जानती ही न होऊँ।"

"आप ज़िन्दगी के बारे में कभी कुछ सोचती हैं?"

"सोचती तो हूँ।"

"क्या सोचती हैं?"

"सोचने को लाख बातें हैं। आप क्या जानना चाहते हैं?"

"ज़िन्दगी का मक़सद क्या है?"

"यह तो बहुत बड़ा सवाल कर दिया आपने। उसका क्या एक मक़सद हो सकता है? अच्छा मैं अभी आती हूँ..." इतना कहकर बानू सामने के कमरे में चली गई। वहाँ से लौटने पर एक तश्तरी में फल ले आई और काटकर खिलाने लगी।

"यह तो बहुत पेचीदा सवाल है। आप समझते हैं ऐसे पेचीदा

सवाल का जवाब मैं दे सकती हूँ ? आपने तो रामायण-महाभारत से लेकर यहाँ तक बहुत कुछ पढ़ा है। उसमें इस बात का जवाब कहीं नहीं मिला ?"

"कहीं नहीं मिला।"

"क्यों झूठ बोलते हैं ?"

"पढ़ा बहुत है, सोचा भी बहुत है, दुनिया में बहुतों से पूछा भी बहुत है; लेकिन किसी ने ठीक जवाब दिया हो, ऐसा नहीं लगता।"

"हो सकता है जो मैं मानती हूँ वह आप न मानें।"

"उससे आपकी बात झूठ तो नहीं हो जायगी।"

"अच्छा, फिर किसी दिन बतलाऊँगी।"

"नहीं, नहीं, आज बतलाना होगा—अभी।"

"क्यों, ऐसी क्या जल्दी है ?"

"मुझे लगता है मैं आपसे बहुत जल्दी दूर हो जाऊँगा और फिर कभी मिल नहीं पाऊँगा।"

"यह आपके मन का डर है या किसी ने कुछ कहा है ?"

"एक ज्योतिषी ने कहा है कि मैं जल्दी मर जाऊँगा।"

बानू के हाथ का फल हाथ में ही रह गया। जगदीश की ओर दृष्टि उठाकर उसने कहा, "ज़िन्दगी का मक़सद प्यार है।"

"क्यों ?"

"औरत और मर्द क़ुदरत की दो आज़ाद इकाई हैं। यह आज़ादी आख़िर तक बनी रहे, इसीलिए ज़िन्दगी और मौत के फ़ासले को प्यार के रास्ते से तय करना पड़ता है।"

"और शादी ?"

"शादी ज़िन्दगी की सबसे बड़ी ज़रूरत है; लेकिन वह ज़िन्दगी का मक़सद नहीं है।"

"शादी ज़रूरत है—किसकी ?"

"नेचर की। क़ुदरत का मक़सद उससे हल होता है।"

"इंसान का ?"

"इंसान का प्यार से।"

"इस बात का आपको पूरा इत्मीनान है ?"

"पूरा।"

"लेकिन प्यार है क्या ?"

"मैंने कहा न कि वह दो आज़ाद इकाइयों का एक-दूसरे की ओर बढ़कर आना और एक हो जाना है।"

"शादी में भी तो यह हो सकता है ?"

"शादी में आज़ादी नहीं बनी रह सकती। वहाँ वह ख़त्म हो जाती है। इसी से प्यार भी धीरे-धीरे ख़त्म हो जाता है।"

"प्यार में जिस्म आता है ?"

"ज़िन्दगी में ज़िस्मानी से लेकर रूहानी तक जितने भी पहलू हैं, प्यार सभी को छूता और जगमगाता है। प्यार की ज़िन्दगी एक मुख़्तलिफ़ क़िस्म की ज़िन्दगी होती है। उसमें आपको सब कुछ देना पड़ता है और आपका कुछ भी नहीं बिगड़ता लेकिन...."

"लेकिन क्या ?"

लेकिन यह तक़दीर के हाथ में है कि ज़िन्दगी में प्यार आपको मिले या न मिले।"

"आप तक़दीर को मानती हैं ?"

"हाँ, प्यार के उसूल में जिसका अक़ीदा है, उसे तक़दीर मानकर चलना पड़ता है। सब कुछ होने पर भी प्यार का मिलना न मिलना तक़दीर के हाथ में है।"

"जिससे आपकी शादी हो उससे प्यार न मिले तो आप क्या कीजिएगा ?"

"कह नहीं सकती क्या करूँगी। आदमी देखकर कुछ करूँगी। शादी

में भी जो कुछ मिलता है, दुनिया उसे भी प्यार कहती है। लेकिन वह एक दूसरी बात है। जिस प्यार की मैं बात कर रही थी उसका शादी से कोई ताल्लुक़ नहीं है। सच पूछिए तो शादी का प्यार से कोई ताल्लुक़ है ही नहीं। शायद मैं अपनी बात आपको समझा नहीं सकी।"

"क्या शादी के बाद किसी और से प्यार मुमकिन है?"

"बिल्कुल मुमकिन है। बहुत औरतें हैं जो शादी के बाद प्यार करती पाई गई हैं।"

"आप सोचती हैं, यह प्यार उन्हें करना चाहिए?"

"इसमें मेरे या आपके सोचने की कोई बात नहीं है। दो आदमियों का टकराना अगर लिखा है तो चाहे वह शादी से पहले हो या बाद में, उसे कोई मिटा नहीं सकता।"

"ऐसा प्यार पूरा हो जाता है?"

"न हो, उससे उसकी अहमियत में क्या कमी आती है?"

"इससे एक विरोध तो खड़ा हो ही जाता है।"

"हो जाय। इसके लिए इन्सान सारी दुनिया से ही नहीं, अपने से भी लड़ता है। प्यार में यह भीतर-बाहर की लड़ाई तो चलती ही रहती है।"

"क्या प्यार एक से ज़्यादा से मुमकिन है?"

"एक वक़्त में तो नहीं।"

"क्या प्यार मर भी जाता है?"

"प्यार तो एक जज़्बा है। वह मर कैसे सकता है? हाँ, जिसे हम प्यार कहते हैं, वह हट सकता है। उसकी जगह दूसरा आदमी आ सकता है।"

"दूसरा आदमी कैसे आ सकता है?"

"हो सकता है थोड़ी देर के लिए ग़लत आदमी आ गया हो। उसे

किसी वक़्त हटाना होगा। सही आदमी के आने पर उसे जगह देनी होगी।"

"लेकिन सही आदमी कौन था, इसका पता किस वक़्त चलेगा?"

"ठीक पता तो मौत से थोड़ी देर पहले ही चल सकता है।"

"अगर किसी आदमी की ज़िंदगी को चार आदमी घेरे हुए हों, तो उसे कैसे पता चलेगा कि सच्चा प्यार उसे कौन करता है?"

"यह आपकी अपनी बात है?" बानू ने पूछा।

"नहीं, नहीं, मुझ जैसे निकम्मे आदमी को कौन प्यार करेगा?"

"यह तो कुछ मुश्किल नहीं है। मन बता देता है। उससे बार-बार पूछिये। वह बता देगा।"

"और अगर हम चार स्थानों पर आकर्षित हों तो?"

"मैं क्या सभी कुछ जानती हूँ?"

"नहीं, बताइये न।"

"यह बात भी मन ही बता देगा।"

"और कोई पहचान नहीं है?"

"आप जब अकेले हों और वे चारों चेहरे बार-बार आपकी आँखों के सामने आयें तो जो सबको हटाकर आख़िर में अकेला जगमगाता रहे, वही असली चेहरा है।"

"आज आपको बहुत थका दिया।"

"नहीं, ऐसी बात नहीं है; लेकिन मेरे भीतर से ये बातें निकालने के लिए आपने मुझे बहुत तकलीफ़ दी है। मैं समझती हूँ, आप किसी को भी बहुत तकलीफ दे सकते हैं।"

"ज्योतिषी वाली बात कह कर न?"

"हाँ।"

"लेकिन वह तो मज़ाक था।"

"ऐसी बात मज़ाक में भी नहीं कहा करते।"

२२

जगदीश को जो विचार झकझोर गया, वह हिन्दी की कक्षा में उत्पन्न हुआ था। विनय-पत्रिका के पद पढ़ाये जा रहे थे जिनका मूल स्वर यह था कि जीवन की सार्थकता उसे भगवान के चरणों में निवेदित करने में है। यों जगदीश के संस्कार आस्तिक व्यक्तियों के ही थे, केवल कभी-कभी वह नास्तिकों की-सी बातें करने लगता था। उसे ऐसा लगता था कि जीवन का लक्ष्य जीवन के भीतर ही खोजना होगा। उसकी मा आँगन के एक कोने में खड़ी तुलसी की नित्य पूजा करती थी। वह स्वयं स्नान करने के उपरांत गायत्री मंत्र का पाठ करता था। जिस गाँव का वह रहने वाला था, उसमें एक टीले पर देवी का एक बहुत प्राचीन मंदिर था। नदी किनारे साधुओं के मठ और झोपड़ियाँ थीं। वर्ष में न जाने दूर-दूर से कितने साधु, संन्यासी, औघड़ उधर से निकलते। देश के बहुत से प्रसिद्ध संतों से उसकी भेंट पहले पहल अपने गाँव में ही हुई थी। छुट्टियों में जब कभी वह आता, इनमें से किसी न किसी के दर्शन को अवश्य जाता। जिस दिन उसे इंदुकुँवरि के विवाह का पता चला था, उस दिन से तो अपनी छुट्टियों का अधिकांश समय वह इन्हीं लोगों के बीच व्यतीत करता था। इस अवधि में एक ऐसा भी समय आया जब उसके घर वालों को इस बात की आशंका होने लगी कि लड़का कहीं साधु होकर घर से न निकल जाय। लेकिन जगदीश इस जमात में मन की शान्ति के लिए गया था। वह साधुओं के बीच घूमा, वेदान्तियों से उसने वादविवाद किया; पर मन की शान्ति उसे नहीं मिली। भारतीय अध्यात्मवाद की पूरी शक्ति—अर्थात् सारे बाबा, वैरागी, संन्यासी, भक्त और वेदान्ती उसके मन से इंदुकुँवरि का चित्र नहीं मिटा सके।

इस समय जगदीश भट्टाचार्य के यहाँ बैठा था।

सीमा ने ज्यों ही चाय का प्याला जगदीश के सामने रखा, उसने कहा, "बैठ जाइए। मुझे आपसे कुछ बात करनी है।"

"कोई विशेष बात है ?"

"बैठें तब बताऊँ न ।"

सीमा चुप से बैठ गयी । पूछा, "कोई लड़ाई-झगड़े की बात है ?"

जगदीश हँस पड़ा । बोला, "नहीं ।"

"तब ?"

"जीवन का लक्ष्य आपकी दृष्टि में क्या है ?"

सीमा ने कुछ सोचकर कहा, "किसी स्वप्न की पूर्ति ही जीवन का लक्ष्य होना चाहिए ।"

"मैं समझा नहीं ।"

"जीवन में आपका अपना कोई सपना नहीं ?"

"नहीं तो..."

"सोचकर उत्तर दीजिए ।"

"संभव है कुछ हो, लेकिन वह मुझे स्पष्ट नहीं है ।"

"जैसे जीवन में एक व्यक्ति प्रसिद्ध व्यापारी होना चाहता है, दूसरा जज, तीसरा सेना का बड़ा अफ़सर, चौथा नेता..."

"आपको अपना सपना स्पष्ट है ?"

"है तो ।"

"क्या है वह ?"

"कला की साधना ।"

"इसे सपना क्यों कहती हैं, इच्छा क्यों नहीं कहतीं ?"

"इच्छा और सपने में भेद होता है ?"

"क्या ?"

"इच्छाएँ बहुत-सी हो सकती हैं, सपना एक ही होता है । इच्छाएँ बनती-मिटती रहती हैं; लेकिन जिसे मैं सपना कहती हूँ, वह मन की ऐसी दुर्निवार आकांक्षा है जो सभी इच्छाओं को दबाकर अपनी पूर्ति खोजती रहती है । संगीत मेरे जीवन की ऐसी ही आकांक्षा है । इसके लिए मैं

अपनी प्रिय से प्रिय वस्तु का परित्याग कर सकती हूँ। मुझे लगता है कि बिना गाए मैं जीवित नहीं रह सकती। संगीत मेरी साँस है। उसके दूर होते ही मैं, मैं नहीं रह जाऊँगी। मेरी मृत्यु हो जायगी।"

"अच्छा, मेरा सपना आपको क्या लगता है?"

"यह प्रश्न मुझसे न करके अपने अंतःकरण से कीजिए।"

"फिर भी बताइए क्या होना चाहिए?"

"साहित्य की साधना ही लगता है—फिर भी ठीक नहीं कह सकती। यदि साहित्य में केवल आपकी रुचि है तो यह सपना नहीं है, और यदि कोई दुर्दमनीय आकांक्षा आपको बार-बार साहित्य सृजन के लिए प्रेरित करती रहती है तो फिर यही आपको अपना सपना समझना चाहिए।"

"साहित्य और कला को आप जीवन में सबसे ऊँचा स्थान देती हैं?"

"देती तो हूँ।"

"इसका कोई कारण दे सकती हैं?"

"जीवात्मा ईश्वर का अंश है; अतः उसकी सबसे बड़ी आकांक्षा सृजन की ही हो सकती है। कला की सृष्टि विधाता की सृष्टि से भी सुन्दर होती है। सामंजस्य की जो भावना संसार में नहीं पायी जाती, वह कला में विद्यमान रहती है। कला का जगत सामान्य जगत से कहीं अधिक सुन्दर होता है। कला की अमर कृतियाँ भौतिक जगत की वस्तुओं से कहीं अधिक टिकाऊ होती हैं। कला के परिशीलन से जो आनन्द प्राप्त होता है, वह भौतिक सुख के उपभोग से कहीं उच्च कोटि का होता है। कलाकार कल्याण का सन्देशवाहक होकर अपने जीवन की सार्थकता सिद्ध करता है। जीवन में बहुत-सी शक्तियाँ हैं जो विनाश की परिचायक हैं, लेकिन सृजन की सबसे बड़ी शक्ति एक मात्र कला है। इसी से वह किसी भी देश की संस्कृति का सबसे बड़ा अंग होती है। जिस देश में कलाकार नहीं रहते, उसे श्मशान समझना चाहिए।"

"ये बातें आपने कहाँ से सीखी हैं?"

"किसी से भी नहीं। मेरे भीतर से ही आई हैं।"

"आपकी कला आनन्ददायिनी है, इस बात का आपको कैसे पता है?"

"पहले मैं भी कुछ नहीं जानती थी और स्वरों पर अधिकार करने के लिए मुझे अथक परिश्रम करना पड़ा था। बहुत सबेरे मेरे पिता जी मुझे उठा देते थे और मैं सितार लेकर बैठ जाती या राग-रागनियों का अभ्यास करने लगती थी। सच कहूँ, कई बार मेरा जी स्वयं ऊब गया और मैंने सोचा जैसी दस और लड़कियाँ हैं, मैं भी वैसी ही बनूँ। थोड़ी कढ़ाई-बुनाई, थोड़ा खाना बनाना, थोड़ा पढ़ना, थोड़ा ड्रैस करना, थोड़ा डांस करना, थोड़ा बात करना सीख लूँ और फिर छुट्टी। लेकिन तभी मुझे स्वयं अपने अभ्यास में आनन्द आने लगा। एक भीतर का सुख, जिसकी मैं व्याख्या नहीं कर सकती, मुझे मिलने लगा। तो आपकी कला सफल है या नहीं, उसकी एक पहचान तो मुझे यही लगती है, कि उसके सृजन-काल में स्वयं आपको सुख मिलता है या नहीं। पहले मेरी ओर कोई ध्यान नहीं देता था..."

जगदीश ने कहा, "यह तो झूठ है कि आप कहीं से निकल जायँ और लोगों की निगाहें न उठें, कोई ध्यान न दे।"

"छिः, वह बात दूसरी है।"

"उससे आपको सुख नहीं होता?"

"मुझे पता नहीं।...तो पहले मैं शेष सृष्टि से दूर थी, कटी हुई थी; लेकिन कला ने मुझे उससे जोड़ दिया। लोग मेरी कला से परिचित हुए, तो मुझे लगा मैं अकेली नहीं हूँ, सीमित नहीं हूँ, व्यापक हूँ, विस्तृत हूँ। इससे मुझे बहुत बड़ा सुख मिला। आप हँसेंगे, लेकिन कला के द्वारा ही मनुष्य उस भूमा से एकाकार हो सकता है, विराट के दर्शन कर सकता है।"

"प्रेम में व्यक्ति असीम नहीं हो उठता?"

"उसका धरातल व्यापक होगा तो अवश्य हो जाता होगा, जैसे देश-प्रेम, विश्व-प्रेम या ईश्वरीय प्रेम में, लेकिन व्यक्तिगत प्रेम में तो व्यक्ति बहुत संकीर्ण हो जाता है, बहुत सीमित। व्यक्तिगत प्रेम में अधिकार की भावना और ईर्ष्या का अंश रहता ही है। ये दोनों प्रेम की परिधि को सीमित करते हैं। प्रेमी चाहता है कि उसका प्रेमपात्र केवल उसी की चिंता में लीन रहे, वह और किसी से भाव का कोई संबंध न रखे..."

"प्रेम को आप कला से बड़ा नहीं मानतीं?"

"नहीं।"

"आपकी कला और आपके प्रेम में कभी संघर्ष उठ खड़ा हो, तो क्या करेंगी?"

"प्रेम का परित्याग कर दूँगी।"

"कोई वेदना नहीं होगी?"

"क्यों नहीं होगी! ऐसी-वैसी वेदना होगी। लेकिन उस वेदना को मैं सहन कर सकूँगी। कला का परित्याग करके तो मैं जीवित ही नहीं रह सकती।...अच्छा बहुत बातें हो गईं, अब मैं आपके लिए दूसरी चाय लाऊँ।"

सीमा के इस रूप को तो मैंने कभी देखा ही न था—अपने मन में इतना कहकर जगदीश न जाने क्या सोचने लगा।

२३

जगदीश बहुत देर तक अपने कमरे के बरामदे में टहलता रहा। न जाने किस प्रकार की आकुलता आज उसे घेरे हुए थी। सामने विशाल गगन पर उसने दृष्टि डाली। वह नीला और उजला था। दो-एक तारे

इधर-उधर उग आए थे। यह आकाश कब से यों ही फैला है? ये तारे भी न जाने कब से ऐसे ही उगते आए हैं? ये न होते तो रात कितनी भयानक लगती! कितने शीतल लगते हैं ये दृष्टि को! हमारी धरती पर न जाने कब से ये मंद आलोक विकीर्ण कर रहे हैं? क्या संबंध है इनका नीलाकाश से? क्या संबंध है हमारी धरती से? कोई संबंध है भी या हमने वैसे ही इसकी कल्पना कर ली है? कोई माने या न माने; पर लगता तो है कि धरती, तारे और आकाश किसी सम्बन्ध-सूत्र में आबद्ध हैं। वह अपने कमरे में आकर खिड़की के सहारे लगी मेज़ पर बैठ गया। खिड़की की तीलियों से उसने आकाश को फिर देखा। यहाँ से उसे नभ का एक अंश ही दिखाई दिया। वही दृष्टि, वही द्रष्टा, वही मन; लेकिन खिड़की की अपनी सीमा के कारण वह आकाश के विस्तार को नहीं देख पा रहा। सामने खड़े हरसिंगार के वृक्ष पर उसकी दृष्टि गई। बहुत कम फूल उसकी डाल पर थे। अभी क्वार के महीने में उसकी डाल कैसी फूलों से भर उठी थी। प्रभात-काल में जब वह उधर झाँकता, तो वृक्ष के नीचे की भूमि छोटे-छोटे फूलों से भरी होती। उन्हें कोई उठाता नहीं था। वे वहीं सूख जाते थे। क्या सार्थकता है इनके जीवन की? रात को उसका कमरा गंध से भर जाता। प्रभात में जब पवन के झकोरे सामने से आते तो उनमें लिपटी गंध उसे आनन्द से विह्वल कर जाती। इस वृक्ष पर अटके फूल भी इस समय आकाश में उलझे तारा-से लग रहे थे। इन फूलों का क्या सम्बन्ध है धरती से? क्या सम्बन्ध है आकाश से? क्या सम्बन्ध है तारों से? क्या सम्बन्ध है मुझसे? क्या इन सबका मुझसे कोई सम्बन्ध है? कौन हूँ मैं? क्यों हूँ यहाँ? कहाँ से आया हूँ? कहाँ जाऊँगा? ये बानू, सीमा, प्रीति, नयन कौन हैं? इनसे मेरा क्या सम्बन्ध है? कोई सम्बन्ध है भी? एक दिन इनमें से मैं किसी को नहीं जानता था। क्या कोई दिन ऐसा भी होगा, जब ये सब मुझसे दूर हो जायँगी—बहुत दूर—इतनी दूर कि मैं इन तक पहुँच नहीं पाऊँगा, कि मैं इन्हें छू नहीं पाऊँगा, कि मैं

इन्हें देख नहीं पाऊँगा, कि मैं इनके सम्बन्ध में किसी से कुछ सुन तक नहीं पाऊँगा। तब मेरा क्या होगा ?

चिंतन का यह प्रवाह बहता रहा। जगदीश थका-सा होकर मेज़ पर सिर रखकर सो गया। जैसे शारीरिक श्रम करने से व्यक्ति थक जाता है, वैसे ही अधिक विचार करने से भी। इतने में उसे लगा कि कमरे में धीरे से किसी ने प्रवेश किया है और एक कोमल कर ने उसके सर पर हाथ रख दिया है। वह सुख का एक क्षण था जिससे उसका अंतर परिपूरित हो गया। इस हाथ को वह पहचानता था।

"सामने मेज़ पर बैठ जाइए।"

"मेज़ पर बैठने से खिड़की से आने वाली चाँदनी न छिप जायगी ?"

"अब उस चाँदनी की कोई आवश्यकता नहीं रही। मनुष्य के सम्पर्क से ही प्रकृति मुझे अधिक सुन्दर लगती है। लेकिन मैं आज आपसे कुछ पूछूँगा। बतायेंगी न ?"

"बताने की बात होगी तो ज़रूर बता दूँगी।"

"नहीं मैं ऐसा कुछ नहीं पूछूँगा जिसका उत्तर आप न देना चाहें या न दे सकें।"

"आपको मेरे सम्बन्ध में कोई उत्सुकता नहीं होती ?"

"बहुत होती है—इतनी होती है कि मैं आपके सम्बन्ध में सब कुछ जानना चाहता हूँ; लेकिन मैं जानता हूँ समय अभी नहीं आया है। एक बार भरोसे से मैंने बातें की थीं, पर अधिक नहीं पूछ सका। किसी दिन आप से ही सब कुछ जानूँगा। हो सकता है किसी दिन आप मुझसे कुछ न छिपाएँ। लेकिन मैं आपको जानता नहीं हूँ, ऐसा न समझिए..."

नयन ने हँसकर पूछा, "क्या जानते हैं आप मेरे बारे में ?"

"यही कि आप पर विश्वास किया जा सकता है।"

"कैसा विश्वास ?"

"यह मुझे नहीं मालूम..."

"अगर किसी दिन आपको यह पता चला कि मैं इस विश्वास के योग्य नहीं थी तब ?"

"अच्छा, इस बात को छोड़िए और यह बताइए कि आप मेरी आँखों के सामने कहाँ से पड़ गईं ?"

"क्या, कुछ बुरा हुआ ?"

"नहीं, अच्छा ही हुआ। लेकिन कुछ दिन से मेरे मन में एक संदेह जगा है। अभी मेरे एक अध्यापक विनय-पत्रिका पढ़ा रहे थे जिसका मूल स्वर यह प्रतीत होता है कि जीवन वह फूल है जो ईश्वर के चरणों पर चढ़ने के लिए उगा है। उसी क्षण से मेरे मन में यह प्रश्न उठा है कि जीवन की सार्थकता किसमें है ? मैंने बानू से पूछा था : ज़िंदगी का मक़सद क्या है ? वह कहती है—प्यार। मैंने सीमा से प्रश्न किया : जीवन का लक्ष्य उसकी दृष्टि में क्या है ? वह कहती है—कला की साधना। लेकिन जैसे मैं संतुष्ट नहीं हूँ। आप बताइए कि जीवन का उद्देश्य आख़िर क्या है ?"

"जीवन तो आप ही अपना उद्देश्य है।"

जगदीश ने चकित होकर पूछा, "क्या कहा आपने ?"

"जीवन से महत्वपूर्ण इस ससार में और कुछ भी नहीं है।"

"कुछ भी नहीं ?" एक-एक शब्द पर ज़ोर देते हुए जगदीश ने फेर प्रश्न किया।

"नहीं – कुछ भी नहीं।"

"तब क्या बानू झूठ कहती है ?"

"आपने उससे पूछा कि हम जो प्यार करने को बाध्य होते हैं—जिसे सब प्यार की विवशता कहते हैं, वह किसके संकेत से ?"

"नहीं, यह तो नहीं पूछा।"

"सीमा से आपने यह प्रश्न किया कि स्वरों की जो माला संगीतज्ञ नित्य गूँथता है, वह अनजाने किस देवता के चरणों पर उसे चढ़ाता है ?"

"आप समझती हैं जीवन-देवता के चरणों पर ?"

"हाँ, मै ऐसा ही सोचती हूँ। मुझे आपके कवियों से यही शिकायत है कि आज तक उनमें से जीवन का चित्रण किसी ने भी स्वाभाविक रूप में नहीं किया। प्रारम्भ में धर्म, दर्शन, साहित्य, कला सभी का जन्म जीवन को परिष्कृत करने, उसकी व्याख्या करने, उसके मर्म को समझने और उसके सौंदर्य को अंकित करने के लिए हुआ था; पर पता नहीं बाद में क्या हुआ कि देवता तो छिप गया, रह गयी अर्चन की सामग्री। मै तो यहाँ तक कहने को तैयार हूँ कि तुलसीदास जिस उपासना की चर्चा करते हैं, यदि वह हमारे जीवन को सुन्दरतर नहीं बनाती तो व्यर्थ है।"

तुलसी की भावना पर किया गया आक्रमण जगदीश को अच्छा नहीं लगा; लेकिन उसने कुछ कहा नहीं। वह पूरी बात सुनने से पहले उसे टोकना नहीं चाहता था। उसने कहा, "सिद्धान्त में तो बात समझ में आती है; लेकिन इसका व्यावहारिक रूप क्या है ?"

"मै कहना चाहती हूँ कि जीवन का उद्देश्य है सुन्दर ढंग से रहना—अँग्रेजी में जिसे कहते हैं 'डीसेंट लिविंग', यद्यपि उसका अर्थ ग़लत समझा जाता है। मैं चाहती हूँ कि सब जीवन को प्यार करें, उसमें रस लें, उसकी थ्रिल को पहचानें। मैं चाहती हूँ कि आप शरीर से स्वस्थ हों। सुन्दर हो। न हो, तो प्रैज़ेन्टेबिल बनने का प्रयत्न करें। मैं चाहती हूँ कि आपकी भावनाएँ विकसित हों, कि आपका बौद्धिक स्तर ऊँचा हो। मैं चाहती हूँ कि आपका घर सुन्दर हो, मन सुन्दर हो, वातावरण सुन्दर हो, आपके साथी सुन्दर हो। मैं चाहती हूँ कि आपको चाहे कितना ही संघर्ष क्यों न करना पड़े; पर आप अपने व्यक्तित्व की रक्षा कर सकें और जीवन में डिगनिटी के साथ व्यवहार कर सकें। मुझे मृत्यु के समय आपके

यहाँ रोने-धोने से कबीर-पंथियों का शव को गाते-बजाते ले जाना कहीं अधिक अच्छा लगता है। उस मृत्यु में मुझे जीवन की मैग्नीफ़िसेंस के दर्शन होते हैं।"

जगदीश को लगा इस लड़की के विचारों ने उसकी चेतना को चारों ओर से घेर लिया है और निकलने का कहीं मार्ग तक नहीं छोड़ा है।

चाँदनी और खिल आई थी और खिड़की में दूर तक पड़ रही थी। नयन ने पूछा, "क्या सोच रहे हैं?"

"सोच रहा हूँ जीवन में जो क्षण आपके सम्पर्क में बीते हैं, वे बहुत महत्वपूर्ण हैं, वे ही जीवंत हैं।"

"ऐसी बात नहीं करते" नयन ने धीमे से कहा और उसका हाथ पकड़कर बोली, "आइए बाहर चलें।"

२४

जगदीश को निर्मल भट्टाचार्य अपने कमरे में ही मिले। उसने उन्हें प्रणाम किया। वे किसी पांडुलिपि के पृष्ठ इधर-उधर पलट रहे थे। बोले : बैठे-बैठे मैंने एक उपन्यास लिख डाला है। उस दिन तुम हमारे जीवन के विषय में जिज्ञासा किया। सो हमने सब लिख दिया है। किसी समय सुनायेगा। अभी डिप्टी साहब हमारे सिर पड़ गया। सो उसको एक चेप्टर सुनाया। आजकल इलाहाबाद से हमारा बड़ी लड़की आया हुआ है।

"क्या नाम है?"

"कालिंदी। तुम ऊपर जाओ न। चाय-शाय पीओ। हम भी आता है। हम अभी डिप्टी साहब की प्रतीक्षा करेगा।"

"शतरंज खेलना मुझे भी सिखाइए न।"

"नहीं नहीं, तुम्हारा अध्ययन-काल। तुम ब्रिलिऐन्ट बौय। तुम यह सब नहीं सीखेगा। यह खेल सब भुला देता है। शिक्षा समाप्त करके तुम कहीं बड़ा आदमी बनो। शतरञ्ज में क्या है, बाबा। कुछ नाम-धाम कमाओ। मा-बाप को सुख दो। विवाह-शिवाह करो। यही लोक की रीति। शतरञ्ज सीखकर क्या करेगा ? सुना नहीं, जो शतरञ्ज में लगा रहता है, उसके पीछे शत रञ्ज लगे रहते हैं। तुम युवक आदमी। जीवन में यशस्वी बनो। कभी तुम्हारा नाम सुनेगा, तो बुड्ढे को भी हर्ष होगा। फिर तो भूल जायगा कि निर्मल भट्टाचार्य नाम का कोई व्यक्ति कहीं था। तुम ऊपर जाओ। गप-शप करो।"

जगदीश ऊपर चला गया।

कालिंदी रसोईघर में एक छोटे मूढ़े पर बैठी चाय बना रही थी। साँवला रङ्ग, लम्बा आकार, बड़ी-बड़ी आँखें, माथे पर बड़ा लाल टीका, नयनों से जैसे रस बरसता हो। साँवली होने पर भी अत्यधिक आकर्षक। जगदीश को देखते ही बोली, "आइए, कवि जी।"

यह संबोधन जगदीश को प्रिय लगा। पूछा, "मेरा यह नाम आपको किसने बतलाया।"

"क्यों ? सीमा ने। क्या वह इस नाम से आपको नहीं पुकारती ? कल रात से ही उसनें आपकी इतनी प्रशंसा की है कि सोचती थी सब काम छोड़कर पहले आपको ही देख आऊँ। सुना है, आप चाय बहुत पीते हैं। चाय मैं भी बहुत पीती हूँ। सीमा को तो बस सा रे ग म से मतलब। जीवन के सुख की ओर उसका ध्यान ही नहीं है। न खाने का शौक, न पहनने का। चाय भी क्या पिलाती होगी। लेकिन अब मैं आ गई हूँ तो चाय की तकलीफ़ तो आपको नहीं ही होगी।"

"चार-छह बार कहो, तब कहीं जाकर एक प्याला मिलता है। सो कभी पत्तियाँ कम हैं, तो कभी ज़्यादा। रंग ठीक से आ ही नहीं पाता।

कभी दूध अधिक है, तो कभी चीनी कम। चाय क्या बनाती हैं, झंझट टालती हैं।"

सीमा कमरे से निकलकर आई और बरामदे के कोने में खड़ी होकर मुस्कराने लगी।

कालिंदी ने चौके से ही पुकार कर कहा, "क्यों री सीमा। तू इतनी बड़ी हुई और तुझे अभी चाय तक बनानी नहीं आती। क्यों यह सब घोल कर कवि जी को देती है ? ट्रे में क्यों नहीं देती।

"पिता जी ऐसे ही पीते हैं दीदी। मैं क्या करूँ ?"

"तो तू इन्हें अलग से दूध-चीनी दिया कर ? ये बना लिया करेंगे। असली चाय पीने वाले को दूसरे के हाथ की बनी चाय कभी अच्छी लग ही नहीं सकती।"

"दस-बारह प्याले पीते हैं दीदी। इतनी दूध-चीनी कहाँ से आयेगी ?"

कालिंदी ने वहीं से झिड़का, "तुझसे तो बात भी नहीं करनी आती सीमा। अब तू बड़ी हुई। कुछ तो शिष्टाचार तुझे सीखना चाहिए।" फिर मुड़कर जगदीश से बोली, "मुझे भय है, यह कुछ खिलाती-पिलाती भी नहीं होगी ?"

"एकदम सूखी चाय रख देती हैं। पीना है पियो। नहीं पीना है, अपने घर जाओ।"

"सीमा ! यह मैं क्या सुन रही हूँ ? जब मैं थी तो हमारा घर अतिथियों के लिए कैसे आकर्षण का विषय था और मेरे पीछे इसे तूने ऐसा कर दिया !"

"मैं क्या करूँ दीदी, पिता जी तो कुछ सुनते ही नहीं और तुम्हारी तरह मैं बाहर निकलती नहीं। जब तक पिता जी कुछ लाकर नहीं रखेंगे, मैं कहाँ से सामने रखूँगी। पिता जी को तो बस शतरंज...शतरंज। आजकल न जाने क्या सूझा है कि एक उपन्यास लिख रहे हैं। अब किसी

दिन इनसे कह दिया कि करो हिन्दी में अनुवाद, तो पता चलेगा। सब चाय पीना भूल जायँगे।"

"तो नौकरानी को तो बाज़ार भेज सकती थी?"

"वह ठीक चीज़ नहीं लाती। बहुत बुड्ढी हो गई है।"

"तो क्या घर में कुछ बनाकर नहीं खिला सकती थी?"

"बनाएँ तो तब, जब कुछ आता हो।" जगदीश ने मुस्कराकर कहा और सीमा की ओर देखा।

"यही तो दुःख की बात है। जब मैं थी, तब तो कुछ सिखाती भी रहती थी। अब मेरे पीछे फिर सब भूल गई होगी। इसे फिर दोबारा सिखाना पड़ेगा।" इतना कहकर कालिंदी ने कढ़ाई उतारी और एक प्लेट में सब्ज़ी के साथ पूड़ियाँ तथा चाय लाकर जगदीश के सामने रख दीं।

जगदीश इस तरह खाने लगा जैसे कालिंदी से उसका बहुत दिन का परिचय हो और सीमा को जानता ही न हो।

"आप भी आइए न।" जगदीश ने कालिंदी से आग्रह किया। कालिंदी चौके का काम छोड़कर पास आ बैठी। सीमा अपने पूजा-गृह में चली गई। जगदीश की आँखें उसे बराबर खोजती रहीं; पर वह पूरे समय दिखाई नहीं दी।

थोड़ी देर में जब कालिंदी अपनी लड़की को नहलाने चली गई और जगदीश जाने लगा, तो सीमा ज़ीने के पास मिली। वह एकदम चुप खड़ी थी।

"आज से मेरे हाथ की चाय बंद।"

"क्यों?"

"मुझसे चाय बनानी जो नहीं आती।"

"तो सच बात में बुरे मानने की क्या बात है?"

सीमा ने जैसे-तैसे अपनी मुस्कराहट रोकी। बोली, "और आज से मेरा हँसना बंद।"

"कब तक ?"

"हो सकता है, सदा के लिए।"

"फिर भी कुछ अवधि निश्चित कर दें तो अच्छी बात है।"

"जब तक दीदी यहाँ हैं।"

"कब तक रहेंगी ?"

"क्या कहा जा सकता है। या तो आती नहीं हैं; आती हैं तो फिर कठिनाई से जाती हैं।"

"हँसना ही बंद कि मुस्कराना भी ?"

"आप बात क्यों नहीं समझते। यह भी कोई हँसी की बात है ?"

"बात मैं बहुत अच्छी तरह समझता हूँ। मेरी प्रशंसा करके आपने अच्छा काम नहीं किया। अब मेरे सिर पड़ेगी तो पता चलेगा।"

"आपको ऐसा डर है ?"

"देखिए क्या हो !"

"तो आपके मन में भी कहीं दुर्बलता है ?"

"और आपके मन में ईर्ष्या।"

"छिः कैसी बातें करते हैं। मुझे अपनी बहन से ईर्ष्या होगी ?"

"बहिनो में ही अधिक ईर्ष्या होती है।" इतना कहकर जगदीश धीरे-धीरे ज़ीने की सीढ़ियाँ उतरने लगा। पैर आज कुछ जल्दी नहीं पड़ रहे थे। नीचे पहुँचकर उसने पीछे की ओर मुड़कर देखा। सीमा वहीं किवाड़ से लगी चुप खड़ी थी।

२५

जाड़ों के दिन थे। जगदीश ने अपना अध्ययन प्रारम्भ कर दिया था। मिलता-जुलता वह अब भी सबसे था; पर आना-जाना कुछ कम हो

गया था। कालिंदी के साथ उसका परिचय इस बीच घनिष्ठता में बदल गया था। यह घनिष्ठता कालिंदी की ओर से ही आई थी। पूजा के अवसर पर उसके पति शंकर मुखर्जी कानपुर आये थे और तीन-चार दिन रहकर चले गए थे। वे इलाहाबाद के किसी साधारण से स्कूल में अध्यापक थे। स्वभाव से कुछ विनोदी थे। चलते-चलते जगदीश को इलाहाबाद आने का आमंत्रण दे गए। अध्यापकी से जो समय उनके पास बचता उसमें वे प्रकाशकों के लिए कवर-डिज़ाइन बनाते और इससे थोड़ी-सी अतिरिक्त आय उन्हें हो जाती थी। वे अपने को चित्रकार कहते थे। इलाहाबाद में उन्होंने एक संस्था खोल रखी थी जिसके वे सेक्रेट्री थे। बैठकें प्रायः उन्हीं के घर पर हुआ करतीं। जगदीश चित्रकला के सम्बन्ध में उनसे बहुत-सी बातें पूछता रहा।

धीरे-धीरे पतझर लग गया। वृक्षों की डालियाँ नंगी हो रही थीं। सूर्योदय के पूर्व से ही कुहरा छाया रहता। जगदीश जब प्रातःकाल टहलने निकलता तो सड़क के दोनों ओर उसे पीले पत्तों का ढेर मिलता। इनमें से कुछ सूखे पत्ते इधर-उधर उड़कर सड़क के बीच में आ जाते। कोई-कोई तो उसके पैरों से लिपट जाता। वर्षा की भाँति पतझर भी उसे अच्छा लगता था। न जाने क्यों एक प्रकार की उदासी और बेचैनी उसे घेरे रहती!

कालिंदी ने अपने सुख-दुःख की बहुत-सी बातें जगदीश को धीरे-धीरे बतलायीं। उसने बतलाया कि वह अपने गृहस्थ-जीवन में बहुत सुखी है; लेकिन असंतुष्ट भी कम नहीं। शंकर मुखर्जी रसिक स्वभाव के व्यक्ति हैं। जगदीश को यह जानकर दुःख हुआ कि वे शराब पीते हैं और कभी-कभी कालिंदी को मार बैठते हैं। कालिंदी जैसी लड़की पर कोई हाथ उठा सकता था, इस बात की वह कल्पना ही नहीं कर सकता था। सबसे अधिक चिंता कालिंदी को सीमा के विवाह की थी। उसने इलाहाबाद में दो-एक लड़के देखे थे; पर पिता जी को पसंद नहीं आये। थोड़े दिनों के लिए

एक बार वह सीमा को भी ले गयी थी। लेकिन थोड़े दिनों बाद ही सीमा ने पत्र लिखकर अपने पिता को बुला लिया और उनके साथ वापस चली आई। कालिंदी ने बुलाया तो इसलिए था कि वह मुखर्जी से थोड़ा पढ़ ले, कालिंदी से थोड़ा घर गृहस्थी का काम सीख ले। सीमा के विदा होते समय जब कालिंदी ने उससे पूछा कि उसने छिपाकर पिता जी को पत्र क्यों लिखा तो सीमा ने कालिंदी के कंधे पर सिर रखकर कहा : दीदी, मुझे जीजा जी से डर लगता है। कालिंदी मन में बहुत संकुचित हुई और उसने सीमा को चुप-से विदा कर दिया।

जगदीश को पता तो चल गया था कि शंकर की दृष्टि सीमा पर है। उसके सामने ही उसने कई बार सीमा से मजाक किया था। सीमा ने अत्यन्त शालीनता के साथ जीजा जी को उत्तर दिए थे। जगदीश से भी हँसकर मि० मुखर्जी ने कहा था कि साली तो आधी पत्नी होती है। यहाँ तक ठीक था; पर कोई पत्नी अपने पति के कुकर्मों की निन्दा किसी बाहरी व्यक्ति से कर सकती है, यह वह बहुत कम सोच पाता था। कालिंदी ने जिस ढंग से चर्चा की उससे लगा कि वह बहुत दुःखी है और जगदीश को सचमुच उससे सहानुभूति हुई।

एक दिन बच्ची के जन्म की कहानी कालिंदी ने जगदीश को सुनाई। जन्म होने से पहले शंकर बहुत लापरवाह हो गया था। वह बहुत देर से लौटता और किसी न किसी बहाने जल्दी सो जाता। दिन निकलते ही वह फिर बाहर निकल जाता—जैसे वह उससे बचना चाहता हो। घर में जितनी देर रहता, हर समय अपने को अत्यन्त व्यस्त प्रदर्शित करता। आज इससे मिलना है, कल उससे, इसी बहाने वह घर में न रहता। समय जब बिल्कुल निकट आ गया तो कालिंदी को बहुत पीड़ा होने लगी। उसने कई बार अनुनय की कि वह किसी डाक्टरनी को उसे दिखा दे; पर शंकर टालमटोल करता रहा। किसी-किसी रात को वह सिर या पेट पर हाथ रखे लौटता जिसका आशय यह था कि वह अस्वस्थ है। बेचारी

कालिंदी अपना दुःख भूलकर उसके पास आ बैठती। बच्चे के जन्म के समय शंकर कालिंदी को अस्पताल भेजना नहीं चाहता था। इस सम्बन्ध में उसने उसे काफ़ी डरा रखा था। नर्सों की लापरवाही और मा तथा बच्चों की मृत्यु के कुछ मनगढ़ंत क़िस्से सुनाकर उसने कालिंदी को उस ओर से पूरा विरक्त कर दिया था। लेकिन सबसे आश्चर्यजनक बात यह हुई कि जब कालिंदी के दर्द उठा, तब बड़ी तत्परता से शंकर दाई खोजने गया और बहुत देर बाद लौटकर उसने सूचना दी कि वह तो किसी दूसरे स्थान पर बच्चे का जन्म कराने चली गई। क्रोध का अभिनय करते हुए वह बोला : शायद वह सोचती होगी, उस स्थान पर उसे कुछ अधिक रुपये मिल जायँगे। कालिंदी ने उस समय विधवा ननद के द्वारा अपनी पड़ोसिन को बुला लिया था जिसने अपने देवर को भेजकर एक साधारण-सी दाई को बुला लिया। कालिंदी के जीवन की रक्षा उस रात भगवान ने ही की। यह सब सुनकर जगदीश के मन में यह बात बैठ गई कि कालिंदी भीतर से बहुत दुःखी है और उसका पति शराबी, चरित्रहीन, लापरवाह और क्रूर है और यह तो कालिंदी का बड़प्पन है कि वह उससे अपने संबन्ध का निर्वाह किए जा रही है।

यह जीवन की कितनी बड़ी विवशता है कि जिसके पास खड़े होने को मन नहीं करता, उससे हँसकर हमें बातें करनी पड़ती हैं। वैवाहिक जीवन का सुख क्या यही है? क्या घर-घर की यही दशा है? नहीं, जगदीश छोटी-सी बात को बहुत बढ़ाकर देख रहा है। लेकिन यह क्या बात है कि पहले दिन से ही कालिंदी ने जगदीश से इस प्रकार व्यवहार किया है जैसे वह उसका अपना कोई हो। खटकने वाली बात यह थी कि वह सीमा को उससे दूर रखती थी। तब क्या यह मात्र अभिनय है? या ईर्ष्या है? क्या विवाहित स्त्रियाँ प्रेम करती हैं?

कुछ भी हो, कालिंदी के स्वभाव का खुलापन उसे अच्छा लगा। यह ठीक था कि बानू, सीमा, प्रीति और नयन की तुलना में वह कुछ नहीं थी;

पर उसके हँसमुखपन के कारण दोनों के बीच का भय जाता रहा। उसे लगा कि वह उससे कुछ भी कह सकता था और उसे यह भी विश्वास था कि कालिंदी बुरा नहीं मानेगी। यह स्पष्ट होते भी उसे देर न लगी कि उसमे इस प्रकार की सैक्स-अपील है जो बहुत-सी सुन्दर नारियों में भी नहीं होती।

सीमा रेडियो के कार्यक्रम के लिए अपने पिता के साथ देहली चली गई थी। चौथे दिन उसके लौटने की सम्भावना थी। दो-दिन तो कार्यक्रम ही था। चलते समय वह कह गई थी कि जैसे मेरे सामने आते रहे हैं, वैसे ही मेरे पीछे भी आते रहें। ऐसा न हो कि दीदी अकारण किसी बात का सन्देह करे। जगदीश का आने को बहुत मन नहीं था। सीमा के बिना उसे घर न जाने कैसा लगता था; पर कालिंदी के व्यवहार ने उसकी झिझक को एकदम दूर कर दिया।

सदा की भाँति जगदीश जब भट्टाचार्य के यहाँ पहुँचा तो कालिंदी ने उसका मुस्कराकर स्वागत किया। उस समय वह स्नान करके लौटी ही थी। पानी की बूंदें उसके लम्बे केशों से चू रही थीं। जो साड़ी उसने पहन रखी थी वह काफ़ी पतली थी और चोली उसने अभी पहनी नहीं थी। जगदीश के सामने से वह भीतर के कमरे में चली गई और थोड़ी देर में लौट आई। चाय के लिए कैटली में पानी चढ़ाकर वह उसके पास बैठ गई।

"सीमा के बिना घर कितना सूना लगता है? कुछ और तरह का लगता है न?"

"आप शायद उन्हें बहुत प्यार करती हैं। मुझे तो कोई अन्तर नहीं मालूम होता।"

कालिंदी ने अपने बालों को झटका देते हुए जगदीश की ओर इस तरह देखा जैसे वह यह जानना चाहती हो कि यह बात सच है अथवा झूठ।

उसके ऊपर क्या प्रतिक्रिया हुई यह तो वही जाने, पर बात उसे अच्छी लगी।

"मि० मुखर्जी अब कब आयेंगे?"

"कभी भी आ सकते हैं।"

"आप उन्हें बदल नहीं सकतीं?"

"बदल सकती थी; लेकिन मैं प्रयत्न नहीं करती।"

"क्यों?"

"भीतर कुछ था जो टूट गया है; अतः बाहर सब व्यर्थ हो गया है। अब मैं उनकी चिंता नहीं करती।"

"लेकिन बाहर का कोई आदमी देखकर तो इस बात का पता नहीं लगा सकता कि आपकी ओर से भीतर का सम्बन्ध टूट गया है।"

"मेरी ओर से व्यवहार ठीक है—इसी से। अपने दुःख का ढिंढोरा पीटने से क्या फ़ायदा है?"

"लेकिन जब आपका मन उनके साथ रहने को नहीं करता, तो क्यों रहती हैं?"

"पहली बात तो संस्कारों की है। दुर्व्यवहार करने पर भी वे मेरे पति हैं, यह बात मैं भुला नहीं पाती। मैं भुला भी दूँ तो संसार नहीं भूलने देगा। दूसरी बात है आर्थिक परतन्त्रता की। मैं कहाँ जाऊँ? उनके साथ हूँ तो चार आदमी मेरा आदर करते हैं। दूर होने पर कौन कह सकता है, मुझे कितने संकटों का सामना करना पड़ेगा। उसके लिए मैं धीरे-धीरे प्रयत्न कर रही हूँ। मैं संकट उठा भी लूँ, तो यह बच्ची है। इसे तो संसार का कोई ज्ञान नहीं है। मुझे वे न भी मानते हों, पर इसे तो प्यार करते ही हैं।...लेकिन मैंने उन्हें दण्ड न दिया हो, ऐसी बात नही है..."

"क्या दंड दिया है..."

"वे कहीं भी घूमें; लेकिन मेरे बिना भी रह नहीं सकते।" इतना

कहकर कालिंदी चाय बनाने चली गई और ट्रे लेकर जल्दी ही लौट आई।

जगदीश का साहस कुछ बढ़ा। उसने पूछा, "यह बच्ची तो पाँच साल की होगी?"

"हाँ।"

"इसके बाद आपके दूसरा बच्चा नहीं हुआ?"

"नहीं। यह तो अपने हाथ की बात है।"

"यह आपके हाथ में है? ईश्वरीय-विधान में मनुष्य हस्तक्षेप कर सकता है?"

"विज्ञान के इस विकसित युग में ईश्वरीय-विधान उलट गया है।" ऐसा कहकर कालिंदी मुस्कराने लगी। बोली, "चाय पीजिए।"

जगदीश चाय पीने लगा।

"संध्या समय तो आप आयेंगे न?"

"मैं एक स्थान पर ट्यूशन पढ़ाने जाता हूँ। वहाँ से लौटने पर आ जाऊँगा।"

"खाना आप यहीं खाइए।"

"खाना मैं खाकर आऊँगा। आप चिन्ता न करें।"

"अकेले खाना मुझे वैसे भी अच्छा नहीं लगेगा। कुछ देर से खा लेंगे।"

जगदीश ने तर्क करना ठीक नहीं समझा। बानू के यहाँ से वह जल्दी ही लौट आया। उसकी दृष्टि से यह बात छिपी न रही कि कालिंदी ने आज विशेष चिन्ता के साथ शृंगार किया है। उसके वस्त्रों से इत्र की भीनी गंध आ रही थी। खाना खाकर जब वह चलने लगा तो कालिंदी ने कहा, "दस बजे सीमा का तीसरा प्रोग्राम है। उसे नहीं सुनेंगे क्या?" विवश होकर उसे रुकना पड़ा। इसके उपरान्त वह घर जाकर सो गया।

दूसरे दिन जब वह संध्या समय पहुँचा तो नौकरानी ने बताया वे

ऊपर हैं। ऊपर वह केवल एक बार सीमा के साथ गया था और घूमकर लौट आया था। वहाँ पहुँचकर उसने देखा छत पर एक नयी रेशमी रज़ाई बिछी हुई है जिसमें आधे डोरे पड़ चुके हैं, आधे शेष है। पास में ही शीतलपाटी पर कालिंदी सो रही थी। सिर उसका रज़ाई पर था। शायद डोरे डालते-डालते सो गई थी। जहाँ उसका हाथ पड़ा था, उसके पास ही गड़ी हुई सुई खड़ी थी। जगदीश को लगा उसका हाथ असावधानी में कहीं सुई पर न पड़ जाय। सुई उसने धीरे से खींचकर अलग कर दी। ऐसा करते समय कालिंदी के मुख पर उसकी दृष्टि पड़ी। साड़ी वक्ष से कुछ खिसक गई थी और अचानक सो जाने के कारण नीचे पिंडलियों से ऊपर पैर का भाग भी कुछ खुला हुआ था। कपड़ों से फैलने वाली इत्र की गन्ध ने एक क्षण के लिए उसे बाँध-सा दिया। रेशमी चोली का एक बटन साँस लेने में खुल गया था जिससे वक्ष-प्रदेश का सीमांत झलकने लगा था। वह स्थान कालिंदी के साँवले वर्ण की तुलना में काफ़ी उजला था। सम्भवतः ढके रहने के कारण साँवलेपन का वहाँ प्रवेश नहीं हो पाया था।

जगदीश चुप चरणों से नीचे लौट आया और एक मूढ़े पर बैठ कर प्रतीक्षा करने लगा। कालिंदी जब नहीं जगी तो वह ज़ीने से उतर कर बानू को पढ़ाने चला गया। एक बार उसने सोचा नौकरानी से कहकर वह कालिंदी को जगवा दे। लेकिन अगर वह उसी दशा में हुई तो ? मैंने उसे देखा है। नौकरानी देखेगी तो क्या सोचेगी। अतः बुड्ढी से यह कहकर कि मैं फिर आऊँगा, वह चला गया।

दोबारा जब वह लौटा तो कालिंदी ऊपर की छत के उस खुले कोने पर जहाँ ज़ीने का अन्त था, बैठी थी। जगदीश वहीं जाकर बैठ गया। रज़ाई वहीं पड़ी थी।

"आप संध्या समय आए थे ?"

"हाँ।"

"फिर चले क्यों गए ?" कालिंदी ने बहुत भोलेपन के स.

"मुझे तो कुछ पता नहीं था। नौकरानी के कहने पर मैं ऊ. आया। देखा तो आप सो रही हैं।"

"हाँ मुझे झपकी आ गई थी।"

"नहीं, गहरी नींद में थीं।"

"तो मुझे झकझोर कर उठा क्यों नहीं दिया ?"

"क्या मुझे आपको छू लेना चाहिए ?"

"क्यों, छूने में क्या हानि है ?"

"आप किसी की पत्नी जो हैं।"

"उससे क्या होता है ?"

"कुछ होता ही नही ?"

"कुछ भी नहीं।"

"आपको बुरा नहीं लगता ?"

"अगर मैं कहूँ कि मुझे अच्छा लगता तो !"

"अच्छा, झगड़ा न कीजिए, नीचे चलकर मुझे चाय पिलाइए।"

कालिंदी जैसे प्रसन्न हो गई। बोली, "आप यहीं बैठिए। मैं चाय लाती हूँ।"

"चाय फिर पिऊँगा। पहले यह बताइए कि विवाह क्या बहुत आवश्यक वस्तु है ?"

"क्यों पूछ रहे हैं यह ?"

"बचपन से जीवन के रहस्य को समझने की जिज्ञासा मन में कहीं छिपी है; इसी से आँखों के सामने जो आ जाता है, उसे जानने की आकांक्षा से प्रेरित होकर जिस-तिस से उल्टे-सीधे प्रश्न कर बैठता हूँ..."

"हाँ, एक प्रकार से आवश्यक ही है। समाज में व्यवस्था बनाने रखने के लिए विवाह आवश्यक है। कुछ ऐसे भी व्यक्ति हो सकते हैं जो इसमें

विश्वास न करते हों, जो इसके विरुद्ध विद्रोह करते हैं; लेकिन वे अपवाद-स्वरूप हैं।"

"कोई विशेष सुख है इसमें ?"

"कुछ तो होता ही होगा।"

"मुख्य सुख किस बात पर निर्भर करता है ?"

"मुझसे क्यों पूछते हैं ? समय आने पर पता चल ही जायगा।"

"नहीं, आप बताइए।"

"सच बतलाऊँ ?"

"सच जानने के लिए ही मैंने पूछा है। यों मैं पुस्तकों से तो जान ही सकता हूँ।"

"विवाह का सबसे बड़ा सुख 'फ़िज़ीकल ऐडजस्टमैंट' पर निर्भर करता है।"

"मेरी समझ में तो कुछ भी नहीं आया।"

"क्यों बनते हैं, कवि जी ?"

"सच आपकी सौगन्ध, मैं कुछ नहीं समझा। समझा होता तो फिर पूछता ही क्यों ?"

"मेरे सिर पर हाथ रखिए।"

"मेरी बात का आपको विश्वास नहीं ?"

"नहीं, मेरे सिर पर हाथ रखकर कहिए कि इस बात का अर्थ आप नहीं जानते।" इतना कहकर कालिंदी ने जगदीश का हाथ पकड़कर अपने सिर की ओर खींचा। जगदीश ने झिझकते हुए हाथ उसके सिर पर रख दिया।

"इमोशनल कम्पैटीबिलिटी' समझते हैं ?"

"भाव की अनुकूलता से तात्पर्य है न आपका ? दो व्यक्ति एक-दूसरे के प्रति ऐसा व्यवहार करें कि वह दोनों की भावना के अधिक से अधिक अनुकूल हो।"

"इससे क्या होगा ?"

"उन्हें अधिक से अधिक सुख मिलेगा।"

"मिलेगा न ?"

"हाँ।"

"इसी बात को 'फ़िज़ीकल प्लेन' पर समझने का प्रयत्न कीजिए।"

"नहीं मेरी समझ में नहीं आता।"

"अनुकूलता अँग्रेजी शब्द का ठीक पर्यायवाची नहीं है।"

"साम्य ?"

"नहीं।"

"तादात्म्य।"

"नहीं। इन दोनों शब्दों से तो अनुकूलता ही अधिक व्यंजक है। अच्छा, मैं फ़िज़ीकल के स्थान पर 'बौडीली एडजस्टमेंट' कहूँ तो ?"

"बात संभवतः कुछ व्यवहार से सम्बन्ध रखती है ?"

"यही तो कठिनाई है ? कालिंदी ने रुककर पूछा," आपने कभी किसी को प्यार किया है ?"

"प्यार माने ?"

"अब प्यार के माने भी आप नहीं जानते ?"

"तब नहीं किया।"

"किसी लड़की ने आपको कभी प्यार किया है ?"

"कह नहीं सकता। किया हो तो मुझे पता नहीं।"

"जैसे मैं बात कर रही हूँ, इस तरह कभी किसी ने बात की हैं ?"

"नहीं। कभी नहीं।"

"आपने सुना होगा बहुत से पुरुष अपनी पत्नियों से अच्छा व्यवहार नहीं करते, यहाँ तक कि उन्हें मारते-पीटते भी हैं। बहुत-सी स्त्रियाँ स्वभाव की बड़ी कर्कशा या अभिमानिनी होती हैं। फिर भी वे एक-दूसरे के प्रति अत्यधिक आकर्षित रहते हैं। इस पर आपने कभी विचार किया है ?"

"नहीं, मुझे आश्चर्य हुआ है।"

"आप बात को कितनी दूर तक छिपा सकते हैं?"

"बहुत दूर तक?"

"यह भेद आप मुझसे जानना चाहते हैं?"

"अगर आप बता सकें तो, हाँ।"

"इस सम्बन्ध में कभी किसी को कुछ पता नहीं चलेगा?"

"कभी नहीं।"

"अच्छा, आप कल आइए।"

दूसरे दिन जगदीश चाय के समय ही पहुँच गया था। कालिंदा स्नान करके लौटी थी। वह एकदम स्वच्छंदता से उसके सामने से निकल गई। शरीर उसका बहुत ही सुगठित था। कमरे में से लौटी तो कंधे पर एक शाला पड़ा था। सर्दी आज कुछ बढ़ गई थी। न जाने कैसी दृष्टि से उसने जगदीश को कई बार देखा। आज न जाने कैसी मनोवृत्ति ने उसको आ घेरा था कि वह स्वयं डूबी-डूबी-सी लगती थी। दोपहर तक वह चुप ही रही। बातें प्रायः जगदीश को ही करनी पड़ीं।

"संध्या को किस समम आयेंगे?"

"जल्दी ही आऊँगा।"

"नहीं, देर से आइए। आज मैं आपको जाने नहीं दूँगी। कल तो फिर सीमा आ ही जायगी। आजकल में मुखर्जी भी आने वाले हैं। पत्र आया है।"

"क्या आपको ले जायँगे?"

"जाना न जाना मेरे मन पर निर्भर करता है। जिस काम के लिए मैं आई हूँ, वह अभी पूरा नहीं हुआ। कब होगा, कहा नहीं जा सकता। लेकिन वह बात छोड़िये। मैं बुरा कर रही हूँ या भला, मैं नहीं जानती। फिर भी आप पर विश्वास करने को मन करता है। आप मुझसे अवस्था में छोटे हैं, लेकिन उससे क्या होता है। सुख के पल, जिसे वास्तविक सुख

कह सकें, मेरे जीवन में बहुत कम आये हैं। आज मैं सुखी हूँ और सुखी रहना चाहती हूँ।"

"रुक तो मैं नहीं सकूँगा। लौटकर अपने स्थान पर ही जाऊँगा। यों देर की मुझे चिंता नहीं है।"

दिन में उसने कई बार सोचा : ऐसी क्या बात है जिसे कालिंदी रहस्य से मंडित कर रही है। क्यों नहीं वह बात स्पष्ट शब्दों में समझायी जा सकती। संभवतः स्त्री और पुरुष के बीच का कोई गोपनीय भेद है जिसे विशेष स्थिति में ही समझाया जा सकता है!

क्या मुझे कालिंदी के पास जाना चाहिए? क्यों नहीं जाना चाहिए? मैं किसके निकट उत्तरदायी हूँ? किसी के निकट नहीं। मुझे कोई 'पज़ेस' नहीं करता। कालिंदी कहती है—वह अपने पति को प्यार नहीं करती। अपने उत्तरदायित्व को वह जाने!

लेकिन मैं असाधारण कल्पनाएँ करता क्यों हूँ? यह ठीक है कि कालिंदी ने कुछ खुलकर मुझसे बातचीत की हैं। वह विवाहित है, संभवतः इसीलिए ऐसी बातें कह पायी है। शिक्षित है। थोड़ी संस्कारों से मुक्त है। थोड़ी हताश है। संभवतः थोड़ी आकर्षित भी है। ऐसी दशा में असाधारण कल्पनाएँ करने का मुझे क्या अधिकार है?

क्या वह बुरी है? क्या मैं बुरा हूँ? किसे कहते हैं बुराई? जीवन के सम्बन्ध में बातें करके हम किसकी बुराई कर रहे हैं? मैं कुछ जानना चाहता हूँ। वह कुछ बताना चाहती है। अपने मन से ही वह बताना चाहती है। यह बात मैं अपने किसी पुरुष मित्र से भी कर सकता था। पर नारी का भेद पुरुष कैसे बतायेगा?

तब मैं जाऊँ? या न जाऊँ?

कालिंदी के पास जब जगदीश पहुँचा, तब रात के दस बज चुके थे। जीना खुला हुआ था। सामने कमरे में प्रकाश नहीं था। लेकिन उसे यह समझने में देर नहीं लगी कि कालिंदी ऊपर है। छत पर एक मोटा गद्दा

बिछा था। उस पर बगुले के पंख जैसी श्वेत चादर। एक ओर तानपूरा रखा था। संभवतः कालिंदी कुछ गाती रही है। कालिंदी दो मुलायम तकिये लगाकर लेटी थी। जिस नयी रेशमी रज़ाई में उसने परसों डोरे डाले थे, वह उसके वक्ष तक खिंची हुई थी।

जगदीश ने सिरहाने खड़े होकर उसके मुख को देखा। वह नील कमल जैसा खिला हुआ था। तीखी हवा का एक झोंका पास से निकल गया।

"जग रही हैं कि सो रही हैं ?"

"कह नहीं सकती, जग तो नहीं ही रही हूँ। सोने को मन करता है; लेकिन कोई सुलाने वाला नहीं मिला।"

"नौकरानी कहाँ है ?"

"सो गई होगी। आपकी प्रतीक्षा करते-करते मैं तो थक गई।"

"दरवाजा तो खुला हुआ था।"

"हाँ मैंने जान-बूझ कर खोल रखा था, नहीं तो आप यहाँ तक आते कैसे ? आपने उसे बन्द कर दिया न ?"

"मैंने भी उसे खुला छोड़ दिया है।"

"तब बैठिए न। सोच क्या रहे हैं ?"

"कहाँ बैठूँ ?"

मेरे पास बैठिए।

जगदीश एक ओर खिसक कर बैठ गया। कालिंदी ने उसकी ओर सरक कर रज़ाई उसके पैरों पर डाल दी। कालिंदी के पैरों से बचने के लिए जगदीश ने हाथ से स्थान टटोला। हाथ कालिंदी की कोमल चिकनी भरी हुई जाँघ पर जा पड़ा। वह भीतर से नंगी थी। जगदीश का सारा शरीर काँप कर रह गया।

कालिंदी ने उसके दोनों हाथ पकड़कर शरारतभरी वाणी में हँसते हुए कहा, "कुछ भी जानने से पहले वचन दो कि तुम मुझे कभी भूलोगे नहीं।"

जगदीश ने अपने हाथ सहसा धीरे से अलग कर लिए। बोला, "नहीं ऐसा वचन मैं तुम्हें नहीं दे सकता। ऐसा वचन मैं किसी को भी नहीं दे सकता। ऐसा वचन कोई भी किसी को नहीं दे सकता। यदि देता है तो तो वह झूठ बोलता है। मैं ईमानदार आदमी हूँ। झूठ बोलने का मुझे अभ्यास नहीं है। दोनों को ही सुख मिलेगा, इसी से मैं उस प्रस्ताव पर सहमत हो गया था। लेकिन इतना बड़ा मूल्य मैं इस सहज सुख के लिए चुकाने को तैयार नहीं। इसका मूल्य चुकाते ही इसका आनन्द नष्ट हो जायगा। ऐसी दशा में या तो तुमने मुझे या फिर मैने तुम्हें ठीक से नहीं समझा।"

वह उठ खड़ा हुआ और आवेश में नीचे उतर गया। आगे लैम्प-पोस्ट के आलोक में एक वृक्ष की नंगी डालियाँ उसे दिखाई दीं। थोड़ी देर में वह गंगा के किनारे जाकर जल्दी-जल्दी घूमने लगा। अगर प्रकृति, नारी और विवाह का यही रहस्य है, तो मैं उसे नहीं जानना चाहता। सत्य के मंदिर का पथ क्या नग्नता के भीतर से जाता है? कालिंदी के प्रति उसका मन विरक्ति से भर उठा।

तीसरे दिन जब वह सीमा से मिलने गया तो उसे पूरा विश्वास था कि कालिंदी उसके सामने या तो पड़ेगी नहीं या उससे दृष्टि नहीं मिलायेगी। लेकिन उसने उसी उत्साह, उसी मंद मुस्कान के साथ कहा, "आइए, कवि जी।" जगदीश आश्चर्य-चकित रह गया। कालिंदी की ओर उसने कई बार देखा। उसके मुख को देखकर लगा जैसे उसके ऊपर कोई प्रभाव ही नहीं पड़ा है। जैसे नदी की धारा में ऊपर से आकर न जाने कितना जल बह जाता है; पर धारा ज्यों की त्यों दिखाई देती है; वैसी-ही कुछ-कुछ कालिंदी थी। जगदीश बहुत देर तक सीमा से उसके कार्य-क्रम के सम्बन्ध में बातचीत करता रहा। सीमा जब स्नान करने चली गई तो जगदीश ने कालिंदी से विदा माँगी। कालिंदी ज़ीने तक आई।

जगदीश ने सामान्य भाव से कहा, "नमस्ते।"

"नमस्ते मि० ईमानदार।" कालिंदी ने उत्तर दिया। जगदीश ने सीढ़ी पर पैर रखते हुए कहा, "नमस्ते गुरू जी।" और उतरकर चला गया।

भविष्य में भी यह मज़ाक बहुत दिनों तक चलता रहा। जब भी एकांत पाकर कालिंदी कभी उससे कहती, "कहिए मि० ईमानदार!" जगदीश बराबर उत्तर देता, "कहिए गुरू जी!" और दोनों मुस्करा उठते।

२६

प्रीति विचित्र उलझन में है। शरीर से सुन्दर और आकृति से आकर्षक होने के कारण वह पुरुषों की दृष्टि का केन्द्र रही है। जब वह छोटी थी और अपनी सहेलियों के साथ खेलती रहती थी, उस समय भी पड़ोस का एक सुन्दर लड़का उसके पास चुप खड़ा रहता था। वह झुँझलाकर उसे भगा देती थी; लेकिन फिर थोड़ी देर में उसी को ढूँढ़ने लगती थी और उससे साथ घूमने लगती थी। इस बच्चे के पिता का बहुत दिन हुए ट्रांसफ़र हो गया। पड़ोस के बँगले में कोई दूसरा किरायेदार आ गया। प्रीति बहुत दिन तक अकारण उदास रही और बिना जाने उन स्थानों पर चुप बैठी रहती थी, जहाँ वे दोनों खेला करते थे। धीरे-धीरे उसे लगा कि वह उसे भूल गयी है। वह और बड़ी हुई तो उसने देखा कि लड़के उसे घूरने लगे हैं। इन दृष्टियों को वह सहन नहीं कर पाती थी। कभी-कभी उसे बहुत झुँझलाहट भी होती थी। उसकी इच्छा होती थी कि वह किसी-किसी को फटकार दे। पर बात बढ़ने की सम्भावना थी; अतः वह चुप रह जाती थी। मन में वह उन्हें असभ्य, गँवार, बेहूदा समझती थी; लेकिन करती भी क्या! एक बार वह अपनी मा

के साथ किसी रिश्तेदार के घर शादी में गयी। वहाँ बाहर से अपनी मा के साथ तेरह-चौदह वर्ष का कोई लड़का आया था। वह पाजामा और मलमल के कुर्ते में दिन भर घूमता रहता। प्रीति उसे जानती नहीं थी; पर न जाने क्यों उसका मन उससे बातें करने को होता! वह कब उठता है, कब नहाने जाता है, कब खाना खाता है, कब बाहर निकल जाता है, कब लौट आता है, कहाँ सोता है, प्रीति ने सब बातों का पता लगा लिया था। वह स्वयं सौ बार उसे दिन में छिपकर देखती थी। विवाह से लौटने पर वह उसके लिए भी उदास रही। उस समय उसे पता चला कि लड़के ही लड़कियों को नहीं घूरते, लड़कियाँ भी उन्हें छिपकर देखना चाहती हैं। इसके उपरान्त उसका दृष्टिकोण काफ़ी उदार हो गया। तीखी निगाहों को तो वह अब भी सहन नहीं कर पाती थी, क्योंकि उनके माध्यम से जो वासना उड़ेली जाती थी, उससे उसे विरक्ति होती; पर यदि उसे पता चलता कि कोई उसे सुन्दर समझता है, तो वह बात को हँसकर टाल देती। किसी-किसी के मुख से अपनी प्रशंसा उसे अच्छी भी लगती और वह अपनी ओर से भी बातें करने लगती। लेकिन प्रोत्साहन देने पर लड़के तो उससे चिपटना ही चाहते; अतः वह कैसे ही अपना पीछा छुड़ाती। उसकी यह समझ में ही न आता कि इस प्रकार के पारस्परिक व्यवहार में रेखा कहाँ खींच देनी चाहिए। फिर वह कॉलेज गई। वहाँ उसने अपनी जैसी मानसिक उलझन वाली और लड़कियों को भी पाया। धीरे-धीरे जीवन का रहस्य उसे कुछ स्पष्ट हुआ।

प्रीति की मा दमयन्ती की गणना बहुत सुन्दर स्त्रियों में होती थी। शृङ्गार की ओर उसकी प्रारम्भ से ही रुचि थी। प्रीति जब अपनी मा को शृङ्गार करते देखती तो वह भी उसका अनुकरण करना चाहती; पर दमयंती थी कि उसे इन कामों से रोकती थी। 'छोटे बच्चे ऐसा नहीं करते' वह प्रायः कहा करती। प्रीति की यह समझ में ही न आता कि जिस काम को मा करती है, उसे वह क्यों नहीं कर सकती। उसके घर पर प्रायः

पार्टी होती या लोग खाने पर आते। कभी-कभी दमयन्ती अपने पति के साथ बाहर पार्टियों में भी जाती। प्रीति प्रायः साथ ही रहती। वह देखती कि उसकी मा पिता के परिचित लोगों से हँस-हँस कर बातें कर रही है और कभी कभी उनके मजाक का उत्तर भी दे देती है। लेकिन अगर प्रीति अपनी अवस्था के या अपने से बड़े किसी लड़के से देर तक बातें करती रहती, तो मा उसे किसी न किसी बहाने वहाँ से हटा देती। प्रीति को यह बात बहुत बुरी लगती।

एक बार वह अपने बँगले के बाहर खड़ी थी। उस समय उसकी अवस्था बारह-तेरस वर्ष की होगी। प्रीति के कपोल पर एक तिल था जो बहुत सुन्दर लगता था। इससे पहले इस तिल की ओर उसने कभी ध्यान नहीं दिया था। प्रीति न जाने किस मूड में थी कि कभी तो वह बँगले से दूर तक टहल आती और कभी सड़क पर या किसी वृत्त के नीचे सहसा खड़ी हो जाती। इसी समय दो आवारा लड़के उधर से निकले। प्रीति सामने से आ रही थी। एक ने उसके कपोल के तिल को देखा और तिल पर एक शेर पढ़ दिया। दूसरा उससे टकराते-टकराते बचा। प्रीति-भाग कर बँगले के भीतर आ गई। उन्हीं दिनों उसके यहाँ एक सज्जन ठहरने के लिए आए। गर्मी के दिन थे। सब लोग बाहर सोये हुए थे। रात कुछ अँधेरी थी। पहले डाक्टरनी, फिर डाक्टर साहब, फिर अतिथि और उसके उपरान्त प्रीति का पलंग था। मेहमान ने रात में करवट ली और उनका बॉया हाथ प्रीति के पलंग पर आ पड़ा। एकाध बार प्रीति छू भी गयी। पहले प्रीति ने समझा कि हाथ भूल से आ पड़ा है। फिर यह देखने के लिए कि सच बात क्या हैं, वह साँस रोके चुप पड़ी रही। उसने देखा कि उस आदमी का हाथ कुछ टटोल रहा है और उसके छोटे-छोटे उरोजों को छूना चाहता है। प्रीति को बहुत हँसी आई और उसने मन में कहा : बुड्ढे होने को आये। शर्म नहीं आती। गधा कहीं का! और फिर वह रात भर दूसरे कोने पर सोती रही। उस समय उसकी समझ

में आया कि क्यों ये महाशय दिन भर उसे किसी न किसी बहाने से छूते रहे। कभी कन्धे पर हाथ रख देते थे, कभी चोटी खींच लेते थे और कभी गाल पर टहोका मार देते थे। अब उसकी समझ में आया कि जब वह नहा रही थी, तो क्यों वे उसके नहाने से पहले ही अपने कपड़े लेकर आ गए थे और उसके निकलने पर उससे टकराते हुए उन्होने कहा था, "ओह! मुझे पता नहीं था भीतर तुम थीं।" उसकी इच्छा हुई कि इनकी हरकतों की चर्चा वह मा से कर दे; लेकिन उसे अनुमान नहीं था कि बात कहाँ से कहाँ जाकर पड़ेगी; अतः वह लहू का-सा घूँट पीकर रह गयी।

पढ़कर जब प्रीति लौटती थी तो बँगले में ममी, पापा या बंसी को आवाज़ देती हुई अथवा कुछ शोर मचाती या गुनगुनाती हुई प्रवेश करती थी। एक दिन कॉलेज से वह कुछ उदास लौटी। कॉलेज में कोई उत्सव था और छुट्टी जल्दी हो गई थी। आमंत्रित अतिथियो में, अपने पिता के साथ सत्रह-अठारह वर्ष का एक नवयुवक था जिसकी आकृति में अविनाश की झलक थी। अविनाश पड़ोसी के उस लड़के का नाम था जो अपने पिता के ट्रांसफ़र होने पर कहीं दूर चला गया था और फिर उसे देखने को नहीं मिला था। उसे लगा कि अविनाश ही बड़ा होकर लौट आया है। वह उसे बहुत देर तक देखती रही और जब घर लौटी तो बहुत उदास थी। वह अपनी मा के कमरे में घुसने ही वाली थी कि दरवाज़े के पास पर्दे के पीछे ठिठक कर खड़ी रह गई। उसकी मा उसके पिता के आलिंगन-पाश में थी और वे ज़ोर-ज़ोर से उसका चुम्बन ले रहे थे। उसके मुँह से एक दबी सी आवाज़ निकली, "हे ईश्वर!"

तो ऐसा था प्रीति का जीवन और कुछ ऐसे ही से थे उसके अनुभव और इन्हीं मधुर-कटु अनुभवों को लेकर उसका मन बना था और वह जानती नहीं थी कि उसका मन कैसा है और किस समय वह क्या कर बैठेगी! वह भी बहुत दिनों तक किसी सम्पर्क के लिए तरसती रही और उसे मनचाहा सम्पर्क नहीं मिला। मिले तो एक साथ तीन सम्पर्क। इनमें

से श्याममोहन उसका लाया हुआ था, अरविंद माथुर इसलिए आता था कि उसकी मा चाहती थी और जगदीश ने एक प्रकार से बलपूर्वक सम्पर्क स्थापित कर लिया था। पर क्या प्रीति सुखी थी? कुछ भी हो, लेकिन अभी वह तीनों में से किसी को छोड़ना नहीं चाहती थी।

लॉन में कुर्सियाँ पड़ी थीं। बंसी चाय रखकर चला गया था। डाक्टर अपनी कार में दूकान पर चले गए थे और उसकी मा भीतर लेटी हुई कोई उपन्यास पढ़ रही थी। यह पहला अवसर था जब अरविंद, श्याम मोहन और जगदीश एक साथ मिले थे। श्याममोहन तो अरविंद को पहले से ही जानता था। जगदीश का परिचय उससे आज करा दिया गया था। प्रीति कुछ उत्साह में थी और उसे इस बात की भीतर कहीं प्रसन्नता थी कि वह अपने तीन प्रशंसकों से—चाहे वे एक दूसरे से कितने ही भिन्न क्यों न हों—घिरी हुई बैठी थी।

चाय का प्याला उठाते हुए श्याममोहन ने कहा, "पता नहीं आज-कल क्या बात है कि किसी काम में मन नहीं लगता......" और उसने एक लंबी साँस फेंकी।

"कहीं से प्रेरणा ग्रहण कीजिए तो जी लग जायगा।" जगदीश ने उसे टोकते हुए कहा।

"जीवन की ऊब से बचने का आपको यही उपाय ठीक लगता है?" प्रीति ने पूछा।

"हाँ, मुझे तो यही लगता है। व्यक्ति को दो पल कहीं प्रेरणा के मिल जाते हैं, तो दो दिन तक वह उन पलों की मादकता में भूला रहता है; अतः ऐसा लगता है कि यथार्थ ही जीवन नहीं, स्वप्न भी जीवन है। यह सत्य है कि स्वप्न यथार्थ की सीमाओं से घिरा है और उससे उसका स्वरूप निर्धारित होता है; पर उसके भीतर रहकर उसके पार जाने की शक्ति उसे मिली है। मुझे तो मनुष्य के मन को बाँधने की शक्ति यथार्थ से अधिक स्वप्न में ही लगती है।" जगदीश ने उत्तर दिया।

"लेकिन स्वप्न के क्षणों को आप कितना बढ़ा सकते हैं ? क्या इनकी अवधि सचमुच बढ़ाई जा सकती है ? क्या ऐसा कर सकना प्राणी के हाथ में है ?" प्रीति ने फिर पूछा।

"कम से कम जो सामने आ गया है, जो हमें मिला है, उसे तो नहीं ही खोना चाहिए। सुख का महत्व समय की दीर्घता से नहीं, उसकी गहराई से मापना चाहिए।"

"यह तो कोरी भावना की बात हुई और जीवन भावना से संचालित नहीं होता। बिना यथार्थ को स्वीकार किए और बुद्धि के महत्व को माने हम एक पल भी आगे नहीं बढ़ सकते।" श्याममोहन ने आपत्ति की। प्रीति की ओर देखते हुए उसने पूछा, "आप क्या सोचती हैं प्रीति जी ?"

प्रीति ने कुछ सोचते हुए कहा, "भाव और बुद्धि में कौन अधिक महत्वपूर्ण है, कहा नहीं जा सकता। जीवन को संचालित करने के लिए संभवतः भाव की ही आवश्यकता है; पर भावना के पीछे बुद्धि का सहयोग यदि न हो, तो उसके असफल होने की संभावना खड़ी हो जाती है। कोरी भावना या फिर कोरी बुद्धि के प्रयोग प्राणी को कहीं का नहीं रहने देते। अतः बुद्धि से शासित भावना ही जीवन को ठीक गति दे सकती है, ऐसी मेरी व्यक्तिगत धारणा है।"

"आप क्या मानते हैं मि० अरविंद ?" चड्ढा ने पूछा।

"मैं तो और ही तरह से सोचता हूँ........" अरविंद ने धीरे से कहा।

"और तरह कैसे ?" प्रीति ने पूछा।

"मैं आपकी प्रेरणा, भावना या बुद्धि को इतना महत्व नहीं देता। अपने स्थान पर वे ठीक हैं। लेकिन मैं आस्था और कर्म में विश्वास करता हूँ। दुःखी प्रायः ऐसे लोग रहते हैं जिनके पास करने को कोई महत्वपूर्ण काम नहीं है। जो व्यक्ति काम नहीं करता, वह किसी दूसरे की नहीं, अपनी

ही हानि करता है। यह सोचकर कि काम न करने से सुख मिलेगा, मनुष्य का स्वभाव प्रायः काम से बचने का है। पर वास्तविक आनंद कर्म में निरंतर लीन रहने वाले प्राणियों को ही मिलता है। कर्म से जीवन में एक प्रकार की व्यवस्था आती है। मैं कम से कम अव्यवस्थित जीवन से चाहे उसमें कितना ही सुख दिखाई दे, व्यवस्थित जीवन को कहीं अच्छा समझता हूँ। केवल उस व्यवस्था में जड़ता नहीं आनी चाहिए। व्यवस्था के लिए पहली आवश्यकता है अनुशासन की। यह वृत्ति हमारे सारे व्यक्तित्व में समाहित होनी चाहिए। दूसरी आवश्यकता है चारों ओर फैली समस्याओं के प्रति एक स्वच्छ दृष्टिकोण की। तीसरी, उस दृष्टिकोण के अनुरूप निर्णयों को व्यावहारिक रूप देने की। चौथी और सबसे प्रमुख आवश्यकता है उस आस्था की जो जीवन को जीने योग्य बना सके।...शायद मैं आवश्यकता से अधिक बोल गया।" माथुर ने कहा...

"लेकिन बात कितनी अच्छी करते हैं।" प्रीति बोली।

यह बात चड्ढा को कुछ अच्छी नहीं लगी। उसने पूछा, "तो आप जीवन के सुख के लिए आस्था, कर्म, अनुशासन और व्यवस्था में ही विश्वास रखते हैं, प्रेम को नहीं मानते?"

"मानता हूँ। लेकिन मैं यह भी मानता हूँ कि कर्म के सौंदर्य के भीतर से ही प्रेम का प्रस्फुटन ठीक से हो सकता है। अकर्मण्य व्यक्ति का प्रेम प्रेम की संज्ञा में आता ही नहीं। वह तो आलस्य का विलास मात्र है। आपके रोमांटिक प्यार में मेरा कोई विश्वास नहीं है। इसे मैं शक्ति का अपव्यय समझता हूँ।"

"तो आप वैवाहिक प्रेम में विश्वास करते हैं?" जगदीश ने पूछा।

"जी हाँ। इससे बाहर मैं किसी प्रेम को नहीं मानता। अपने साथी को चुनने में हमें अत्यधिक सावधानी से काम लेना चाहिए और

इसके उपरान्त हमें उससे प्यार करना चाहिए। सुखी जीवन के लिए मैं आन्तरिक शान्ति की बहुत बड़ी आवश्यकता समझता हूँ। यह शान्ति हमें उसी समय मिल सकती है जब कहीं से विश्वास मिले। प्रेम में जब विश्वास आता है, तो हृदय में शान्ति आ जाती है। उस समय व्यक्ति बाहरी दौड़-धूप छोड़कर अपने मन की गहराई में आनंद की अनुभूति करता है। प्रेम में जब तक असंतोष बना रहे, तब तक उसे अधूरा ही समझना चाहिए। यह विश्वास, यह शान्ति, यह आनन्द केवल वैवाहिक जीवन में संभव है, रोमांटिक प्यार में नहीं।"

"फिर भी लोग वैवाहिक जीवन में सुखी नहीं हैं।" जगदीश ने टोका।

"मेरा अनुमान है कि विवाहित स्त्रियाँ अविवाहित लड़कियों से कहीं अधिक प्रेम करती हैं।" चड्ढा ने बात को बढ़ाते हुए अरविंद को चिढ़ाने का प्रयत्न किया।

"ऐसा आप किस आधार पर कह सकते हैं?" प्रीति ने पूछा।

"क्षमा कीजिए, मैं बिल्कुल भूल गया था कि आप बैठी हुई हैं।" चड्ढा बोला, "लेकिन वैवाहिक प्रथा में कहीं भारी दोष है, यह मुझे अनेक घरों को देखकर लगा है। जिन लोगों में प्रेम की चेतना है ही नहीं, या बिल्कुल मर गई है, उनकी बात तो मैं नहीं करता; लेकिन पत्नी पति की सभी प्रकार की सेवा करके भी यही चाहती है कि उसकी कोमल भावनाओं के निकास के लिए कोई और माध्यम होता और पति अपनी पत्नी की पूरी चिंता करते हुए भी यही चाहता है कि बच्चों-कच्चों से दूर कोई ऐसा स्थान होता जहाँ घड़ी दो घड़ी वह निश्चिन्त भाव से बिता सकता। कहीं-कहीं तो पति-पत्नी दोनों ही एक दूसरे की इस भावना को समझते हैं; लेकिन कुछ कर नहीं पाते।"

"यह तो अच्छी बात नहीं है।" प्रीति ने कहा।

चड्ढा बोला, "कौन कहता है कि है..."

"लेकिन क्या इसका कोई उपाय नहीं है?" प्रीति ने पूछा।

"है क्यों नहीं। जीवन की माँग का ध्यान रखते हुए दोनों ही एक-दूसरे को थोड़ी छूट दे सकें तो अच्छा हो।" जगदीश ने उत्तर दिया।

"यह तो ठीक नहीं है। वह छूट फिर बहुत दूर तक जा सकती है।" अरविंद माथुर ने टोका।

"मैं भी समझती हूँ कि छूट ठीक नहीं है।" प्रीति ने माथुर की बात का समर्थन किया।

प्रीत की बात से प्रोत्साहित होकर अरविंद ने उठते हुए कहा, "प्रीति, थोड़ा बाहर घूम आयें। तुम माता जी से पूछ लो।"

जगदीश और श्याममोहन दोनों उठकर चले आए। प्रीति अरविंद की कार में कहीं बाहर चली गयी। उस शाम प्रीति और अरविंद जितने प्रसन्न थे, श्याममोहन और जगदीश उतना ही मुँह लटकाये हुए थे।

२७

जगदीश जब अपने कमरे से निकलकर टहलने चला, तो बहुत प्रसन्न नहीं था। सूर्योदय होने से जो अंतःकरण में सहसा आनन्द का उदय होता है, प्रभातकालीन पवन के स्पर्श से जो अंग प्रत्यंग में रोमांच हो जाता है, पक्षियों के आकाश में उड़ने से जो कल्पना उड़ी-उड़ी फिरती है, फूलों के खिलने से मन की कली-कली जो सहसा खिल जाती है, उस प्रभाव का कहीं पता तक न था। पिछली बार प्रीति ने जो व्यवहार किया उससे उसे स्पष्ट हो गया था कि उसका विशेष झुकाव अरविंद माथुर की ओर

है। श्याममोहन चड्ढा भी वहाँ व्यर्थ का प्रयत्न कर रहा है। लड़कियाँ प्यार में सुरक्षा का ध्यान पहले रखती हैं। वे आकर्षित चाहे किसी के प्रति हो जायँ, पर प्रेम का अंत तक निर्वाह वे उसी के साथ करेंगी जिससे निर्वाह होने की सम्भावना हो। श्याममोहन और मुझसे तो प्रीति का विवाह हो नहीं सकता। हो सकता है केवल अरविंद से। तब अरविंद की ओर उसका झुकना स्वाभाविक ही है। संभव है चड्ढा उससे विवाह की बात भी सोचता हो; लेकिन डाक्टर शायद ही राजी हों। वे हो भी गये तो उसकी मा इस विवाह की स्वीकृति कभी भी नहीं दे सकती, विशेष रूप से जबकि अरविंद पर उसकी दृष्टि है और वह लड़का सभी दृष्टियों से प्रीति के उपयुक्त है और प्रीति ने अपनी पसंद एक प्रकार से प्रकट ही कर दी है।

तब लाइब्रेरी में उस दिन का वह कोमल व्यवहार क्या था? यह ठीक है कि प्रीति शर्त हार गयी थी और वह मेरी माँग थी और उसने उसे पूरा कर दिया। लेकिन उस पूर्ति में उदासीनता, छल या कृत्रिमता तो कहीं नहीं थी। वह पल मुझे अब भी स्मरण है। कैसे उसका रोम-रोम जग गया था और कितनी प्रसन्नता और उत्साह के साथ वह मेरे निकट आकर खड़ी हो गई थी—यह कहने के लिए कि जो तुम्हारा प्राप्य है उसे तुम लो। उसमें किसी प्रकार का संकोच न करो। तुम आकुल हो, तो मैं भी कम आकुल नहीं हूँ। यह भी तो संभव है कि सम्पर्क के कारण, पल भर के लिए यह दुर्बलता उसके मन में आ गई हो और भाव की गहराई से उसका कोई सम्बन्ध न हो। यदि ऐसा है तो मुझे यहाँ से हट जाना चाहिये। मैं चड्ढा को भी समझाऊँगा कि वह भी हट जाय। क्या फ़ायदा है किसी के मन के साथ खींचातानी करने से। क्या इस प्रकार कोई भी किसी के मन को जीत सकता है?

लेकिन मेरा मन जो नहीं मानता। आँखों के सामने रात-दिन प्रीति की आकृति घूमती रहती है। लाख हटाने पर भी नहीं हटती। तब क्या यह

एक ही ओर का प्यार है ? क्या एक ओर का प्यार कभी सफल नहीं होता ? क्या उसकी कोई सार्थकता नहीं है ? क्या ऐसे प्यार को जान-बूझकर समाप्त कर देना चाहिए ? नहीं, यह मुझसे न होगा। मैं देखना चाहता हूँ कि इस प्रकार के प्यार का परिणाम क्या होता है। मैं दुःखी होने के लिए, निराश होने के लिए, टूटने के लिए तैयार हूँ; लेकिन इस रास्ते में पैर रखकर अब पीछे नहीं हट सकता।

और उसके पैर सचमुच सड़क पर कुछ जल्दी-जल्दी पड़ने लगे।

प्रीति बँगले के फाटक पर सिर रखे खड़ी थी। जगदीश की इच्छा हुई कि वह उसके पास जाय और उसके सिर पर हाथ रख दे; पर फिर न जाने भीतर से एक कैसा झोंका आया कि वह आगे बढ़ गया। लेकिन फिर उसे प्रीति का उस तरह खड़ा होना याद आया और वह लौट पड़ा।

पास पहुँचने पर प्रीति ने कहा, "आइए।"

जगदीश बिना किसी उत्साह के उसके साथ हो लिया।

कैसा है यह मनुष्य का मन ! जिसे पाने के लिए वह रात-दिन तरसता है, उसी को पाकर सहसा विरक्त हो जाता है। यह क्या जगदीश के मन की वैसी ही विरक्ति है ? क्या यह अभिमान है कि हमने तुम्हें इतना प्यार किया और तुम हमारी आँखों के सामने हमारे प्यार को कुचलती हुई, दूसरे के साथ चल दीं ? क्या यह मन का डर है जो प्यार करते हुए भी, यह नहीं कहना चाहता कि हम तुम्हें प्यार करते हैं ?

"ग़ुस्सा होना चाहिये था मुझे और देख रही हूँ कि ग़ुस्सा कर रहे हैं आप।" प्रीति ने कहा।

"क्यों, मुझसे ऐसा क्या अपराध बन पड़ा ?" जगदीश ने गंभीर रहकर पूछा।

"अभी बताती हूँ। बैठिए तो।"

"नहीं, पहले बताइये।"

प्रीति तीन-चार पुस्तकें उठा लाई। बोली, "लीजिए अपनी पुस्तकें। मुझे नहीं पढ़नी हैं।"

"लेकिन क्यों? हो सकता है मुझसे कोई भूल हो गई हो; लेकिन पुस्तकों ने क्या बिगाड़ा है?"

प्रीति ने उन पुस्तकों को उलटा-पलटा। फिर उनमें से एक फ़ोटो निकालकर बोली, "यह फ़ोटो किसका है?"

जगदीश सन्नाटे में आ गया। बोला, "प्रीति, सचमुच मैं नहीं जानता कि यह फ़ोटो किसका है? इस लड़की को मैंने कभी नहीं देखा। लेकिन यह यहाँ आया कैसे?"

"आपने रखा होगा इसमें, और कैसे आया! आजकल आप यही सब पढ़ते हैं?" प्रीति ने थोड़े आवेश में पूछा।

"प्रीति, मुझे सौगन्ध खाने की आदत नहीं, लेकिन तुम्हारे सिर पर हाथ रखकर मैं कहता हूँ कि इस लड़की को मैंने कभी नहीं देखा··· लेकिन···"

"लेकिन क्या?"

"लेकिन अब इसे देखने को और इससे मिलने को मन करता है। कितनी सुन्दर है यह। दुर्भाग्य अपना कि अभी तक अपनी इससे भेंट ही नहीं हुई। हम तो समझते थे कि कानपुर में सुन्दर प्राणी रहते ही नहीं। अब तो चड्ढा की ज़रूर ख़ुशामद करनी पड़ेगी।" जगदीश ने थोड़े मुस्कराते हुए कहा।

"लेकिन वे तो कुछ और ही कह रहे थे···"

"वह भी बताओ न?"

"किताब लेते समय जब मैं उन्हें उलटने-पलटने लगी, तो यह फ़ोटो गिर गया। देखकर मुझे बुरा लगा। मेरे पूछने पर कि यह किसका फ़ोटो है, उन्होंने चकित होकर कहा : मैं क्या जानूँ। जगदीश की कोई प्रेमिका होगी!"

जगदीश खिलखिलाकर हँस पड़ा। "और तुमने विश्वास कर लिया ?"

प्रीति बोली, "उस समय तो कर लिया था..."

"और अब ?"

"अब नहीं।"

"अच्छा, यह फ़ोटो मुझे दो।"

प्रीति ने उसके टुकड़े-टुकड़े करके कहा, "लो।"

"तुममें बड़ी ईर्ष्या है प्रीति।" जगदीश ने कहा।

"अब है तो है। क्या करें ?" प्रीति ने चट से उत्तर दिया।

"घर में सन्नाटा है ?"

"हाँ।"

"कहाँ गये ये लोग ?"

"बाबू जी और अम्मा गंगा-स्नान करने गए हैं। बन्सी उनके साथ गया है। इतवार है न ?"

"हर इतवार की सुबह ये लोग गंगा स्नान करने जाते हैं ?"

"जाते होंगे, न जाते होंगे। आपको इस घर में कोई चोरी करनी है, जो इस तरह के प्रश्न कर रहे हैं ?"

"अरविंद और चड्ढा इतवार के सुबह कभी नहीं आते ?"

"नहीं।"

"क्यों ?"

"इसलिए कि आप आ सकें। अब तबियत खुश हुई ?" प्रीति ने जगदीश की ओर देखकर कहा। "लेकिन आज चाय नहीं मिलेगी।"

"क्यों ?"

"नौकर नहीं है।"

"आपसे बनानी नहीं आती ?"

"बना सकती हूँ; लेकिन उठने को मन नहीं कर रहा।"

जगदीश को सुनकर प्रसन्नता हुई। बोला, "यह मन ऐसी ही चीज़

है। तुम्हारा एक काम के लिए मन नहीं कर रहा और मेरा एक दूसरे काम के लिए मन कर रहा है। न सही चाय। उसी इच्छा को पूरा कर दो।"

"क्या बात है?"

जगदीश ने बतलाया कि फाटक पर प्रीति को सिर झुकाए देखकर उसकी इच्छा हुई थी कि वह उसके बाल छुए।

प्रीति ने कहा, "यह भी कोई इच्छा-सी इच्छा है।" और मेज़ पर अपना सिर रख दिया। जगदीश ने बड़ी कोमलता से उसके बालों पर हाथ फेरना प्रारम्भ किया—इतनी कोमलता से कि उस स्पर्श का शायद ही उसे भान हुआ हो। एक अवर्णनीय सुख से उसके हृदय का कोना-कोना भर उठा। उसी सुख के अतिरेक में झुककर उसने प्रीति की मॉग चूम ली।

"यह बेईमानी है।" प्रीति ने सिर उठाते हुए कहा।

"अब है तो है। क्या करें?" जगदीश ने कहा।

प्रीति हँस पड़ी। बोली, "यह उस बात का उत्तर नहीं हुआ। बहुत दिन से मेरा मन न जाने कैसा हो रहा है। जिस रास्ते पर मैं चल पड़ी हूँ, उसका मुझे कोई ज्ञान नहीं है। एक बलवती प्रेरणा न जाने मुझे किस दिशा में खीचे लिए जा रही है। जब से मुझे दुनिया का ज्ञान हुआ, तभी से न जाने क्या खोजती फिर रही हूँ। लेकिन मुझे जो कोई मिला, उसकी आँखों में अपने लिए मात्र वासना की झलक देखी।"

"यह सब कुछ मुझे क्यों सुना रही हैं ....."

"मन कर रहा है। न जाने कब से मैं एकाकीपन का अनुभव कर रही हूँ। इसे दूर करने के लिए मैंने श्याममोहन को बुलाया। श्याममोहन के स्थान पर कोई भी व्यक्ति आ सकता था। मैं उसे पसंद करती। उस समय व्यक्ति की परख के लिए अवकाश न था। अपने से भिन्न मुझे किसी की आवश्यकता थी—कहना चाहिए मेरे भीतर की नारी के लिए पुरुष की

आवश्यकता थी। चड्ढा अगर ठीक होते, तो मैं उनमें खो गई होती। मैं रोज ही उनके पास बैठती हूँ। आदमी बुद्धिमान है—बुद्धिमान क्या मेधावी है, सुन्दर है; लेकिन न जाने क्या बात है कि भीतर कहीं छल भरा हुआ है। स्त्री छल नहीं चाहती। वह मेधावी, सुन्दर और समर्थ व्यक्ति को तो पसंद करती है; लेकिन वह यह भी चाहती है कि उसका प्रेमी उसके लिए सीधा हो। मै चड्ढा को पसंद नहीं करती। कभी नही कर सकती।"

"लेकिन आप के व्यवहार से तो यह स्पष्ट नहीं है।" जगदीश ने कहा।

"धीरे-धीरे मैं उसे स्पष्ट कर रही हूँ। किसी दिन वह स्पष्ट हो ही जायगा।"

"लेकिन आपका झुकाव तो अरविंद की ओर है।" जगदीश ने कुछ ज़ोर देते हुए कहा।

"कुछ तो है ही। कम से कम वे श्याममोहन से अच्छे आदमी हैं। घर की सम्पन्नता की दृष्टि से मैं नहीं कह रही, वैसे भी वे अधिक विश्वसनीय व्यक्ति हैं। इतना साथ घूमने पर भी उन्होने मुझसे कभी कुछ नहीं कहा। मेरी कोई अवस्था नहीं है; लेकिन फिर भी बहुत आदर के साथ व्यवहार करते हैं। कहीं-कहीं यह आदर आवश्यकता से अधिक हो जाता है। पति के रूप में ऐसे लोग आदर्श व्यक्ति सिद्ध होते हैं। लेकिन उनके भीतर 'पज़ैशन' की भावना बहुत होती है। अपनी पत्नी से भी वे फिर यही आशा करते हैं कि वह किसी से अधिक हँसे-बोले नहीं। मैं शायद वैसी आदर्श पत्नी नहीं बन सकती। बनना भी नहीं चाहती। यह बात वे जान गए हैं; लेकिन निराश नहीं हुए हैं। सोचते हैं मेरा कच्चा मन है। जिस दिन श्याममोहन और आप दूर हो जायँगे—दूर तो आप लोगों को होना ही है—उस दिन मैं ठीक हो जाऊँगी।"

"तो अरविंद मुझे भीतर से पसन्द नहीं करता ?"

"कैसे कर सकते हैं ?" प्रीति ने उत्तर दिया।

"और आपकी मा ?"

"वे तो आपको बिल्कुल पसंद नहीं करतीं ?"

"तब मैं इस घर में क्यों आऊँ ?"

"मैं चाहती हूँ—इसलिए। मैं इस आधुनिक युग में साँस ले रही हूँ। मुझे शिक्षा दी गई है। मेरे भीतर जो नारी बैठी है, वह विद्रोह करना जानती है। इतना दबकर तो मैं किसी से भी नहीं रह सकती।" प्रीति ने थोड़े आवेश में कहा। दोनों थोड़ी देर तक चुप बैठे रहे। प्रीति फिर बोली, "लेकिन मै अपने व्यक्तिगत स्वार्थ के लिये किसी से झगड़ा करना नहीं चाहती। इसी से बहुत कुछ सहन करना पड़ता है। श्याममोहन के ट्यूशन की अब बिल्कुल आवश्यकता नहीं है; लेकिन मैं उनसे 'ना' नहीं कर सकती, 'ना' नहीं करना चाहती। वे आयें-जायँ मेरा कुछ बिगड़ता नहीं। उन्हें दूर कर दूँ तो मुझे और आपको लेकर वे बाहर कुछ भी कह सकते हैं। बाबू जी या अम्मा को भड़का सकते हैं। अरविंद के साथ कभी-कभी बाहर न जाऊँ, तो अम्मा समझेंगी कि यह सब आपके बढ़ते प्रभाव के कारण है।"

"एक बात मैं फिर भी कहना चाहता हूँ प्रीति।" जगदीश ने बहुत धीमे स्वर से कहा।

"क्या ?"

"यही कि इस प्रकार के रहस्यों को अपने तक ही तुम्हें सीमित रखना चाहिए। किसी भी बाहरी व्यक्ति के साथ उन्हें लेकर इतनी स्पष्ट चर्चा नहीं करनी चाहिए।"

"लेकिन मैं तो आपको बाहर का आदमी नहीं समझती। और कोई उपदेश ?"

"उपदेश तो नहीं, हाँ, एक बात पूछना चाहता था......"

प्रीति ने जगदीश की आँखों में झाँकते हुए पूछा, "कैसी बात ? कहो न ?"

"इतने सुन्दर ढंग से 'किस' करना तुमने कहाँ से सीखा है ?"

प्रीति ने अपनी पलकें झुका लीं। फिर वह उठी और जगदीश के पीछे आकर खड़ी हो गयी। अपने दोनों हाथों से उसके सिर को पीछे झुकाते हुए थोड़े भीगे ओठों से उसने जगदीश के ओठों को चूम लिया।

घड़ी की ओर देखती हुई वह बोली, "उन लोगों के लौटने का समय हुआ। अब आप जाइए।"

२८

रविवार के बहुत सवेरे जगदीश उठा। उसने शेव किया और स्नान करके धुले कपड़े बदले। पहले वह टहलने जाता था तो शेव करने या स्नान करने या कपड़े बदलने की ओर उसका ध्यान नहीं जाता था। लेकिन जब से वह प्रीति के अनुराग में पड़ गया और उसके यहाँ प्रभातकाल में जाने लगा, तब से ऐसा करना उसका नियम ही बन गया। ऐसा करने से वह बड़ी भारी प्रसन्नता का अनुभव करता। अब उसने जाना कि प्यार और प्रसन्नता का बहुत बड़ा सम्बन्ध है। मनुष्य जब प्रसन्न होता है तो अच्छे ढंग से रहने को भी उसका मन करता है। अपने प्रेमास्पद को हम अच्छे दिखाई दें, यह कामना मनुष्य के मन में कहीं छिपी रहती है। प्रीति के घर पर जब वह पहुँचा तो उसने पाया कि वह स्नान करके अभी लौटी है और कपड़े बदल रही है। अपने सारे शरीर में उसे एक प्रकार की स्फूर्ति का अनुभव हुआ। वैसी ही स्फूर्ति का अनुभव प्रीति रोम-रोम से कर रही थी। केश उसके खुले हुए थे। पैरों में चप्पल डालकर वह बाहर आई और जगदीश को लेकर ड्राइंगरूम से लगे हुए एक छोटे से कमरे में आ गई। जगदीश एक सोफे पर बैठ गया। प्रीति

पास के एक छोटे सोफे. पर बैठ गई। जगदीश कमरे में लगे एक चित्र को वहीं से बैठकर देखने लगा।

"आप पाँच मिनट रुकें तो मैं आपके लिए चाय ले आऊँ।"

"नहीं, आज मैं आपको कहीं जाने ही नहीं दूँगा।"

"कुल पाँच मिनट तो लगेंगे ही..."

"चाहे आधा मिनट लगे। आधे मिनट को भी आज इधर-उधर नहीं होने दूँगा।"

"क्यों ?" प्रीति ने पूछा।

"जितनी देर आप चाय बनाने में लगायेंगी, उतनी देर मुझसे बातें कीजिए। मैं बातें करने के लिए कितना तरसता रहता हूँ, यह आपको मालूम नहीं है। मालूम हो जाय तो फिर ऐसे प्रश्न न करें।"

"इसमें सच कितना है और झूठ कितना ?" प्रीति ने हँसकर पूछा।

"अच्छा, पहले आप मेरे पास आइए। यहाँ आकर बैठिए।"

"क्यों ?"

"फिर क्यों ? इतनी दूर से बात नहीं हो सकती।" जगदीश ने कहा।

"नहीं, हम यहीं ठीक हैं।"

"क्या हुआ जो हमने उठकर खींस लिया तो। फिर कहेंगी हमें छू लिया।" और इतना कहकर जगदीश थोड़ा उठा।

"नहीं नहीं, हम आते हैं..." और वह पास आकर खड़ी हो गई। जगदीश ने उठकर उसे बायीं ओर बिठा लिया।

"घर वाले गंगा जी गए हैं ?"

"नहीं, पिता जी के किसी मित्र के लड़का हुआ है। आज उसका नामकरण-संस्कार है। अतः दोनों घर से ही स्नान करके गए हैं। वहीं

खाना होगा; अतः देर से लौटेंगे...मुझसे भी चलने का बहुत आग्रह करते रहे; लेकिन मैंने मना कर दिया।"

"ठीक तो किया। फिर यह भय की मुद्रा क्या थी?"

"पता नहीं क्यों, भय लगता है?"

"किस बात का?"

"तुम्हारे पास आने में..."

"पास तो मेरे बैठी ही हुई हो। मुझे तो नहीं लगता कि कहीं से डर रही हो। सड़क से फाटक, फाटक से लॉन, लॉन से बरामदा, बरामदे से ड्राइंगरूम, ड्राइंगरूम से यह एकांत का कमरा। तुम मुझे कहाँ से कहाँ ले आई हो? मुझे तो नहीं लगता कि तुम डरती रही हो। प्रीति, क्या तुम्हें मुझसे सचमुच डर लगता है?"

"नहीं। तुमसे डर लगने की कोई बात नहीं है। अपने से ही डर लगता है। मै समझा नहीं पा रही हूँ—तुम्हारे बहुत पास आने में डर लगता है। लेकिन जब तक मैं नहीं आऊँगी, तुम मुझे कैसे अपने पास लाओगे? अब मै नहीं जानती कि मैं तुमसे डरती हूँ या अपने से डरती हूँ या यह भय किस बात का है। अच्छा छोड़ो, कुछ होगा। कोई और बात करो।"

"इतनी तो अच्छी बात करती हो। इच्छा होती है कि तुम बात करती ही जाओ और मैं सुनता ही रहूँ..."

"ऐसा क्यों?"

"जैसे आदमी का कुछ कहने को मन करता है, वैसे ही सुनने को भी तो मन करता है।"

"ऐसा क्यों?"

"फिर तो कहो।"

प्रीति ने हथेली पर अपनी चिबुक को रखकर जगदीश की ओर देखते हुए कहा, "ऐसा······"

जगदीश ने खींचकर अपने ओठों से उसके ओंठ बंद कर दिए। 'क्यों' उसके ओठों में ही बंद रह गया। प्रीति छिटककर हट गई और उसे चिढ़ाते हुए बोली—ऐसा क्यों ?

जगदीश ने उसके कोमल हाथ को अपने हाथ में ले लिया। प्रीति ने उसे छुड़ाया नहीं। वह थोड़ा पास को आई तो जगदीश ने उसे खींच कर अपनी गोद में ले लिया। केशराशि सोफे पर बिखर गई। प्रीति ने अपना एक हाथ जगदीश के मुँह की ओर बढ़ाया जिससे वह झुक न सके और फिर वही मधुर रट लगाई—ऐसा क्यों, ऐसा क्यों, ऐसा क्यो। जगदीश हँसता रहा, हँसता रहा, हँसता रहा।

थोड़ी देर में प्रीति ने कहा, "अच्छा, अब बैठ जायँ। बात करेंगे।"

जगदीश ने उसे छोड़ दिया।

"अच्छा, एक बात बताओ।"

"पूछो।"

"ठीक जवाब देना होगा।"

"तुम समझती हो, मैं तुमसे झूठ बोल सकता हूँ ?"

"तुम मुझे इतना निकट क्यों चाहते हो ?"

"मेरा मन तुम्हारे लिए बहुत आकुल रहता है, प्रीति। वह शायद तुम्हारे मन को छूना चाहता है। लेकिन बीच में यह शरीर है; इसी से छू नहीं पाता। अतः तुम्हारे पास मेरा खिंच कर आना तुम्हें छूने का प्रयत्न करना, और कुछ नहीं है, मन की उसी पुकार को चुप करना है।"

प्रीति थोड़ी देर तक खोयी-खोयी-सी बैठी रही। फिर बोली, "तुम क्या मेरे लिए सचमुच दुःखी रहते हो ?"

"रहता तो हूँ।" जगदीश ने कहा।

"मुझे ठीक से समझाओ, क्या बात है।" प्रीति ने पूछा।

"ठीक से समझाना तो कठिन है; लेकिन बचपन से ही मैं एक

अभाव का अनुभव करता रहा हूँ। यह मेरे जीवन का सबसे बड़ा अभाव है—प्यार का अभाव। क्या होने से यह अभाव भर जायगा, पूरा हो जायगा, नहीं रहेगा, मैं नहीं जानता। एक बहुत बड़ी प्यास को लेकर मैं बचपन से ही घूम रहा हूँ। यह मेरी प्यास कहाँ बुझेगी, मैं नहीं जानता। बुझेगी भी या नहीं, मैं नहीं जानता। बुझनी भी चाहिए या नहीं, मैं नहीं जानता। ऐसा नहीं है कि तुम्हें छोड़कर मैं किसी को न जानता होऊँ; लेकिन उन्हें मैं केवल जानता ही हूँ। वे दूर हो जायँ तो मुझे थोड़ा दुःख होगा; पर फिर शायद मैं उन्हें भूल जाऊँगा। वे कोई गहरा चिह्न मेरे जीवन पर छोड़कर नहीं जा सकतीं। उनके प्रति मैं किसी प्रकार की विवशता का अनुभव नहीं करता। तुम सम्भवतः इतनी सुन्दर भी नहीं हो, जितनी उनमें से कोई-कोई है; लेकिन सृष्टि में मुझे तुमसे सुन्दर कोई भी नहीं लगता। कभी-कभी लगता है कि और भी जो कुछ है वह केवल तुम्हारे कारण ही सुन्दर है। तुमसे दूर होकर ऐसा लगता है कि मेरे प्राण निकल जायँगे। तुम बुला लेती हो, तो मुझे बहुत अच्छा लगता है; लेकिन यहाँ से जाते ही इच्छा होती है कि मैं फिर लौट आऊँ। तुम्हारे लिए सचमुच मैं बहुत दुःखी रहा हूँ। मन जब बहुत दुखता है, तो मै किसी से कुछ कह नहीं पाता; केवल आँसू चुप-चुप आँखों से अँधेरे में टपकने लगते हैं। अगर तुम्हें पता चल जाय कि मैं तुम्हारे लिए कितना दुःखी रहा हूँ, तो तुम मुझे अपने से कभी भी अलग न करो······मेरी समझ में नहीं आता, अपनी बात मैं तुम्हें कैसे समझाऊँ।"

प्रीति ने इस बात का कोई उत्तर नहीं दिया। धीरे से खिसक कर जगदीश के कन्धे से लग गई। जगदीश ने अपना बाँया हाथ उसकी पीठ पर रख दिया।

"तुम मेरे लिए क्यों दुःखी रहते हो ? सोचकर देखो, मैं कभी तुमसे

दूर रही हूँ। चड्ढा ने ज़रूर मुझे कुछ देर के लिए भ्रम में डाल दिया था; लेकिन अब उसकी चर्चा न करना ही अच्छा है।" प्रीति बोली।

"क्या तुम जानती हो कि इस समय मेरे मन में कैसी भावना उठ रही है?" जगदीश बोला।

"नहीं। मैं क्या जानूँ! मुझे नहीं बताओगे तो मैं कैसे जानूँगी!"

"इच्छा होती है कि मैं अभी मर जाता।"

प्रीति ने उसके मुख पर हाथ रखते हुए कहा, "ऐसा नहीं कहते।"

"तुम जो मेरे जीवन के लिए इतना महत्वपूर्ण हो, मेरे कन्धे से लगी बैठी हो। कहाँ मै दूर देश का रहने वाला और कहाँ तुम। इस पल को मैंने कल्पना भी नहीं की थी। यह पल अब मेरे जीवन में कभी लौट कर नहीं आ सकता।" जगदीश बोला।

"इससे बड़े पल भी जीवन में आ सकते हैं। यह तो कुछ नहीं है।" प्रीति ने आश्वासन भरे स्वर में कहा।

और वह अलग हो गयी।

दो अपरिचित व्यक्तियों को, जो एक दिन एक-दूसरे का नाम-धाम तक नहीं जानते, यह कौन है जो यों मिला जाता है? कौन है जो अपरिचय की, दूरी की सारी दीवारों को ढा देता है? कौन है जो बीच में पड़े पर्दों को हटा देता है? यह कौन है जो एक-दूसरे को अत्यधिक निकट लाकर कहता कि लो जो अपना है उसे पहचानो, उसमें समाकर एक हो जाओ? भेद से अभेद की ओर हमें यों कौन ले जाता है?

"क्या सोच रहे हो? यही कि मैं तुम्हारे जीवन में कहाँ से आ गई?" प्रीति ने पूछा।

"नहीं। यह सोच रहा हूँ कि क्या मैं सचमुच तुम्हारे पास बैठा हूँ? सोच रहा हूँ कि यह स्वप्न है या सत्य। मैंने लोगों को प्यार करते देखा है प्रीति! और पाया है कि यदि किसी लड़की को पता चल जाय कि कोई उसे प्यार करता है, तो वह उसे बहुत दूर फेंक देती है, उसे बहुत

दुःख देती है। लेकिन तुम तो ऐसी नहीं हो। इतनी अच्छी तुम क्यों हो ?" जगदीश ने प्यारभरी वाणी में पूछा।

"मैं तो कुछ भूली-भूली-सी, पागल-सी, बेहोश-सी रहने लगी हूँ। आजकल बहुत-सी बातों में भूल हो जाती है। मा पूछती है तो मैं कुछ उत्तर नहीं दे पाती। कह रही थीं—अब तेरा विवाह जल्दी ही कर देना चाहिए। लेकिन मेरे भीतर की बात यह है कि मैं अरविंद को पसन्द करते हुए भी, उससे विवाह नहीं करना चाहती। उस आदमी के व्यक्तित्व में रस कहीं नहीं है।"

"तुम उसके निकट रहोगी तो उसके मन भी रस उमड़ पड़ेगा।"

"छिः, क्या बात ले बैठे। और कोई बात करो।"

"नहीं प्रीति, नारी का सम्पर्क ही ऐसी चीज है। मैं अपनी ही बात कहूँ···"इतना कहकर जगदीश सहसा चुप हो गया।

"रुक क्यों गए ?" प्रीति ने पूछा।

"नहीं, वह कहने की बात नहीं है। अच्छी बात नहीं है···" जगदीश ने समझाया।

"नहीं, कैसी ही बात हो, बतलाओ।"

"मैंने जब पहली बार तुम्हें देखा तो तुम अच्छी तो मुझे बहुत लगी थीं; लेकिन आकर्षण धीरे-धीरे ही जगा। देखते ही जिसे प्रेम होना कहते हैं, वह मेरे-तुम्हारे बीच नहीं हुआ। जैसे-जैसे मैं तुम्हारे सम्पर्क में आया, वैसे-वैसे मैं अधिक आकर्षित होता गया। फिर मेरी दृष्टि तुम्हारे शरीर पर गई। ऊपर से नीचे तक वह कितना पूर्ण है, यह मैने जाना। फिर मेरी इच्छा हुई कि मैं तुम्हें छू पाता। उस दिन तुम शर्त हार गईं, इसमें नियति ने ही मेरी सहायता की थी। उसे तुम पूरा नहीं भी कर सकती थीं पर तुमने उसे पूरा किया। उससे मुझे लगा कि तुम्हारी ओर मैं ही आकर्षित नहीं हूँ, तुम भी थोड़ी आकर्षित हो..."

"थोड़ी ?" प्रीति के मुँह से सहसा निकला और फिर जैसे उससे कुछ कहने में भूल हो गई हो, उसने अपनी जीभ काटी और चुप हो गई।

"इसके आगे तुम क्या कहना चाहती थीं ?"

"कुछ नहीं।"

जगदीश ने उसे अपनी ओर खींचकर और उसके माथे पर एक चुम्बन अंकित करके पूछा, "ठीक बताओ, क्या कहना चाहती थीं ? जब तक बताओगी नहीं, मैं तुम्हें छोड़ने का नहीं।"

"फिर अपनी बात भूल जाओगे।"

"नहीं भूलूँगा।"

"तुम्हारे बिना मेरी दशा वैसी ही है जैसे बाण से बिद्ध किसी हरिणी की। मैं कितनी घायल हूँ, बता नहीं सकती।" प्रीति ने रुक-रुक कर कहा।

"लेकिन जब तुमने उस शर्त को पूरा किया, तो मेरा रोम-रोम सिहर उठा। वह तो एक अलग की बात है। तुम्हारे चुम्बन की वह एक स्वाभाविक प्रतिक्रिया थी। उस सुख का भी मुझे पता नहीं था; क्योंकि मेरे ओठों को किसी नारी ने उस दिन पहली ही बार छुआ था; लेकिन उसी पल मुझे एक दूसरी अनुभूति हुई, जो शायद किसी को नहीं होती..."

"कैसी अनुभूति ?" प्रीति ने चकित होकर पूछा। वह जैसे कुछ जग गई हो।

"उस दिन तुम मेरे शरीर के बहुत निकट आ गई थीं। मुझसे बिल्कुल सटकर खड़ी थीं। तुम्हारे शरीर की गंध मेरे नासा-रंध्रों में गई। वह किसी सुगंधित द्रव्य की गंध नहीं थी; क्योंकि उस समय तुम्हारे वस्त्रों में न सेंट लगा था, न इत्र। वह तो शरीर की ही भीनी गंध थी। वह मेरे मन में ऐसी बस गई है कि...

प्रीति ने एक उच्छ्वास फेंका।

"अब आगे की बात ख़राब है..." जगदीश बोला।

"हमें बहुत ग़ुस्सा आता है आपके ऊपर। आप बात कहते-कहते रुक जाते हैं। यही सबसे ख़राब बात है। बातचीत में ख़राब-अच्छा क्या होता है?"

"अब तुम ग़ुस्से हो जाओ तो हमारा क़सूर नहीं है। हम कह रहे हैं कि मत सुनो...।"

"और हम कहते हैं कि हम सुनेंगे, सुनेंगे, सुनेंगे।"

"तुम्हें देखकर मेरे मन में एक इच्छा जगी है और वह यह कि मैं तुम्हें देखना चाहता हूँ..."

प्रीति ने संकेत को शायद थोड़ा समझ लिया। बहुत भोलेपन से उसने उत्तर दिया, "देख तो रहे हैं।"

"कभी ऐसा नहीं हो सकता कि तुम नहा रही हो और हम अचानक आ जायँ..."

प्रीति ने सिहरकर उसके गले में अपनी दोनों गोरी बाहें डाल दीं और उसके हृदय से एकदम सटकर लग गई। केशराशि कंधे पर लहराती रही। बोली, "अब तुम मार खाने का काम कर रहे हो। हम सचमुच तुम्हें मार देंगे।"

जगदीश उसके सिर और कंधे पर हाथ फेरते हुए बोला, "हमने पहले ही कहा था, नहीं पूछो। लेकिन नहीं, हम तो पूछेंगे..." और फिर वह चुप हो गया,

प्रीति ने बालों को झटका देते हुए उसकी ओर देखा। बोली, "उदास हो गए? उदास नहीं होते। लेकिन सोचो, यह कैसे हो सकता है? अच्छा, यहाँ से उठो। यहाँ बैठे-बैठे बहुत देर हो गई। यह शायद यहाँ बैठने का प्रभाव है; नहीं तो ऐसी बात तो तुम कभी नहीं करते थे। मुझे भी न जाने क्या हो गया है? अगर तुम ग़लत न समझो और बुरा न मानो तो मैं एक बात कहना चाहती थी..."

"तुम्हें मेरे ऊपर विश्वास नहीं है ?"

"विश्वास तो है, लेकिन फिर भी मनुष्य अपने स्वभाव से विवश है। हो सकता है जो मैं कहने जा रही हूँ, तुम्हारी दृष्टि में वह साधारण-सी बात हो। मैं बहुत ज़ोर देकर तो नहीं कह सकती; लेकिन चाहती हूँ कि आज मेरे तुम्हारे बीच जो बातें हुई हैं, इसकी चर्चा कभी भी किसी से न हो—चाहे हम एक-दूसरे से कितने ही दूर क्यों न हो जायँ..."

"तुम्हें कैसे विश्वास होगा इस बात का ?" जगदीश ने पूछा।

"केवल मुझे छूकर कह दो।"

जगदीश ने प्रीति के हाथ पर हाथ रखकर कहा, "मेरे और तुम्हारे बीच जो कुछ है, उसका पता कभी भी किसी को नहीं चलेगा। तुम्हारा नाम-धाम मेरा घनिष्ठतम मित्र भी कभी नहीं जान पायगा।"

और थोड़ी देर वे फिर चुप रहे।

प्रीति ने जगदीश के हाथ को अपने हाथों में लेकर पूछा, "यही बात तुमने मुझसे क्यों नहीं कहलवायी ?"

"इसकी आवश्यकता नहीं रही।"

"क्यों ?"

"मुझे मालूम है जब मैं यह वचन दे रहा था तो तुम भी ऐसा ही कुछ मन ही मन दुहरा रही थीं।"

"यह तो सच है; लेकिन तुम यह सब कैसे जानते हो ?" प्रीति ने चकित होकर पूछा, फिर बोली, "सामने जो यह लंबी अल्मारी-सी देखते हो, वह बता सकते हो क्या है ?"

"हो सकता है सेफ़ हो, क्योंकि नीचे गुप्त ताला है। बीच में तो ताला है ही।"

"नहीं सेफ़ नहीं है, दरवाज़ा है।"

"यह कैसा दरवाज़ा है ?"

"आइए दिखायें।" ऐसा कहकर वह जगदीश का हाथ पकड़कर ले चली। प्रीति ने ताले को खोला, फिर एक लम्बी ताली लेकर नीचे घुमायी। दरवाज़ा खुल गया। दरवाज़े से नीचे तीन-चार सीढ़ियाँ थीं। भीतर एक काफ़ी बड़ा गोल कमरा था। ऊपर झरोखे थे जिनमें से प्रकाश और वायु आने का प्रबन्ध था। नीचे पक्का चिकना फ़र्श था जिसके बीच में एक मोटा गद्दा बिछा था। एक कोने पर लोहे की सेफ़ थी। इसमें घर का शायद ज़ेवर इत्यादि रखा था। कोने से लगाकर दो ओर छोटे-बड़े ट्रंक और सूटकेस रखे थे। एक ओर कपड़े सीने की मशीन थी जिस पर आधी सिली हुई ब्लाउज़ पड़ी थी। एक कोने में फ्रेम में जड़ा हुआ एक बहुत लम्बा शीशा था जो कहीं से धूल के कण आ जाने से थोड़ा धुँधला पड़ गया था। जगदीश ने मशीन के पास पड़े हुए कपड़ों के टुकड़ों को लेकर शीशे को वहाँ से हटाकर साफ़ करना प्रारम्भ किया। शीशा झलक उठा। प्रीति उसके पीछे खड़ी-खड़ी देखती रही।

जगदीश ने वहीं से कहा, "बैठ जाओ न। खड़े होने से इसमें तुम्हारा मुँह तो दिखाई ही नहीं देता।"

प्रीति उसकी पीठ के पीछे छिपकर बैठ गई और मुस्कराने लगी।

"घर वाले कब आयेंगे?" जगदीश ने पूछा।

"अभी बहुत देर है।" प्रीति ने धीरे से उत्तर दिया।

"इन ट्रंकों में तुम्हारे ट्रंक कौन-से हैं?"

"क्यों, क्या करोगे?"

"तुम्हारे कपड़े देखेंगे।"

प्रीति सहसा प्रसन्न हो गई। उसने उठकर एक स्थान से तालियों का गुच्छा उठाया और एक ट्रंक को खोलकर अपनी साड़ियाँ दिखाने लगी। अधिकतर साड़ियाँ हल्के रंगों की थीं। जगदीश प्रीति की सुरुचि की प्रशंसा करता रहा।

"तुम क्या इस कमरे में अक्सर आती हो ?"

"नहीं। जब जी बहुत घबराता है, तो यहाँ आकर लेट जाती हूँ।"

"आजकल भी जी घबराता है ?"

"हाँ।"

"क्यों, क्या बात है ?"

"एक घबराहट-सी हर समय बनी रहती है। आवेश का एक बवंडर-सा मन में उठता रहता है। दिन में मैं दो-तीन बार नहाती हूँ; फिर भी लगता है जैसे भीतर कहीं आग सुलग रही है।"

जगदीश ने उसका हाथ पकड़कर कहा, "अच्छा, शीशे के सामने बैठो।"

"पहले ट्रंक बन्द कर दें।"

"अरे, हो जायगा ट्रंक बन्द। पहले शीशे के सामने आओ। तुम्हें मन भर देख तो लें।" और उसने उसे खींचकर शीशे के सामने बिठा दिया। कंधे से साड़ी सरका दी।

प्रीति ने साड़ी को ठीक करते हुए कहा, "यह क्या शरारत है?"

प्रीति के कंधों पर घने काले रेशमी बाल बिखरे थे। वह बैठ गई तो जगदीश उसके पीछे बैठ कर और उसके कंधे पर अपनी ठोढ़ी रखकर सामने रखे दर्पण में उसे देखने लगा। प्रतिबिंब और भी अधिक मोहक था।

प्रीति ने अपनी गोरी ग्रीवा को मोड़कर आँखें मींच लीं।

जगदीश ने उससे कहा, "कहीं मुझसे तुम्हारा नुक़सान न हो जाय, प्रीति !"

प्रीति ने उसके वक्ष पर सिर रखते हुए कहा, "बोलो नहीं—बिल्कुल।"

२६

एक दिन जगदीश जब बानू को पढ़ाने गया, तो नीचे शम्सउद्दीन साहब से भेंट हुई। उन्होंने बतलाया कि बानू की शादी तय हो गई है; अतः अब वे उसका पढ़ाना बंद करना चाहते हैं। लेकिन इसके बदले में उन्होंने अपने एक दोस्त के यहाँ उसका ट्यूशन पक्का कर दिया है। अगरवाल साहब के एक छोटे बच्चे को भी अगर वह पढ़ाना चाहे, तो इसका इन्तजाम भी वे कर देंगे। दोनों स्थानों पर ४५) उसे मिल जायँगे। जगदीश ने दोनों स्थानों पर काम करना स्वीकार कर लिया। उसे ट्यूशनों की इतनी प्रसन्नता नहीं हुई, जितना दुःख इस सूचना से मिला कि अब वह बानू को नहीं पढ़ा पायगा। वह बानू से बिना मिले ही लौट आया।

अगरवाल साहब के यहाँ वह जाता तो 'शम्स मंज़िल' की ओर उसकी दृष्टि प्रायः उठ जाती। लेकिन बानू उसे कहीं दिखाई न दी। उसे अपनी इस मूर्खता पर बहुत पश्चाताप हुआ कि क्यों नहीं उसने शम्सउद्दीन साहब से इस बात की माँग की कि वह इस घर से जाने से पहले एक बार बानू से मिलना चाहता है। बानू को इन्होंने कहीं बाहर तो नहीं भेज दिया? अब भी वह क्यों नहीं जाकर कहता कि वह उससे ठीक ढंग से बिदा लेना चाहता है? लेकिन क्या होती है ठीक ढंग से बिदा? बानू से उसका क्या सम्बन्ध है? कहीं शम्सउद्दीन साहब कोई सन्देह करने लगे तो? तब क्यों न किसी दिन ऐसे समय जाया जाय, जब शम्सउद्दीन वहाँ न हो? लेकिन इस बात का पता कैसे चले? क्यों न नौकरानी को साधा जाय? लेकिन वह कमबख्त भी तो कभी बाहर नहीं मिलती।

नौकरानी के सम्बन्ध में वह सोच ही रहा था कि वह सहसा दिखाई दी। जगदीश की प्रसन्नता की सीमा न रही। उसे लगा कि न जाने कितने दिनों के बिछुड़े किसी अपने प्रियजन का संदेश उसे मिलने वाला है।

बुढ़िया ने बतलाया बानू ने उसे बुलाया है। उत्तर में उसने कहा कि वह बच्चे को पढ़ाकर अभी आता है।

बानू बहुत गंभीर थी। वह कुछ बोली नहीं। उसने एक तश्तरी में मिठाई लाकर उसके सामने रख दी।

"शादी की ख़ुशी में मिठाई खिलाई जा रही है?"

"........."

"कैसी हैं?"

"........."

इतने में देखा बुढ़िया ज़ीने में आकर खड़ी हो गई है। बानू ने नौकरानी से कहा, "एक कुर्सी लाकर यहाँ डाल दे और अब्बा को बुला।"

"क्या मैं जाऊँ?" जगदीश ने पूछा।

"नहीं। मेरा अपना काम है। आप बैठिए।"

थोड़ी देर में शम्सउद्दीन साहब ने कमरे में प्रवेश किया। जगदीश हाथ में मिठाई की तश्तरी लेकर उठ खड़ा हुआ।

"बैठिए, बैठिए। इसकी क्या ज़रूरत है।" और फिर लड़की से पूछा, "तुमने बुलाया बेटी?"

"जी, अब्बा।" इतना कहकर बानू चुप हो गयी।

शम्सउद्दीन कुछ भी नहीं समझ पाये कि बात क्या है; लेकिन अनुभवी व्यक्ति थे, इसी से चुप रहे। अपनी ओर से कुछ भी छेड़ना उन्होंने उचित नहीं समझा। जगदीश से अलबत्ता वे उसकी पढ़ाई और नये ट्यूशनों के सम्बन्ध में पूछते रहे। बानू सिर झुकाए चुपचाप दोनों आदमियों की बात सुनती रही। इतने में वह अपने पिता के पास आकर बैठ गई।

"क्या बात है, बेटे?"

"अब्बा, आज तक हमने आपसे कभी कुछ नहीं माँगा..." बानू ने कहा। शम्सउद्दीन लड़की के मुँह की ओर देखने लगे। बोले, "हाँ।"

"लेकिन आज हम आपसे कुछ माँगेंगे।"

शम्सउद्दीन की यह अकेली लड़की थी और उन्हें लड़के से ज़्यादा प्यारी थी। उन्होंने बहुत ही प्यार से उसे पाला था। उसे किसी बात का अभाव नहीं था; अतः वे समझ ही नहीं सके कि बात क्या है।

"ज़रूर बेटी।"

"आप हमारे सर पर हाथ रखकर कहिये कि जो हम माँगेंगे, वह आप देंगे ?"

"लेकिन बात का पता तो चले..."

"ये जो हमारे मास्टर साहब हैं, इन्हें आप जानते हैं। मैं चाहती हूँ कि इन्हें अब कहीं ट्यूशन न करना पड़े। ये जब तक पढ़ें, इनका सारा ख़र्च आप उठायें। अगर ये कहीं बाहर भी जाना चाहें, तो उस ख़र्च को आप मेरे लिए ख़ुशी से बर्दाश्त करें कहिए अब्बा आप करेंगे ?"

शम्सद्दीन का गला भर आया। उन्होंने कहा, "हाँ बेटे...।"

"लेकिन मैं तो कुछ लेने का नहीं।" जगदीश ने दृढ़ स्वर में कहा।

अब यह झगड़ा तुम लोग करो। अगर जगदीश साहब चाहेंगे तो मैं इन्हें विलायत भेजने तक का सारा ख़र्च ख़ुशी से बर्दाश्त करूँगा। ख़ुदा इसका गवाह है।" इतना कहकर शम्सउद्दीन ज़ीने से उतरकर नीचे चले गये।

"मैं सचमुच कुछ नहीं लेने का।"

"..............."

"आपने ऐसा क्यों किया ? बताइए क्यों किया ?"

"..............."

"बताइए न, कोई किसी के साथ ऐसा करता है, जिसे वह सहन न कर सके..." इतना कहते-कहते जगदीश की आँखें बड़े-बड़े आँसुओं से भर आईं। उसने उन्हें पीछे लौटाने का प्रयत्न किया; लेकिन लौटा नहीं सका।

बानू ने अपनी लम्बी, कोमल, उजली उँगलियों को उसके आँसुओं की ओर बढ़ाते हुए कहा, "रोते नहीं हैं। मैं कहती हूँ रोते नहीं हैं...।"

जगदीश ने उन आँसुओं को पोंछने नहीं दिया। उसने झुककर बानू के चरण अपनी दो उँगलियों से धीरे से छुए और फिर उन उँगलियों को अपने माथे से लगा लिया और बिना उसकी ओर देखे लौटकर चला आया।

३०

बानू के घर से लौटने पर जगदीश को बुख़ार आगया और वह दो-तीन दिन अपनी चारपाई पर ही पड़ा रहा। भरोसे ने बहुत कहा कि वह उसके लिए दवा ला दे; पर उसने उसे जाने ही नहीं दिया। नयन वहाँ थी नहीं; अतः उसने एक प्रकार से संतोष की साँस ली। वह इस बार फिर बिना कहे कहीं चली गयी थी। वह चाहती तो पत्र द्वारा उसे सूचित कर सकती थी; पर पता नहीं, उसने पत्र क्यों नहीं लिखा। उसके सब काम रहस्यमय होते हैं। वसंत बीत गया था और ग्रीष्म लग रहा था। वायु में अभी विशेष गर्मी न थी; पर फिर भी मौसम का सुहावनापन तो नष्ट हो ही गया था। उसकी परीक्षा के दिन निकट आ रहे थे; अतः वह विशेष चिंतित था। कालिंदी के साथ जो घटना घटी, उससे उसके मस्तिष्क में एक प्रकार का तनाव-सा आगया था। बानू ने जो कुछ किया वह सुख की ही घटना थी; पर इतना स्पष्ट था कि अब वह उसे देख नहीं पायगा। पता नहीं, विवाह के बाद वह कहाँ जायगी! बहुत संभव है जीवन में अब वह उसे कभी भी न देख पाये। क्या इंदुकुँवरि के समान वह भी उसके जीवन से सदैव को निकल जायगी? जगदीश ने करवट बदली और बहुत बेचैनी का अनुभव किया।

स्वस्थ होने पर वह भट्टाचार्य जी के यहाँ पहुँचा। उस समय कालिंदी और सीमा दोनों एक बड़े ट्रंक में से कपड़े निकालकर ऊपर धूप में डालने जा रही थीं। जगदीश को देखते ही प्रसन्न हो उठीं।

"आज तो कई दिन में आये, कवि जी?" कालिंदी ने प्रश्न किया।

"हाँ, आ नहीं सका।" जगदीश ने उत्तर दिया। अपने ज्वर-ग्रस्त होने की बात उसने नहीं बतायी।

"क्या हम लोगों से कुछ अप्रसन्न हैं?"

"हाँ।"

"क्यों, कवि जी?"

"इतनी देर हो गयी और आप दोनों में से कोई भी चाय बनाने के लिए नहीं उठी।"

"जा सीमा, आज तू ही चाय बना।" कालिंदी ने सीमा की ओर देखते हुए कहा।

"मुझसे तो दीदी अच्छी चाय बनानी नहीं आती।"

"अब सर न खा। जा भी।"

"चाय तो ख़ैर, आपकी-सी कोई नहीं बना सकता।" जगदीश ने कालिंदी की प्रशंसा में कहा। "जरूर आप उसमें कुछ डालती हैं अलग से।"

"अलग से कुछ भी नहीं डालती।" कालिंदी ने पुलकित होते हुए कहा और फिर मुड़कर बोली, "सीमा, तू अभी यहीं खड़ी है?"

सीमा चौके में चली गयी। जगदीश चाहता था कि कालिंदी चाय बनाने चली जाय तो सीमा से कुछ बातें हों। उसने अनुभव किया कि कालिंदी का उसकी ओर आकर्षित होना उसके लिए बाधा बन गया है। बहुत दिनों से सीमा से एकांत में बातें ही नहीं हो पायी थीं। मनुष्य का सुख बहुत कुछ उसकी परिस्थितियों पर भी निर्भर करता है— निर्भर करता

है संयोग पर। मन में बहुत कुछ होने पर भी मन की बात क्या पूरी की जा सकती है? उसके लिए अनुकूल परिस्थिति चाहिए। सुयोग चाहिए।

"सीमा में और मुझमें क्या अंतर है कवि जी?"

"आप बड़ी हैं, वे छोटी हैं।"

"यह तो मैं भी जानती हूँ।"

"इससे अधिक मैं क्या उत्तर दूँ, जबकि आपका प्रश्न अस्पष्ट है?"

"यह न समझें कि मेरे मन में कोई बात है; लेकिन मैं जानना चाहती हूँ कि बचपन से ही जहाँ मैं और सीमा दोनों साथ-साथ होती हैं, वहाँ आकर्षण सदैव सीमा की ओर होता है, यहाँ तक कि मेरे पति भी इसके रहते हुए इसकी ओर खिंच जाते हैं। आप भी..."

"आपको ऐसा लगता है?"

"क्या, यह बात सच नहीं?"

"इस बात का उत्तर मेरे पास नहीं है—कोई और बात पूछिए।"

"अच्छा, दोनों में अंतर बताइए।"

"दोनों में अंतर व्यक्तित्व का है शायद।"

"मैं समझी नहीं।"

"रंग का भेद है, नहीं तो आकर्षक दोनों ही हैं। दोनों को संगीत का ज्ञान है—यानी दोनों कलाकार हैं। दोनों शिक्षित हैं—शिक्षा आपको कुछ अधिक ही मिली है। दोनों भावुक हैं, बुद्धिमती हैं। लेकिन आपके पास अपना व्यक्तित्व नहीं है, जबकि उनके पास है। इसी से अंत में वे प्रभावित कर जाती हैं।"

सीमा इस बीच चाय ले आई थी। उसने आँख उठाकर जगदीश को देखा, जैसे कहा हो—धन्यवाद।

सहसा भट्टाचार्य ने ऊपर आकर पूछा, "तुम लोग अभी तैयार नहीं हुईं?"

"कहीं जाना है क्या?"

"हाँ, यहाँ के एक एस० डी० ओ मि० बनर्जी के यहाँ चाय पर जाना है।" पिता की ओर मुड़कर कालिंदी बोली, "बस, पिता जी पाँच मिनट में हम तैयार हुए जाते हैं।" जगदीश की ओर देखकर पूछा, "आप, अब कब आयँगे?"

"ये भी चलेंगे दीदी हमारे साथ।"

"हाँ, हाँ, चलिए आप भी।" भट्टाचार्य ने कहा।

जगदीश को कुछ भी पता नहीं था। उसने कहाँ, "आप लोग जाइए। मैं तो मि० बनर्जी से परिचित नहीं हूँ।"

"हम लोगों से तो परिचित हैं।" सीमा बोली।

"बंगालियों की यहाँ एक संस्था है। उसमें हम लोगों को उन्होंने बुलाया था। उस दिन उसके सभापति थे मि० सुधांशुशेखर बनर्जी। मुश्किल से उनकी अवस्था २७-२८ की होगी। उनके साथ उनकी बड़ी बहिन भी आई थीं। वे सीमा के गाने से बहुत प्रभावित हुईं। बाद में हमसे परिचय हुआ। इस बीच मैं उनके यहाँ कई बार हो आई हूँ। सीमा से चलने के लिए कहती हूँ तो जाती ही नहीं। आज बहुत आग्रह करके मि० बनर्जी ने शाम को चाय पर बुलाया है। उसी में हम लोग जा रहे हैं। इसे बड़ी कठिनाई से राज़ी किया है। न जाने क्या हो जाता है इसे! मैं कहती हूँ कोई अच्छी साड़ी पहनकर चल। मै अपनी अच्छी से अच्छी साड़ी देने को तैयार हूँ; लेकिन नहीं, वह तो साधारण वेश में ही जायगी। अब आप समझाइए न!"

"क्यों, पहन क्यों नहीं लेती हैं कोई अच्छी-सी साड़ी?"

"क्या करना है अच्छी साड़ी पहनकर।"

"कपड़ा पहनने से अपने मन को भी तो प्रसन्नता होती है।" जगदीश ने कहा।

"होती है, जब अपना मन हो।"

"मन तो होना चाहिए न।"

"जब होगा तब पहन लूंगी।"

"अभी नहीं है?"

"ना।"

ये लोग मि० बनर्जी के बँगले पर पहुँचे। लॉन में ही कुर्सियाँ पड़ी थीं। मि० बनर्जी प्रतीक्षा कर रहे थे। आकर्षक व्यक्तित्व के सुन्दर नवयुवक थे। वहाँ पहुँचते ही जगदीश को लगा कि कालिंदी संभवतः सीमा का विवाह मि० बनर्जी से तय करना चाहती है। इसके लिए उसने पहले से ही प्रयत्न किया है। सीमा को यह बात बताई नहीं गयी है; पर उसने समझ ली है। इस काम के लिए यहाँ आना उसे अच्छा नहीं लगा है। इसीसे मि० बनर्जी और कालिंदी और भट्टाचार्य जितने प्रसन्न दिखाई दे रहे हैं, उतनी सीमा नहीं। उसके मुख पर एक प्रकार की गंभीरता है।

जगदीश सोच रहा है....अच्छा ही है यदि सीमा इस घर में आजाय तो। उसका जीवन सुखी होगा।

कुर्सियों में एक ऊँची कुर्सी थी। वह संभवतः सीमा के लिए थी। अतिथियों से बैठने के लिए कहकर मि० बनर्जी पास वाली कुर्सी पर बैठ गए। कालिंदी उनके दाहिनी ओर बैठ गयी। सामने बैठ गये निर्मल भट्टाचार्य। सबसे अलग कुछ दूर पर बैठ गया जगदीश। कालिंदी ने ऊँची कुर्सी की ओर संकेत करते हुए कहा, "बैठ सीमा।"

सीमा थोड़ी देर असमंजस में खड़ी रही। मि० बनर्जी ने कुर्सी से उठते हुए कहा, "आप बैठिए न।"

सीमा को न जाने क्या सूझा कि वह सहसा जगदीश के पास आकर बैठ गई। कालिंदी को भीतर से बुरा लगा और भट्टाचार्य ने थोड़ा सर झुकाया; पर मि० बनर्जी चकित होकर रह गए। उन्होने कालिंदी की ओर देखा।

"आप सीमा को हिन्दी सिखाते हैं। हमारे परिवार से बहुत पहले से परिचित हैं और उसके एक सदस्य जैसे हैं।"

जगदीश और मि० बनर्जी दोनों ने एक साथ एक दूसरे को हाथ जोड़े।

"बहुत श्रेष्ठ कवि। हिन्दी में कविता करता है।" निर्मल भट्टाचार्य ने कहा। "सीमा जो रेडियो पर गीत गाती है, उनमें से अधिकांश इन्हीं का लिखा हुआ। स्वयं रेडियो पर कभी-कभी कविता-पाठ करता है।"

"अगली बार जब आप का कार्य-क्रम हो, तो सूचित करने की कृपा करें। मैं सुनूँगा।"

"मैं आपको सूचित करूँगी।" कालिंदी ने कहा।

चाय मेज़ पर आ गई थी।

कालिंदी ने सीमा से कहा, "सीमा चाय बना।"

"तुम्हीं बनाओ न दीदी।" सीमा ने उत्तर दिया।

कालिंदी ने जब मि० बनर्जी, पिता और अपने लिए चाय बना ली, तो सीमा कुर्सी से थोड़ी उठी और उसने अपने और जगदीश के लिए चाय बनायी। जगदीश के पास बैठने में आज वह जैसे गौरव का अनुभव कर रही थी। वह इतनी स्वतन्त्र प्रकृति की है, इसका आभास जगदीश को पहली बार मिला। वह भी न जाने क्यों एक प्रकार की कल्पनातीत प्रसन्नता का अनुभव करने लगा, यद्यपि यह स्पष्ट ही था कि यह सम्बन्ध टूट जायगा। कालिंदी से जितना बन पारहा था, उतना स्थिति को सँभाल रही थी। भट्टाचार्य ने जैसे परिस्थिति को नियति के हाथ में सौंप दिया था। एक शिक्षित और शालीन व्यक्ति की भाँति सुधांशु बनर्जी ने अपने किसी भाव का परिचय अपनी आकृति से नहीं दिया।

"आप कविता कब से करते हैं?" मि० बनर्जी ने पूछा।

"अभी प्रारम्भ की है; लेकिन संस्कार संभवतः बहुत पुराने हैं।"

"आपकी अवस्था तो बहुत कम मालूम होती है।" फिर पुराने संस्कारों से क्या आशय है?"

"मैं अपने गाँव की बात कर रहा था। उसके चरणों में एक नदी

बहती है। बचपन में मैं उसके किनारे भूला-सा बैठा रहता था। आज मेरी समझ में आता है कि मैं उसकी आत्मा को समझना चाहता हूँ।"

"नदी की आत्मा को ?"

"जी हाँ। वहाँ खादर है। दूर तक बीहड़ जंगल है। उसमें न जाने कितने प्रकार के वृक्ष उगते हैं। कुछ फूल तो ऐसे उगते हैं कि उन्हें मैंने दूसरे स्थान पर देखा ही नहीं। जब गाँव के सारे लड़के घर की ओर लौट जाते थे, तो मैं जंगल की ओर निकल जाता था। वहाँ मैं घंटों उन फूलों को देखता रहता था। आज मुझे लगता है मैं उन फूलों की आत्मा को समझना चाहता था।"

"फूलों की आत्मा को ?"

"जी हाँ। कभी कभी मैं वृक्षों से लिपटकर इस प्रकार भेंटता, जैसे वे मेरे बन्धु हों, मेरे आत्मीय। उससे मुझे बहुत सुख मिलता था।"

"तो शिक्षा समाप्त करने पर आपका क्या करने का विचार है ?"

"मै एक स्वतन्त्र साहित्यिक का जीवन व्यतीत करना चाहता हूँ !"

"इसके लिए तो आपको अपनी कला बेचनी पड़ेगी ?"

"जी हाँ, जैसे आपको अपनी प्रतिभा बेचनी पड़ती है।" जगदीश ने उत्तर दिया।

"लेकिन मैं उसे बुरा नहीं समझता।"

"आप समझते है कला सचमुच बिकती है ?" सीमा ने शान्त भाव से पूछा।

"मैंने सुना है आप रेडियो स्टेशन पर जाती हैं ?"

"जी हाँ, जाती तो हूँ।"

"आप जो वहाँ गाती हैं, उसके बदले में आप फ़ी स्वीकार करती हैं।"

"रेडियो पर तो देश के बड़े से बड़े संगीतज्ञ आते हैं। उन्हें मुझसे

कुछ ज़्यादा ही मिलता है। लेकिन किसी बड़े कलाकार को पचास, साठ या सौ रुपये देना क्या उसकी कला का वास्तविक मूल्य चुकाना है ?"

"लेकिन सीमा, उसके साथ यश भी तो मिलता है। वह भी एक मूल्य है। आत्म-प्रचार से क्या कम सुख मिलता है ?" कालिदी ने टोका।

"इसे दीदी मैं आत्म-प्रचार न कहकर आनन्द का विस्तार कहूँगी।"

"आनन्द का विस्तार क्या होता है, बेटी ?" निर्मल भट्टाचार्य ने चकित होकर पूछा। उन्हें प्रसन्नता थी कि उनकी लड़की बिना झिझक के बोल सकती है।

"सृजन में एक सुख है। कला के क्षेत्र में जब इस सृजन-सुख का विस्तार होता है अर्थात् जब एक व्यक्ति की कला अनेक तक पहुँचती है, तो कलाकार यह नहीं सोचता कि उसका प्रचार हो रहा है, बल्कि इस तथ्य से उसे प्रसन्नता होती है कि वह अपने मन के सुख का उपभोग सभी को बाँटकर कर रहा है। मैं इसे आत्म-प्रचार न कहकर आत्म-विस्तार कहती हूँ।"

"यह बात आपकी ठीक है। कॉलेज जीवन में मैंने भी कुछ चित्र बनाये थे। मित्रों ने कहा कि मैं उनकी प्रदर्शिनी करूँ; लेकिन मैं सहमत नहीं हुआ।"

"यह तो आपने अच्छा नहीं किया। क्या उन चित्रों में से अब भी कुछ शेष हैं ?" जगदीश ने पूछा।

"हैं तो।"

"तो दिखाइए न ?" उसने आग्रह किया।"

"आइए, भीतर आइए।" इतना कहकर वे सबको भीतर ले चले। चित्र देखकर सीमा आदि घर लौट आए। घर पर भट्टाचार्य और कालिंदी ने सीमा से कितना भला-बुरा कहा होगा, इसकी कल्पना जगदीश कर सकता था। वह कई दिन तक वहाँ नहीं गया।

उसका मन बार-बार पूछता था : सीमा ने ऐसा क्यों किया ?

३१

कल्पना और अनुभव दो वस्तुएँ हैं। कल्पना से जो सुन्दर लगता है वह जब तक अनुभव से सिद्ध नहीं होता, तब तक जीवन के लिए उसका बहुत मूल्य नहीं है। कल्पना को किसी न किसी दिन तो अनुभव के पथ पर चलना ही पड़ता है और तभी उसके वास्तविक मूल्य का पता चलता है। प्रेम के सम्बन्ध में जगदीश ने जो कल्पनाएँ की थीं, उनमें सब कुछ सुन्दर ही सुन्दर था। असुन्दर को वहाँ कोई स्थान ही न था और इसमें भी कोई सन्देह नहीं कि बहुत दूर तक वहाँ असुन्दर कुछ था ही नहीं। लेकिन व्यवहार की अन्तिम सीमा पर उसने पाया कि वह सुन्दरता के लोक से आगे बढ़ आया है और तब उसका मन उदास हो गया। सुन्दर की सीमा पर यह असुन्दर कहाँ से आ गया!

जगदीश नयन को देखकर भी आकर्षित हुआ था; लेकिन प्रीति को देखकर तो एकदम खो ही गया था। उसे लगा कि यदि प्रीति उसे प्राप्त नहीं होती, तो उसका जीवन एक प्रकार से व्यर्थ हो जायगा। नयन से वह आशा करता था कि वह भी अपनी ओर से थोड़ा आगे बढ़े; लेकिन प्रीति के सम्बन्ध में उसने ऐसा सोचा ही नहीं। मै प्यार करता हूँ, तो मुझे अपनी ओर से ही प्रीति के हृदय को जीतने का प्रयत्न करना चाहिए। प्रीति के पहले दिन के व्यवहार से उसे कुछ आघात-सा लगा था। उसमें थोड़ी आत्म-सम्मान की भावना जगी और उसने उधर से निकलना कम कर दिया। लेकिन अपने एकान्त के क्षण में उसने अनुभव किया कि भूल सारी उसकी है। उसका व्यवहार एकदम अशिष्टता से युक्त था। प्रीति को इससे भी कड़ा व्यवहार उसके साथ करना चाहिए था। और उससे मिलने के लिए वह फिर आकुल रहने लगा। लेकिन एक बार झूठी आत्म-सम्मान की भावना जो उसके मन में घर कर गयी थी, उसने उसके पैर बाँध दिये और वह फिर उस ओर से नही निकला। इसी बीच

श्याममोहन ने उसकी समस्या को सुलझा दिया। आत्म-सम्मान की भावना झूठी भी होती है और सच्ची भी। नयन ने कभी उससे कोई कड़ी बात नहीं कही थी, उसका व्यवहार भी बहुत ही मधुर था; लेकिन वह जो एक प्रकार की दूरी बनाये रखना चाहती थी, वह तो पहले ही दिन स्पष्ट हो गयी थी। और जगदीश ने सोचा—ऐसी भी क्या बात है। क्या मैं नयन के बिना जीवित नहीं रह सकता! नयन के सम्बन्ध में बहुत दिनों तक वह इस बात का पता ही नहीं लगा सका कि उसके प्रति उसके मन का वास्तविक भाव क्या है। परिणाम यह हुआ कि कभी तो उसका मन उसके प्रति अत्यधिक कोमल हो उठता और कभी कठोर। नयन के सम्बन्ध में अन्त तक यह मानसिक द्वन्द्व समाप्त नहीं हो पाया।

सीमा के प्रति उसका आकर्षण एक कलाकार का कलाकार के प्रति आकर्षण के रूप में था। सीमा के व्यवहार में कभी कोमलता आ जाती थी, तो उसका मन भी कोमल हो उठता था। सीमा के सम्पर्क में आकर उसने यह भी जानना चाहा कि नारी का मन कैसा होता है और विशेष परिस्थितियों में वह कैसे व्यवहार करता है; लेकिन सीमा थी कि आगे बढ़ती चली गयी और उस बढ़ने में वह जगदीश को भी बहुत दूर तक खींचकर ले गयी।

और एक थी शारदा जिसने जगदीश के मन को चोट पहुँचायी थी। शारदा को देखकर जगदीश के मन में उसे जीवन-साथी के रूप में पाने की कामना जगी थी। शारदा उसे प्राप्त हो जाती तो वह नयन और सीमा को तो भूल ही जाता, साथ ही यह भी संभव था कि प्रीति के साथ उसका सम्बन्ध उस सीमा तक न बढ़ता।

लेकिन जो होना था वह होकर रहा। शारदा ने उसका तिरस्कार कर दिया। सीमा प्यार के पथ पर बहुत मंद गति से चल रही थी। नयन बहुत दिनों तक रहस्यमयी बनी रही।

जिस दिन जगदीश और प्रीति ने एक-दूसरे के प्रति आत्म-

समर्पण किया, उस दिन जगदीश को लगा कि एक बवन्डर था जो सहसा शान्त हो गया, एक आग थी जो धीरे-धीरे बुझ गई, एक बाढ़ थी जो धीरे-धीरे उतर गयी। यह अनुभव उसे कुल मिलाकर बहुत फीका लगा। लौटकर वह इस बात पर आश्चर्य करने लगा कि संसार में करोड़ों आदमी नारी के आत्म-समर्पण के लिए इतने आकुल क्यों रहते हैं! इस अनुभव में आगे चलकर थोड़ा परिवर्तन हुआ; लेकिन मूलभूत सत्य ज्यों का त्यों बना रहा। भाव की तीव्रता कम होने लगी, कुंठित होने लगी, मिटने लगी। जगदीश सुख नहीं चाहता था, चाहता था उस आवेश को बनाये रखना जो उसके मन में प्रीति को देखते ही उग आया था और बराबर बढ़ता ही जा रहा था। इस आवेश के सामने जो सुख उसे मिला था, वह उसे बहुत तुच्छ लगा। प्यार की तीव्रता को बनाये रखकर यदि उसे शरीर का सुख मिलता तो वह उसका स्वागत करता; लेकिन प्यार की उद्दाम भावना को वह किसी भी मूल्य पर खोना नहीं चाहता था। नहीं, शारीरिक सुख के उपभोग के मूल्य पर तो नहीं ही। वह केवल इतना चाहता था कि भावना की जिस तीव्रता, जिस गहराई, जिस कोमलता और जिस रम्यता का अनुभव उसने प्रथम दर्शन के दिन किया था, वह अंत तक बनी रहे। वह अपनी बात किसी को समझा नहीं सकता था; लेकिन शरीर के बदले में प्यार को खोकर वह बहुत दुःखी हुआ...बहुत दुःखी...सचमुच दुःखी।

जगदीश जब डा० माथुर के बँगले पर पहुँचा तो उनकी कार जा चुकी थी और प्रीति स्नान कर रही थी। जगदीश फाटक बन्द करके ड्राइंगरूम से होता हुआ प्रीति के छोटे कमरे में सोफे पर आ बैठा। वह वहीं बैठा हुआ बँगले के एक-एक कोने को अपनी स्मृति में लाने लगा—उन कोनों को जहाँ वह प्रीति को घेरे-घेरे फिरताा था और जहाँ उसने उसका अनेक बार आलिंगन किया था। एक पल के लिए उन सभी स्थानों पर उसे रोमांच की शत-शत पंखुरियाँ झरती दिखाई दीं। उसे लगा वह वहीं बैठा-बैठा सभी कोनों में घूम आया है।

प्रीति ने चाय लाकर रख दी। जगदीश ने चाय बनाने के लिए हाथ बढ़ाया ही था कि प्रीति ने उसे रोककर कहा—अभी नहीं। और वह उसकी गोद में आ बैठी। जूड़ा खोलकर उसने अपने बाल बिखेर दिए और जगदीश को उनमें पूरा ढक दिया और उसके कंधे पर सिर रखकर उसके वक्ष से लगी बैठी रही। जगदीश की स्फूर्ति सहसा लौट आई और उसने अपनी गर्दन मोड़कर उसके कंधे को ओठों से छुआ भर।

"प्रीति!"

"चुप रहो।"

"प्रीति, मेरी बात सुनो।"

प्रीति बोली, "मुझे कुछ नहीं कहना है। कुछ नहीं सुनना है। मुझे सब मालूम है। बोलो नहीं।"

थोड़ी देर में प्रीति स्वयं ही हट गयी और चाय बनाने लगी। चाय का प्याला उसकी ओर बढ़ाते हुए उसने कहा, "अब बताओ, क्या कहना है? अच्छा, तुम कुछ न कहो, मैं ही बताती हूँ। प्यार एक ही चीज़ है, लेकिन उसके प्रति नारी का दृष्टिकोण कुछ और होता है, पुरुष का कुछ और। प्यार में नारी कुछ और चाहती है, पुरुष कुछ और। यह तो दृष्टिकोण का भेद है। चिरंतन काल से यह चला आ रहा है और अनन्त काल तक चलता रहेगा। दोनों दो हैं, इसीलिए दो तरह की बातें सोचते हैं। नारी को जो पाना है, उसके लिए वह प्रयत्न करेगी, पुरुष को जो लेना है, वह लेगा ही। इसमें चाहे कुछ बने, कुछ बिगड़े—प्रकृति की प्रेरणा अपना काम करेगी ही। तुम्हारे मन की जो स्थिति है, उसे मैं समझती हूँ; लेकिन तुम्हें कुछ कहने नहीं दूँगी। जहाँ तक मेरा सम्बन्ध है, मेरे जीवन में यह बाढ़ आने वाली ही थी, वह चाहे विवाह के पूर्व आती, चाहे विवाह के बाद। वह विवाह के पहले ही आ गयी, यह दूसरी बात है। यह बाढ़ प्रत्येक नारी के जीवन में आती है—किसी के जीवन में एक बार, किसी के जीवन में

बार-बार। कुछ इस बाढ़ को लौटा देती हैं, कुछ इसमें बह जाती हैं, कुछ डूब जाती हैं, कुछ इसका आनन्द लेती हैं। मैंने इसका आनन्द लिया है। तुम्हारे मन की जो दशा है, वह बहुत स्वाभाविक है। उसे और कोई समझ सके या नहीं; पर मैं समझ सकती हूँ। मर कुछ नहीं गया है जगदीश। मैं भी नहीं मर गयी हूँ। मैं तुम्हारे हृदय में केवल सो गई हूँ। लेकिन जब तक जीवन है, मैं बार-बार तुम्हारे हृदय में जगूँगी—बार-बार। इस छोटी-सी बात के लिए तुम मुझसे भागते क्यों फिरते हो?"

जगदीश ने जवाब कुछ भी नहीं दिया। उसने केवल अपनी आँखें मींच लीं। आँखों से आँसू की दो गरम बूँदें बहकर कपोल को शीतल करती हुई ढल गईं।

प्रीति ने फिर उसे अपने बालों में ढक लिया।

३२

प्रीति और जगदीश के व्यवहार में मनुष्य के स्वभाव का ही अभी तक बहुत बड़ा हाथ था। उसे नारी का स्वभाव भी कह सकते हैं। जगदीश को ऐसा लगता था कि उसे कहीं जाने के लिए कोई प्रेरित कर रहा है। अपने को बहुत रोकने पर भी वह रोक नहीं सकता था। प्रीति सामने पड़ गई, उसके प्रति आकर्षण उत्पन्न हो गया। पहले दिन ही उसने जो कहा, वह सच पूछिए तो कहना नहीं चाहिए था। लेकिन जैसे बलपूर्वक वैसा किसी ने उससे कहला लिया हो और आश्चर्य की बात यह है कि जिस बात पर प्रीति को अप्रसन्न होना चाहिए था, उस पर वह भीतर से पुलकित हो उठी। सम्बन्ध कुछ बढ़ा, कुछ उसमें बाधा पड़ीं; पर फिर वह स्वाभाविक हो उठा। दोनों किस ओर जा रहे हैं, इसका उन्हें पता

ही नहीं चला । जगदीश सोचता—कब अनुकूल समय मिले कि वह प्रीति के यहाँ जाय और प्रीति उसकी प्रतीक्षा करते उसे मिलती । यह आकर्षण और आकर्षण, उत्सुकता और उत्सुकता, आवेश और आवेश का मिलन था । दोनों दोनों को बहुत प्रिय हो उठे थे और एक दिन उनके बीच का सारा अंतर मिट गया । दोनों एक हो गये ।

जगदीश के कई रविवार बहुत सुख में बीते । प्रीति के भी । वे एक प्रकार के बेहोशी के दिन थे, जिनके एक-एक पल के सुख का वर्णन नहीं किया जा सकता । उन्हें उन दोनों ने मिलकर भोगा था । चारों ओर उन्हें सुख के अतिरिक्त और कुछ दिखाई न देता था । एक-एक वस्तु से आनन्द और रस बरसता दिखाई देता था । जितना वे छिपकर मिलते, उतना ही उन्हें अधिक अच्छा लगता । सुख के जितने रूपों की भी वे कल्पना कर सकते थे, उसे उन्होने उतने ही रूपों में सत्य में परिणित किया, जितने भी रूपों में उसे भोग सकते थे, उसे उन्होने भोगा । दोनों के मन में कोई भय, कोई आशंका नहीं थी । भविष्य की कोई चिंता नहीं थी । उनके जीवन में गहरे सुख के जो पल आये, उनका उन्होंने अपनी पूरी तन्मयता से स्वागत किया ।

लेकिन इतने बड़े सुख के भीतर कितना बड़ा दुःख झाँक रहा था, इसका अनुमान जगदीश को न था । वह अनुमान करने की बात ही न थी । उसका तो सीधा सम्बन्ध अनुभव से था । बिना उस स्थिति से गुज़रे कोई भी उसका अनुमान लगा ही नहीं सकता था । जगदीश का लक्ष्य भोग न था, प्रेम ही था । भोग तो अनजाने बीच में आ गया था । उसने धीरे-धीरे पाया कि भोग जैसे-जैसे बढ़ता जाता है, प्रेम वैसे ही वैसे कम होता जाता है । इस अनुभूति के मन में जगते ही वह काँप उठा । क्या यह भोग प्रेम को पूरा निगलकर ही रहेगा, उसने सोचा । नहीं, मै ऐसा नहीं करने दूँगा ।

एक रात वह दुबे के पास गया। उसे खींचकर वह नदी किनारे ले गया। वहाँ कॉलेज की एक छोटी-सी नाव थी। वह उसने खोल दी।

"दुबे, मैं तुमसे कुछ बात करना चाहता हूँ।" और ऐसा कहकर दुबे का हाथ पकड़कर उसने उसे नाव में बिठा लिया।

"ऐसी अँधेरी रात में?'

"हाँ। तारों का उजाला तो है।"

"लेकिन कितनी तेज़ हवा चल रही है।"

"नाव बहाव की ओर ले चलेंगे। इधर से तो कोई बात ही नहीं है। उधर से धीरे-धीरे आयँगे। खेना तुम भी जानते हो और मैं भी। तुम थक जाओ तो डॉड़ मुझे दे देना।" और ऐसा कहकर नाव उसने छोड़ दी। दुबे बे-मन से बैठा रहा। वह जानता था कि विरोध करने से कोई फल नहीं निकलेगा। जगदीश के साथ कई बार इस प्रकार की घटनाएँ हो चुकी थीं। और सच बात यह है कि वह जगदीश को प्यार भी बहुत करता था। श्याममोहन चड्ढा से जगदीश की घनिष्ठता बहुत ऊपरी थी। वह एक प्रकार से स्वार्थ का ही सम्बन्ध था। लेकिन सुशील से मित्रता का स्तर ही भिन्न था।

जब वे दोनों काफ़ी दूर निकल गये तो सुशील ने चिढ़कर कहा, "अब कुछ कहेगा भी ··"

जगदीश बोला, "बात बहुत महत्वपूर्ण है दुबे; लेकिन इसे तुम शायद ही समझ सको। बिना प्यार किए और उसे खोये, इस बात को कोई भी नहीं समझ सकता···"

सुशील ने स्वीकार किया कि वह किसी के प्यार में है। जगदीश ने पूछा, "सच?"

"हॉ, सच। मैं तेरे सर की सौगंध खाता हूँ।"

"हट साले, मैं मर जाऊँगा तो तेरा क्या बिगड़ेगा?"

"तो तुझे कैसे विश्वास होगा?"

"अच्छा, अगर तूने प्यार किया है तो बतला कि संसार में सबसे सुन्दर वस्तु क्या है ?" जगदीश ने पूछा।

"नारी का वक्ष।" दुबे ने उत्तर दिया। और वह हँसता रहा··· हँसता रहा।

जगदीश चुप हो गया। नाव बहती रही।

"अब या तो तू बात बता, नहीं तो मैं तुझे इस नाव में से उठाकर फेंक दूँगा।"

"कहना मैं यह चाहता हूँ कि प्रेम में शरीर आने से प्रेम मर जाता है···"

"अबे उल्लू, इतनी-सी बात कहने के लिए तू मुझे होस्टिल से उठाकर इस तेज़ हवा और अँधेरी रात में इतनी दूर लाया है ?"

"हाँ। और मैं तुमसे भी कहता हूँ कि तुम यदि किसी को प्यार करते हो तो शरीर को अपने प्यार के बीच में मत आने देना···"

"प्यार को तुम क्या समझते हो ?" दुबे ने पूछा।

"प्यार एक भावना है—अन्तःकरण की सबसे कोमल, सबसे सुन्दर सबसे गहरी, सबसे व्यापक, सबसे आकर्षक, सबसे दुर्दमनीय भावना···। स्त्री-पुरुष के बीच स्थायी आकर्षण की भावना है यह।"

"आकर्षण का अर्थ एक-दूसरे की ओर खिचना ही तो है ?"

"है तो।"

"तो खिंचकर वे एक-दूसरे की ओर नहीं आयँगे ?"

"आयँगे।"

"तो एक दूसरे को छुएँगे नहीं ?"

"छुएँगे।"

"तुम प्रेम के जीवन से चुम्बन को मिटा सकते हो ?"

"नहीं।"

"तुम प्रेम के जीवन से आलिंगन को हटा सकते हो ?"

"नहीं।"

"फिर ?"

"लेकिन—बस। इसके आगे नहीं।"

"क्यों नहीं ?"

"आकर्षण का भी एक रहस्य है। वह उसी समय तक बना रहता है, जब तक हम पूरा किसी को जान नहीं लेते। भोग का जीवन व्यतीत करने पर स्त्री-पुरुष में जानने को कुछ भी शेष नहीं रह जाता। विवाह की वह सबसे बड़ी आवश्यकता हो सकती है, लेकिन भोग प्रेम के जीवन का विष है। मै बहुत स्पष्टता से पुकार-पुकार कर कहना चाहता हूँ दुबे कि प्रेम में शरीर समर्पित करना प्रेम की अपने हाथ से हत्या करना है, आकर्षण को जड़-मूल से उखाड़कर फेंक देना है। यदि मेरी पुकार किसी तक पहुँच सकती है, तो मैं संसार की प्रत्येक प्रेमिका से कहना चाहता हूँ कि तुम्हारे मन में जो आवे, वह करना; लेकिन प्रेम में अन्तिम कर्म को बचा जाना।"

"यह अपील प्रेमिकाओं से ही तुम क्यों करना चाहते हो, प्रेमियों से क्यों नहीं ?"

"मुझे ऐसा लगता है दुबे कि प्रेम में शरीर पुरुष भी चाहता है; फिर भी उसकी प्रेमिका न चाहे तो वह अधिक हठ नहीं कर सकता; लेकिन न जाने क्या बात है कि जब स्त्री किसी को प्यार करती है तो शरीर को नहीं बचाना चाहती। उसे निश्चित रूप से समर्पित करना चाहती है। इसके बिना उसे अपना प्यार जैसे अधूरा लगता है। लेकिन ऐसा करके रोती भी सबसे अधिक वही है।"

"तो तुमने कहीं प्यार किया था ?"

"हाँ।"

"और बीच में शरीर आ गया ?"

"हाँ।"

"और तुम समझते हो कि वह प्यार मर गया।"
"हाँ।"
"उल्लू कहीं का।"
नाव लौट पड़ी।

३३

गुरु की दूकान में चाय पीने वाले आज कुछ अधिक कोलाहल कर रहे थे। यह जगदीश को बहुत बुरा लग रहा था। वह चाहता था कि आज कोई कुछ न बोले। लेकिन यह तो सम्भव नहीं था। उसकी इच्छा हुई कि उठकर कहीं चला जाय। लेकिन वह जो बैठ गया सो बैठ ही गया।

उसकी दशा उस व्यक्ति की-सी थी जिसे स्वर्ग में रहने के लिए स्थान मिल गया हो और फिर उसे सहसा वहाँ से निकाल दिया गया हो। वह उस मूर्तिकार के समान था जिसने वर्षों के परिश्रम से मूर्ति बनाई हो और एक दिन वह सहसा उसी के हाथ से गिरकर टूट गयी हो। उसका जीवन उस पहाड़ी सोते जैसा था जिसकी धारा ठीक मार्ग से हटकर इधर-उधर भटकने के कारण नदी न बन पायी हो। इस मनोदशा से उसका कब छुटकारा होगा, उसे पता न था।

इतने में श्याममोहन सामने से आता दिखाई दिया।

"क्या बात है, बहुत दिनों से तुम यहाँ दिखाई ही नहीं दिए?" चड्ढा ने पूछा।

"मैंने एक ट्यूशन कर लिया था श्याममोहन। शाम को वहाँ पढ़ाने जाता था, इसी से यहाँ कुछ देर से आना होता था।"

"किसका ट्यूशन था ?"

"एक मुसलमान लड़की का। उसका विवाह होने वाला है, इसलिए वह ट्यूशन छूट गया।"

"तो क्या इसीलिए उदास हो ?"

"नहीं रे।"

"तुमने मुझसे नहीं कहा। दो चार का प्रबन्ध तो मैं ही कर देता।"

"हो सके तो एक का कर देना।"

"हाँ-हाँ, जब कहो तब। तुम तो अब डाक्टर माथुर के यहाँ भी बहुत नहीं जाते।"

"हाँ, बहुत दिनों से नहीं गया। तुम्हारे प्यार के क्या हाल-चाल हैं ?"

"अरे यार, आजकल न जाने क्या बात है कि प्रीति की मनोदशा ही बदली हुई है। कहती है : प्यार की पवित्रता का अपना ही महत्व होता है। यह पवित्रता क्या होती है ?"

"कुछ ऐसा मतलब होगा कि आदमी प्यार करे तो वासना को उससे दूर रखे।"

"वासना भी तो जीवन का अंग है। वह कहाँ जायगी ?"

"उसके लिए विवाह है तो सही।"

"तो आपका तात्पर्य यह है कि आदमी विवाह एक से करे, प्यार दूसरे से ?"

"प्यार तो सब नहीं कर सकते चड्ढा, और जो लोग प्रेम के उपरांत भी विवाह करते हैं, वे भी उसे कहाँ निभा पाते हैं। शायद ही कोई प्रेम-विवाह सफल होता हो। प्रेम के संबंध को जब कभी भी तुम विवाह के स्तर पर लाने का प्रयत्न करोगे, तभी वह टूट जायगा।"

"तो तुम समझते हो पति-पत्नी के बीच का सम्बन्ध प्रेम का संबंध नहीं होता ?" चड्ढा ने कुछ झुँझलाकर पूछा।

जगदीश ने बहुत शांत भाव से उत्तर दिया, "हाँ, मैं ऐसा ही कुछ-कुछ मानता हूँ। प्रेमी और प्रेमिका के बीच जो सम्बन्ध होता है, उससे वह कुछ भिन्न ही प्रकार का होता है। उसे तुम प्रेम से बड़ा संबंध भी कहो तो मुझे कोई आपत्ति नहीं है। वह दृढ़ भी कम नहीं होता। लेकिन उसकी दृढ़ता के पीछे और बहुत से तत्व काम करते हैं। वह बहुत कुछ संस्कारों से शासित होता है। संस्कारों की शक्ति को तुम जानते ही हो। उसके मूल में धर्म रहता है। यह नींव भी बहुत ही दृढ़ होती है। फिर संतति का मोह बीच में आजाता है। वह भी बहुत ही प्रबल बंधन है। और फिर सबसे ऊपर लोकलाज है, मर्यादा है, समाज है...। तो तुम्हारे प्रेम का बंधन अब कुछ ढीला पड़ रहा है ?"

"नहीं, ऐसा तो नहीं है। दो दिन भी नहीं जाता, तो बेचैन हो जाती हैं। पचास ढंग से पचास प्रश्न पूछती हैं : कहाँ था ? क्या कर रहा था ? क्यों नहीं आया ? इधर जब से ट्यूशन छूट गया है, तब से मुझे और भी अधिक चिंता है। कहीं ऐसा न सोचें कि मैं केवल पैसे का ही भूखा था।"

"और क्या कहती हैं ?"

"और तो सब ठीक है यार, लेकिन थोड़ी-सी बात आगे बढ़ाओ तो वह पवित्रता वाली दीवाल बीच में खड़ी कर देती हैं। हम तो परेशान हैं इस पवित्रता से। लेकिन सच पूछो, तो मेरा प्रेम प्रारंभ से ही अत्यंत पवित्र रहा है। मैं तो प्रेम क्या करता हूँ, उनकी पूजा ही करता हूँ। इतना ही चाहता हूँ कि मेरी पूजा का यह अधिकार बना रहे।"

"तुम तो चड्ढा, बहुत ऊँचे आदमी निकले। हम तो तुम्हें अभी तक कुछ ऐसे ही समझते थे।" जगदीश ने हँसकर कहा।

"मुझे मालूम है तुम मुझे लफंगा समझते हो।" चड्ढा ने चिढ़कर कहा।

"अब एकदम लफंगा तो नहीं, लेकिन हाँ, इससे कुछ मिलता-

जुलता समझते रहे हैं। तुम चाहो तो नाराज़ हो सकते हो; लेकिन हाँ, अब जरूर तुम में कुछ परिवर्तन आ रहा है और यह सब कुछ है प्रीति के प्रभाव के कारण, इसे चाहे तुम मानो या न मानो।"

"यह तो मानता हूँ यार; पर मुझे सारा डर यह है कि वह कहीं भीतर से मुझे प्यार न करती हो और यह पवित्रता की बात सब ऊपरी हो।"

"तो तुम इस संदेह को स्पष्ट कर लो न ?"

"नहीं। अपना सिद्धांत तो यह है कि जिसमें अपनी प्रेमिका ख़ुश, उसमें हम ख़ुश। उसका मज़ाक का मूड देखा तो मज़ाक कर बैठे। वह गंभीर हुई तो स्वयं गंभीर हो गए। वह यदि कहे कि प्रेम जैसी कोई चीज़ नहीं, तो हम भी उसी स्वर में कहेंगे, बिल्कुल यही बात है, और अगर उसका यह विचार हो गया है कि प्रेम के माने हैं पूजा तो अपनी साँस-साँस से यही ध्वनि निकलेगी कि आप ही वह ईश्वर हैं जो इस सृष्टि को चला रही हैं।"

"लेकिन चड्ढा तुम ठीक से क्या मानते हो ?"

"भई, मैं तो यह मानता हूँ कि प्यार में आदमी का व्यवहार, बहुत ही नॉर्मल होना चाहिए।"

"लेकिन भाई मेरे, यह तो भाव ही ऐबनॉर्मल है; फिर इसमें व्यवहार कैसे नॉर्मल होगा ?"

"यह भी तुम ठीक कहते हो।"

"अब चड्ढा, यह तो अपनी प्रेमिका वाली टेकनीक तुमने मुझ पर प्रयोग करनी प्रारंभ कर दी।"

चड्ढा हँस पड़ा।

३४

जगदीश जब इंटर में पढ़ता था, तभी उसे ऐसा लगता था कि उसके हृदय में कुछ घुमड़ रहा है और अपनी अभिव्यक्ति चाहता है। वह कई बार कागज़ पेंसिल लेकर बैठा, लेकिन कुछ लिख नहीं सका। अतः उसने वह छोड़ दिया। अभिव्यक्ति की इच्छा बीच-बीच में उसे बेचैन करती रही। कविता के लिए वह चाहता था कि वह अनायास फूटे! उसे प्रयत्न न करना पड़े। साहित्य में वह युग कविता का ही था। हर तीसरे चौथे वर्ष कोई न कोई ऐसा काव्य-ग्रन्थ प्रकाशित होता था जिसकी धूम मच जाती थी। जगदीश उन रचनाओं को पढ़कर आत्म-विभोर हो जाता। वह प्रायः अपने से पूछता : क्या वह भी कभी ऐसा लिख सकेगा? लेकिन उससे तो कुछ लिखा ही नहीं जा रहा था। उसे लगता था कि उसके मन की गुहा पर किसी ने शिला रख दी है जिसके कारण भावना का निर्मल जल बाहर प्रवाहित ही नहीं हो पा रहा है। कभी-कभी उसे लगता, जल की यह धारा बहुत वेगवती है। फिर भी उस शिला को वह कहीं से तोड़ नहीं पारही थी। उसे विश्वास था कि किसी दिन यह शिला टूटेगी, या खिसकेगी या पिघलेगी और भीतर की उद्दाम धारा अपना मार्ग पायेगी। कैसे, कब, क्या होगा, वह जानता नहीं था; इसी से जब वह कविता नहीं लिख पाया तो उसने डायरी लिखनी प्रारम्भ की।

कानपुर आते समय नयन के रूप को देखकर वह फिर एक बार आत्म-विभोर हो गया था और उसके सम्पर्क में आने का उसने प्रयत्न किया। उसी डिब्बे में एक वेश्या को देखकर उसका मन क्षुब्ध भी हुआ था। ये दोनों भावनाएँ एक कोटि की न होकर अपनी अपील में एक-सी थीं। नयन की कोठी में उसका कमरा ऐसे स्थान पर था जहाँ वह प्रकृति के सम्पर्क में निरन्तर रहता था। सूर्योदय और सूर्यास्त दोनों का दृश्य

वह वहाँ से देखता। उसके कमरे के पीछे एक विस्तृत उद्यान था। अपनी खिड़की के पास जब वह बैठता तो पास ही हरसिंगार के वृक्ष और कुछ दूर पर गुलाबों की पंक्ति उसे दिखाई देती। हरसिंगार के वृक्ष से कुछ दूरी पर चंपा का एक पेड़ था। उससे कुछ और दूरी पर कनेर के वृक्ष थे जो पीले फूलों से लदे रहते।

यहाँ आते ही वर्षा प्रारम्भ हो गई थी और उसने कजरारे काले बादलों को मतंगों के समान झूमते-उमड़ते देखा था। उसकी आँखों के सामने शरद् ऋतु आई और हरसिंगार का पेड़ आँसू जैसे फूलों से भर उठा। शिशिर में वृक्षों के पत्ते पीले पड़कर उसकी आँखों के सामने झरने लगे। बसंत आया तो पाटल खिल उठे, सुरभित समीर बहने लगा। आम की डालें मंजरियों से भर उठीं। कोकिल उनमें छिपकर कूकने लगी।

इस बीच वह बानू, सीमा और कालिंदी के सम्पर्क में भी आया था। कालिंदी वाली घटना तो पानी पर लकीर की तरह सिद्ध हुई; लेकिन बानू के खाना खिलानेवाली घटना को वह जीवन भर नहीं भूल सका। सीमा के सौंदर्य और व्यवहार ने उसके मन में कोमलता भर दी। उसे लगा अन्तर के उद्गम पर रखी चट्टान अब थोड़ी रिसती जा रही है। शारदा की जब उसे याद आती तो लगता, हृदय के शांत सरोवर में किसी ने पत्थर का कोई नुकीला टुकड़ा फेंक कर उसे अशांत कर दिया है।

इस प्रकार उसके अंतःकरण में कभी प्रकृति की रम्यता, कभी अनुराग की उष्णता, कभी सौंदर्य की कोमलता, कभी क्षोभ की लहरी जगती। कभी-कभी विरोधी भावनाएँ एक साथ उमड़कर उसके मन को न जाने कैसी दशा में छोड़ जातीं।

एक प्रभातकाल में जब उसने अपनी खिड़की के बाहर झाँका तो मन को आवश्यकता से अधिक सजग और स्फूर्तिमय पाया। शरद ऋतु थी। सूर्योदय बेला। हरसिंगार के वृक्ष के नीचे फूल झरे पड़े थे। उसे लगा उसके अन्तर से आज कुछ उमड़ने वाला है। वह कागज़-पेंसिल लेकर

बैठ गया। धीरे-धीरे आत्म-विस्मृति की दशा में वह खो गया। उसने देखा रेल की खिड़की के सहारे एक लड़की बैठी है। वह उसके सामने खड़ा है और उससे पूछ रहा है : क्या आप प्यासी हैं ? लड़की कहती है : ना। वह इस दृश्य को, इस रूप को, अपने मन की इस दशा को चित्रित करना चाहता है। छंद कोई हो, शब्द कैसे ही हों, पर चित्र पूरा उतरना चाहिए। उसने खिड़की के बाहर ताका। हरसिंगार का वृक्ष उसे न जाने कैसा आमंत्रण दे रहा था। रेल की खिड़की वाला दृश्य न जाने कैसे उसकी आँखों के सामने से तिरोहित हो गया। बहुत प्रयत्न करने पर भी वह मुख अब दिखाई नहीं देता। उस मुख को याद करता है तो हरसिंगार के फूल आँखों के सामने आ जाते हैं। अतः थोड़ी देर में एक रचना पूरी हो गई। उसका शीर्षक रखा उसने—शेफाली। यह उसकी पहली रचना थी। उसे पूरा करके उसने एक प्रकार से अलौकिक आनन्द का अनुभव किया, उसे पढ़कर एक प्रकार की तृप्ति का। उसने सोचा कि यदि इस प्रकार की वह बहुत-सी कविताएँ लिख सका और किसी दिन उसका संग्रह प्रकाशित हुआ, तो उसका नाम वह रखेगा—शेफाली। इसके उपरांत न जाने क्यो उसने थोड़ी थकावट का अनुभव किया। खिड़की से पवन के प्रभातकालीन झोंके आने लगे और वह झपकी लेकर सो गया।

कविताओं का यह क्रम चल पड़ा। एक दिन उसने 'वर्षा के बादल' शीर्षक रचना लिखी, दूसरे दिन 'वसंत' पर। तीसरे दिन 'प्रभात' और 'चाँदनी रात' पर। एक रात ऐसी भी आई जब उसने एक साथ दो कविताएँ लिखीं। एक का शीर्षक रखा 'रेल की खिड़की में', दूसरी का 'वेश्या'। एक दिन वह क्लास में पढ़ रहा था कि उसका मन अपने गाँव की ओर उड़ गया। दूसरे, लड़के जब नोट्स लेते रहे, तब जो पंक्तियाँ उसने लिखीं उन्हें शीर्षक दिया—'मेरे गाँव की संध्या' का। मथुरा से लौटने के उपरांत उसने 'दुलहिन' की रचना की। इस कविता को पढ़कर वह स्वयं हँस पड़ा। इसमें उसने ऐसी

कल्पना की जैसे उसका विवाह हो गया है और उसकी दुलहिन उसके घर के आँगन में नूपुर खनकाती, मन में भावों का तूफ़ान उठाती, कोने-कोने को जगमगाती, स्नेह-सुधा बरसाती घूम रही है। यह कविता आगे चलकर बहुत प्रसिद्ध हुई। बानू के यहाँ जिस दिन उसने खाना खाया था, उस रात को उसने एक दूसरी ही कविता लिखी—'ईमान का प्रश्न'। इसमें घटना को उसने बिल्कुल ही बदल दिया था, यद्यपि स्प्रिट उसकी वही थी। इनके अतिरिक्त उसने कुछ ऐसी कविताएँ लिखीं जिनसे उसके मन की पीड़ा का आभास मिलता था। इनके मूल में संभवतः उसके बचपन की साधन इंदुकुँवरि थी।

अपने प्रारंभिक रचना-काल में उसे कई बातों का पता चला। पहली यह कि कविता मन के संस्कार को व्यक्त करती है। यह संस्कार तात्कालिक भी हो सकता है और बहुत प्राचीन भी। मन पर न जाने कितने प्रभाव रात-दिन पड़ते रहते हैं। उनमें से कौन कब अभिव्यक्ति पायगा, इसका पता कवि को नहीं रहता। यदि वह प्रेरणा से लिखता है तो यह उसके हाथ की बात नहीं है कि उसके गीतों का विषय क्या होगा। दूसरे, मन में जो घटनाएँ छिपी रहती हैं, वे उसी रूप में व्यक्त नहीं होतीं। उनमें बहुत उलटफेर हो जाता है। प्रकृति सम्बन्धी रचनाओं के लिए भी यह आवश्यक नहीं है कि जो सामने हो, वही अभिव्यक्ति पाये। वर्षा ऋतु में काले बादलों पर भी रचना लिखी जा सकती और पतझर पर भी, यदि कवि ने इससे पहले पतझर देखा है तो। नारी के सौंदर्य-वर्णन में भी किसी का रूप किसी के साथ मिलकर नए सौंदर्य की सृष्टि कर सकता है। सबके ऊपर यह कि जो अनुभव है, उसे भाषा व्यक्त करने में प्रायः असमर्थ रहती है; लेकिन कभी-कभी ऐसा भी होता है कि वास्तव में जो था, उससे कहीं सुन्दर चित्रण काव्य के माध्यम से हो जाता है।

सीमा के शालीन रूप ने कविता लिखने की जगदीश को कोई प्रेरणा नहीं दी। उसके सम्पर्क का बहुत ही सौम्य प्रभाव उसके मन पर पड़ता

था। यह नहीं कि बीच-बीच में वह भाव के संकेत नहीं करती थी; पर प्रायः वह अपनी भावनाओं को दबा जाती थी। वह न स्वयं बहुत खुलती थी और न दूसरे को खुलने देती थी। उसकी तुलना में कालिंदी एकदम खुली हुई थी। अतः जगदीश कालिंदी से जैसे अप्रभावित-सा था, वैसे ही सीमा से असन्तुष्ट भी! लेकिन मन के इस असन्तोष को वह व्यक्त भी तो नहीं कर सकता था। कालिंदी की मुसिकान का प्रभाव ऐसा था जैसे वह एकदम खुले मैदान में आ गया है, पर जब सीमा से मिलकर लौटता तो उसे लगता जैसे वह जाड़ों की हल्की धूप हो, ग्रीष्म का छायादार वृक्ष हो, वर्षा का इन्द्रधनु हो, एकान्त में बहती कोई मन्दगामिनी सरिता हो। रात को सोने से पहले उसे प्रायः प्रीति की याद आती, और वह कुछ लिखने का प्रयत्न करता। कविता जब उसके हृदय से नहीं निकली, तो उसने सोचा डायरी प्रारम्भ कर दे। लेकिन जो लिखा गया उसने गद्य-गीत का सा रूप धारण कर लिया; अतः उसने इसी माध्यम को अपना लिया। सामना होने पर जो वह प्रीति से नहीं कह पाता था, वह अपने गद्य-गीतों में कहने लगा। इनका प्रारम्भ उसने एक स्वप्न से किया था। हुआ यह कि एक रात उसने प्रीति को स्वप्न में देखा। नदी के एक किनारे पर वह खड़ा है, दूसरे पर प्रीति। उसकी आँख खुली तो वह उस स्वप्न का वर्णन करने बैठ गया। उसकी इच्छा हुई कि वह इसी समय जाकर यह गद्य गीत प्रीति को सुनाये। फिर उसे अपनी स्थिति का ज्ञान हुआ। बहुत देर तक उसे नींद नहीं आयी। और तब एक दिन वह भी आया जब प्रीति उससे घनिष्ठ हो गयी और इन गद्य-गीतों का लिखना बन्द हो गया।

कानपुर में उन दिनों कवि-सम्मेलनों की धूम थी। लेकिन दुःख की बात यह थी कि जिन रचनाओं को जगदीश सुनाना चाहता था, उन्हें कोई न सुनता था। उससे प्रायः 'दुलहिन' और 'वेश्या' वाली कविताओं की माँग होती। कभी-कभी कोई उससे 'रेल की खिड़की में' शीर्षक रचना

को पढ़ने के लिए भी कहता। ये तीनों रचनाएँ पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हो गई थीं। इन्हीं रचनाओं में 'उनसे' शीर्षक रचना भी थी जिसकी चर्चा मथुरा में चन्द्रा और यमुना ने की थी। यह कविता किसी अज्ञात प्रेरणा से लिखी गई थी।

इस आत्माभिव्यक्ति से कुछ आत्म-सन्तोष तो जगदीश को हुआ। उसे कुछ यश भी मिला। लेकिन जीवन की तृप्ति उससे बहुत दूर थी।

३५

डा० माथुर के बँगले पर शहनाई बजने लगी। प्रीति का विवाह अरविंद के साथ हो रहा था, इससे दमयंती बहुत प्रसन्न थी। दुःख भी उसे कम नहीं था। अकेली लड़की थी। अत्यधिक प्यार से उसने उसे पाला था। अब वह दूर चली जायगी और दमयंती का घर सूना हो जायगा। अकेली संतान होने से यही तो होता है। राजनाथ ने उसे अनेक बार समझाया था कि लड़की तो पराये घर का धन है, उसे कब तक घर में रखा जा सकता है; लेकिन दमयंती की आँखें बार-बार भर आती थीं। इसका परिणाम यह हुआ कि डा० माथुर ने दमयंती के सामने पड़ना कम कर दिया। प्रीति ने भी मा को समझाया : मा मैं कोई इतनी बड़ी तो थी नहीं कि घर के लिए भारी हो गयी थी। मुझसे बड़ी अवस्था की मेरी सहेलियाँ बैठी हुई हैं और उनके मा-बापों ने अभी लड़के देखने भी प्रारम्भ नहीं किये हैं। दमयंती ने कहा : यह तो ठीक है बेटी; लेकिन फिर ऐसा लड़का नहीं मिलेगा। अरविंद ज़रूर किसी दिन बहुत बड़ा अफ़सर होगा और जब तू राजरानी की तरह रहेगी, तब मुझे याद करेगी। न मैं लड़कियों को अधिक पढ़ाने के पक्ष में हूँ और न उन्हें अधिक बड़ा

करके विवाह करने के पक्ष में। यह आधुनिकता मुझे अच्छी नहीं लगती। मैंने तुम्हें थोड़ी शिक्षा दिलवा दी। तुम्हारा पति चाहेगा तो आगे शिक्षा दिलवा देगा। अब यह उसका उत्तरदायित्व है। तुम्हारे पिता की इच्छा न होने पर भी बचपन से ही मैंने तुम्हें घर का सारा काम-काज सिखाया है। नौकर-चाकरों से घिरे रहने पर भी नारी का धर्म है कि वह घर का सारा काम स्वयं देखे। जिस नारी का अपने चौके पर अधिकार नहीं होता, अपने पति पर भी उसका अधिकार नहीं रह सकता। हमारी जाति तो वैसे भी खाने-पीने के लिए प्रसिद्ध है। जैसा खाना हमारे यहाँ बनता है, वैसा क्या किसी के यहाँ बनेगा। कायस्थ का बच्चा दस रुपये रोज़ कमाता है तो सात रुपये खाने पर ख़र्च कर देता है; लेकिन जब से ये रैस्ट्रां खुलने लगे हैं, तब से धीरे-धीरे बाहर खाने की प्रथा पड़ गयी है। अफ़सर लोगों को तो वैसे भी प्रायः बाहर खाना पड़ता हैं। लेकिन बेटी, घर के बिगड़ने का पहला बड़ा कारण यह बाहर खाना खाना है और जिसे घर में अच्छा खाना नहीं मिलेगा, वह बाहर खाने जायगा ही। यहीं से आँदमी में और अवगुण प्रारम्भ हो जाते हैं। इसी से जो मूल मंत्र मैं तुम्हें दे सकती हूँ वह यह कि चाहे तुम्हारा पति कहीं घूमे, लेकिन घर में उसे इतना अच्छा खाना मिले कि बाहर खाने को उसका बहुत कम मन करे। यदि मेरी इस छोटी-सी सीख का तुम ध्यान रखोगी तो जीवन-भर सुखी रहोगी।

लेकिन बेटी का कल्पनाशील मन न जाने कहाँ घूम रहा था। मा की यह सीख उसके कानों में पड़ी भी या नहीं, कहा नहीं जा सकता।

डा० राजनाथ माथुर के बँगले के सामने ही एक लंबा-चौड़ा स्थान ख़ाली पड़ा था। उसे साफ़ कराकर शामियाना लगवा दिया गया था। यहीं पर बरातियों का स्वागत किया गया था। राजनाथ दिल खोलकर ख़र्च कर रहे थे; अतः लड़के वाले आवश्यकता से अधिक प्रसन्न थे। अरविंद इस समय इतना उदार हो गया था कि उसने जगदीश और श्याममोहन चड्ढा दोनों को बरातियों की ओर से सम्मिलित होने का

आमंत्रण दिया। और राजनाथ की ओर से तो निमन्त्रण पत्र आदि छपवाने और उन्हें बाहर भेजने का सारा प्रबन्ध श्याममोहन ने किया ही था। चड्ढा ने प्रीति के विवाह में प्रारंभ से लेकर अन्त तक इतना काम किया जिसकी कल्पना नहीं की जा सकती थी। जगदीश तो थोड़ी देर के लिए ही आता था; लेकिन अत्यधिक व्यस्त रहने के कारण श्याममोहन सो भी वहीं जाता था। इस बीच जब भी अवकाश मिलता, प्रीति उससे बात कर जाती थी। इससे चड्ढा को काम करने के लिए और भी प्रेरणा मिलती थी।

जगदीश प्रायः पंडाल में कोने की किसी कुर्सी पर बैठा रहता। चड्ढा कभी उसे हाथ पकड़ कर भीतर ले जाता तो वह भीतर भी चला जाता। यह स्पष्ट था कि वह प्रीति के सामने नहीं पड़ना चाहता था। उसकी यह उदासीनता देखकर दमयन्ती को उस पर कुछ मोह उत्पन्न हुआ और उसने इस बात का ध्यान रखा कि वह दोनों वक्त खाना उसकी आँखों के सामने खाये। जगदीश ने जब उसे बतलाया कि भीड़ में खाना खाने का उसका स्वभाव नहीं है तो दमयंती ने उसका प्रबंध एकांत में कर दिया; लेकिन यह शर्त लगा दी कि वह रोज उसे यह बता कर जाय कि खाना उसने खा लिया है। एक दिन जब दमयंती किसी आवश्यक काम में लगी हुई थी, प्रीति उधर से निकली।

"देखो, समय नहीं है; लेकिन मेरे जाने के एक-दो दिन बाद तक चड्ढा का ध्यान रखना।"

"चड्ढा को क्या हुआ?"

"उसने मुझसे 'मैरिज' 'प्रपोज़' की थी; लेकिन वह तो संभव नहीं था; आखिर आघात तो उसे लगा ही है......"

"लेकिन वह तो बहुत प्रसन्न दिखाई देता है।"

"चड्ढा बहुत भावुक आदमी है, इसी से कह रही हूँ। बहुत प्रसन्नता भी कभी-कभी अच्छी नहीं होती।"

"अच्छी बात है।"

जगदीश खाना खाता रहा। प्रीति चली गई।

स्टेशन पर और लोगों के साथ जगदीश और चड्ढा भी प्रीति को पहुँचाने गए। अरविंद और प्रीति के लिए एक फ़र्स्ट क्लास कम्पार्टमेंट में दो बर्थ रिज़र्व करा दी गई थीं। अरविंद जगदीश और चड्ढा से प्लेटफ़ार्म पर खड़े होकर बातें करता रहा। इतने में खिड़की के सहारे बैठी प्रीति पर जगदीश की दृष्टि पड़ी। उसका मन जैसे मसोस उठा। 'मैं एक मिनट में आया', इतना कहकर वह साहस के साथ आगे बढ़ गया और प्रीति के सामने जा खड़ा हुआ।

"मुझसे कहने के लिए अब कुछ भी शेष नहीं रहा है क्या ?" प्रीति ने उच्छ्वास फेंकते हुए पूछा।

"एक दिन मैंने तुम्हें 'टैस' की कहानी सुनायी थी ?"

"हाँ।"

"उसे कभी भूलना मत, मेरा इतना ही कहना है।"

वह वहाँ से सहसा हट गया और अरविंद से जाकर बोला, "प्रीति शायद प्यासी है। उसके पास पानी का कोई प्रबंध नहीं है।" श्याममोहन की ओर मुड़ते हुए उसने कहा, "चड्ढा, देखो कहीं से एक ग्लाल लेकर प्रीति को पानी तो दे आओ।"

श्याममोहन बढ़ने ही वाला था कि अरविंद ने कहा, "नहीं-नहीं, आप क्यों तकलीफ़ करते हैं। मैं किसी नौकर से कहकर अभी प्रबंध कराये देता हूँ।"

"चलो बेटा, कहानी ख़त्म हुई।" जगदीश ने चड्ढा का हाथ खींचकर कहा।

दोनों लौट आये।

जगदीश श्याममोहन को लेकर दुबे के कमरे में गया और फिर तीनों चड्ढा के कमरे में आकर बैठ गए। सुशील ने प्रस्ताव किया कि बहुत

दिन से फ़्लश नहीं हुई है। आज हो जाय। चड्ढा ने कहा : वह बहुत थका हुआ है और सोना चाहता है। जगदीश ने बाहर आकर दुबे को कुछ समझाया और अपने कमरे में लौट आया।

दूसरे दिन जब जगदीश दस बजे कॉलेज पहुँचा तो उसने चारों ओर एक ही आवाज़ सुनी—श्याममोहन चड्ढा ने ज़हर खा लिया!

एक लड़के ने किसी दूसरे लड़के से घबराकर पूछा, "क्यों, क्या बात हुई?"

"कुछ पता नहीं चलता। प्रो० मिश्रा को पता है। सुशील दुबे कुछ जानता है।"

"लेकिन वह मर गया कि बच गया?"

"नहीं, मरा तो नहीं है।"

"इस समय अपने कमरे में है?"

"नहीं, अस्पताल में है।"

जगदीश को इस बात का बहुत पछतावा हुआ कि प्रीति ने उसे एक छोटा-सा काम सौंपा था और वह उसे कर नहीं सका। कभी उससे भेंट हुई तो क्या उत्तर देगा। अस्पताल में लड़कों की भीड़ थी; लेकिन डाक्टर ने किसी को भी मिलने नहीं दिया। इस बीच पचास तरह की अफ़वाहें श्याममोहन के बारे में फैल गयी थीं। कोई कह रहा था घर से ठीक समय पर पैसा नहीं आता था और श्याममोहन पर बहुत क़र्ज हो गया था, इसी से बेचारे ने तंग आकर आत्म-हत्या कर ली। दूसरा कह रहा था कल प्रिंसिपल ने उसे अपने कमरे में बुलाकर किसी बात पर बुरी तरह से डाटा था, इसी से क्षुब्ध होकर उसने मरने की ठानी। तीसरे ने कहा : नहीं नहीं, परसों रात मूलगंज में चड्ढा को डा० मिश्रा ने एक वेश्या के यहाँ पकड़ा। इस पर उसे इतनी लज्जा आयी कि उसने अपने प्राण देना ही ठीक समझा। इसके बाद वह किसी से कैसे आँखें मिलाता! लेकिन प्रसन्नता की बात थी कि किसी को भी ठीक बात का पता न था।

संध्या समय जब जगदीश सुशील से मिला तो उसने बतलाया, "कल रात हम उठ आये थे और इस बात का कोई संदेह तक नहीं था कि ऐसा होगा। चड्ढा की किसी बात से भी इस बात का पता नहीं चलता था कि वह अपने प्राणों पर खेल जायगा। मुझे ज़रा-सा भी खटका होता तो लाख मना करने पर मैं उसके कमरे में ही सोता। फिर भी जब मैं सुबह उसके कमरे में गया तो किवाड़ें भीतर से बंद नहीं थीं। चड्ढा चादर ओढ़े सो रहा था। मेरी इच्छा हुई कि लौट जाऊँ। फिर न जाने क्या सूझा कि मैं उसके पास गया। चादर हटाई तो चड्ढा का शरीर शिथिल पाया। वह बेहोश था। मुँह झागों से भरा हुआ था। हाथों को कहीं उठाकर रख दो, वे हरकत नहीं कर रहे थे। सिर को मैंने हिलाया तो वह एक ओर लुढ़क गया। सोचा इस समय न तो घबराने से काम चलेगा और न शोर मचाने से। मैंने किवाड़ें बंद कीं और सीधा प्रो० मिश्रा के पास गया! मिश्रा जी जैसे बैठे थे, वैसे ही उठे चले आए। रास्ते में उन्होंने मुझसे कहा, कहीं से एक कार का प्रबंध करो। मैं सीधा सुधाकर चतुर्वेदी के यहाँ पहुँचा।"

"सुधाकर कौन?"

"एक युवक डाक्टर हैं। मेरे मित्र।"

"ये कब के मित्र हैं?"

"काफ़ी दिन हो गए। केवल परिचित हैं। मित्र मैंने वैसे ही कह दिया, जैसे बातचीत में कह दिया जाता है।"

"इनकी कोई बहिन है?"

"एक नहीं, दो।"

"सुन्दर हैं?"

"हाँ यार। दिखा दूँगा किसी दिन।"

"तो आप डा० चतुर्वेदी के घर पहुँचे..."

"हाँ। उन्हें सारी बात बताई तो वे बेचारे अपनी कार लेकर आ गए।

इस बीच चड्ढा के कमरे के सामने लड़के इकट्ठे हो गए थे; लेकिन डा० मिश्रा की प्रार्थना पर सब बाहर ही खड़े रहे। सुधाकर ने कहा—यहाँ कुछ नहीं हो सकता। इन्हें अस्पताल ले चलो।"

"तुम तो सुबह वहाँ थे?"

"था तो। चड्ढा को कई उल्टी कराई गई। अब वह बच जायगा।"

अस्पताल में जगदीश और दुबे चड्ढा के पास बैठ गए। श्याममोहन ने जगदीश को बहुत करुण दृष्टि से देखा।

जगदीश ने कहा, "घबराओ नहीं। बच जाओगे।"

"लेकिन मैं बचना नहीं चाहता। अब बचकर करूँगा क्या?" चड्ढा ने हल्के स्वर में कहा।

"साँस है तो आस है।" जगदीश ने समझाया।

हाथ के संकेत से चड्ढा ने जगदीश को और पास बुलाया। जगदीश ने अपनी कुर्सी खिसका ली।

"प्रीति को मैं एक बार देखना चाहता हूँ—केवल एक बार।" चड्ढा ने सीधे हाथ की अँगूठे के पास वाली उँगली को उठाकर कहा।

"जीवन है तो एक बार नहीं, सौ बार उसे देखोगे।" जगदीश ने आश्वासन दिया।

"दुबे भाई, केवल एक बार मुझे प्रीति का मुख दिखा दो।"

दुबे भरा बैठा था। वह बोला, "अबे, उल्लू के पट्ठे, वह अपने पति के साथ कहीं 'हनीमून' मना रही होगी। वह है कहाँ जो उसे दिखा दें?"

"दुबे, यह समय इस तरह की बात करने का नहीं है।" जगदीश ने सुशील का हाथ दबाकर कहा।

"यह साला, आत्म-हत्या करेगा? कहीं से 'स्लीपिंग टेबुलैट्स' इकट्ठी करके खा गया होगा। ज़हर खाना इतना आसान समझ रखा है?"

"सुशील भाई, उसने मुझसे 'मैरिज' 'प्रपोज़' की थी।"

"ज़रूर की होगी !" व्यंग्य करते हुए दुबे बोला, "तभी वह अरविंद के साथ चली गयी।"

"मुझे पूरा विश्वास है।" जगदीश ने कहा। "लेकिन प्रीति की मा बाद में तुमसे कुछ अप्रसन्न हो गई थी।"

"क्यों ?"

"अरे कोई घघरिया वाले बाबा थे, उन्हीं को लेकर..."

"तो उसमें मेरा क्या क़सूर था ? मैंने जैसा सुना, वैसा बता दिया।"

"प्रीति ने उन्हें बहुत समझाया कि इसमें सुशील का कोई दोष नहीं। लेकिन वे जो बिगड़ीं तो बिगड़ती ही चली गयीं ?"

"तो प्रीति मेरे पीछे मेरा नाम लेकर पुकारती थी, जगदीश भाई ? मुझे सुशील कहती थी ?"

"और क्या !"

"सामने तो मि० चड्ढा ही कहती रहीं। उनके मुँह से अपना नाम सुनने के लिए मैं कितना तरसता रहा।"

"अब लड़कियों के साथ यही तो मुसीबत है कि मन में प्यार करती रहती हैं और मुँह से कुछ नहीं कहतीं। विवाह से कुछ नहीं होता श्याम-मोहन। विवाह और बात है, प्यार और बात। मेरा विश्वास है कि विवाह करने पर भी प्रीति प्यार तुम्हीं को करती है। वहाँ से लौटने पर यदि वह अब भी तुमसे रूखा व्यवहार करे, तो यह मत समझना कि वह तुम्हें प्यार नहीं करती। कभी-कभी प्यार की रक्षा के लिए ही लड़कियाँ विवाह कर लेती हैं, इतना तो तुम समझते ही हो ?"

श्याममोहन ने सिर हिलाया जैसे वह सब समझता है। धीरे-धीरे उसे झपकी-सी आने लगी।

रास्ते में सुशील ने जगदीश से कहा, "मैं तुम्हारी इसी बात के लिए तुमसे नफ़रत करता हूँ।"

"किस बात के लिए ?" जगदीश ने हँसकर पूछा।

"इस झूठ बोलने के लिए। तुम्हें सब मालूम है और फिर भी झूठ बोलते हो।"

"अरे यार, बीमार आदमी है। गहरा आघात लगा है। ऐसी दशा में थोड़ा झूठ बोलने में कोई पाप नहीं लगता। यह अच्छा हो जाय और एक बार इसकी प्रेमिका को इसे दिखा दें, तो छुट्टी हुई।"

"हमारे लिए तो साले ने एक झंझट खड़ी कर दी है। आत्म-हत्या का केस है…इस पर भी सोचा है?"

"नहीं। इसका तो मुझे ध्यान ही नहीं था। अब क्या होगा?" जगदीश ने पूछा।

"घबराओ नहीं। शहर कोतवाल का लड़का अपनी क्लास में पढ़ता है। मिश्रा जी उसे लेकर कोतवाली गए हैं। मामला 'हश-अप' हो जायगा।"

जगदीश ने एक गहरी साँस ली।

३६

जगदीश बी० ए० में पास हो गया। प्रिंसिपल मजूमदार ने उसे समझाया कि वह एम० ए० में अँग्रेज़ी ले और किसी कम्पटीशन में बैठे। इससे एक दिन उसका जीवन सुधर जायगा। उनके बहुत-से विद्यार्थी देश के विभिन्न भागों में उच्च पदों पर थे। वह भी उनमें से एक हो तो उनका मस्तक ऊँचा होगा। उन्होंने हँसते हुए कहा कि रिटायर होने पर वे अपने सभी विद्यार्थियों से मिलने जायँगे और उसके यहाँ भी आकर ठहरा करेंगे। तब उन्हें कितनी प्रसन्नता होगी। उन्होंने यह भी प्रलोभन दिया कि जगदीश अपनी क्लास में प्रथम आया है; अतः एम० ए० में उसे एक स्कॉलरशिप मिल जायगा। वह बहुत देर तक सोचता रहा; लेकिन

फिर उसने इस सुनहले सपने पर विजय प्राप्त की। इससे पहले कि देर हो जाय, वह हिन्दी के प्रोफ़ेसर के पास गया और अपना नाम लिखा लिया।

क्लास में भेंट हुई सुशील दुबे से। बोला : बन्धु, अपना तो थर्ड क्लास आया। इसी से हिन्दी जौइन की है। यह पतितपावनी भाषा है, सो अपना भी उद्धार करेगी। लेकिन तुम रहते कहाँ हो ? होस्टिल में क्यों नहीं आ जाते ?

"मैं रहता हूँ एक जगह।" जगदीश ने कहा।

"हम भी देखें वह कैसी जगह है। आज क्लास के बाद मैं तुम्हारा पीछा नहीं छोड़ने का। तुम्हारे साथ चलूँगा।"

"यहाँ से मैं एक ट्यूशन पर जाऊँगा।" जगदीश ने बचाव के लिए कहा।

"कहीं भी जाओ, आज मुझे तुम्हारे रहने का स्थान देखना ही है।"

"किसी तरह छुटकारा नहीं ?"

"नहीं।"

"अच्छा, फिर कभी ले चलूँगा।"

"तो तुम्हें मेरे साथ चलना पड़ेगा।"

"कहाँ ?"

"जहाँ भी मैं कहूँ।"

"फिर भी पता तो चले।"

"वहीं। तुमने तो अपनी प्रेमिका नहीं दिखलायी; पर चलो, आज मैं तुम्हें अपनी प्रेमिका दिखलाऊँगा।"

"मेरी कोई प्रेमिका नहीं है।"

"अबे, हम सब समझते हैं...किसकी प्रेमिका हो सकती है, किसकी नहीं।"

और संध्या समय दुबे जगदीश को पहले अपने होस्टिल ले गया।

वहाँ पहुँचकर उसने अपने रोमांस के कुछ क़िस्से सुनाए। इसके उपरांत वह अपने परिचित स्थान पर गया। मकान के दरवाज़े पर एक नेम-प्लेट लगी थी। उस पर लिखा था : डाक्टर सुधाकर चतुर्वेदी एम० बी० बी० एस।

चतुर्वेदी ने नयी-नयी डिग्री ली थी। उसके पिता भी डाक्टर थे। मेस्टन रोड पर उनकी डिस्पेंसरी थी। पिता की मृत्यु हृदयरोग से सहसा हो गई थी; अतः सुधाकर अब वहीं बैठता था। डिस्पेंसरी घर से कुछ दूर पड़ती थी। अपनी प्रैक्टिस चमकाने के लिए वह बहुत परिश्रम कर रहा था।

सुशील ने उस घर में कैसे प्रवेश किया, यह तो उसने नहीं बतलाया; पर सारे घर पर उसका अधिकार प्रतीत होता था। सुधाकर की मा की अवस्था पचास से कुछ ऊपर होगी। उनका रंग एकदम चाँदनी-सा उजला निखरा था। वे अधिकतर चिकन की साड़ी पहनती थीं। स्वभाव से थोड़ी गम्भीर थीं। सुधाकर की दो बहिनें थीं। बड़ी का नाम रोहिणी था, छोटी का रेवा। दुर्भाग्य से रोहिणी भी चार वर्ष हुए विधवा हो गई थी। रोहिणी की अवस्था होगी कोई बत्तीस-तेतीस के आसपास। वैसे तो विधवा होने के कारण वह बहुत साधारण ढंग से रहती थी, लेकिन सफ़ेद सिल्क पहनने का उसे शौक था। उसके पति एअर सर्विस में कहीं थे और एक विमान-दुर्घटना में उनकी मृत्यु होगयी थी। रोहिणी का विवाह सोलह वर्ष की अवस्था में ही हो गया था; लेकिन उसके कोई बच्चा न था। रेवा सुधाकर से बहुत छोटी थी और टैंथ क्लास में फ़ेल हो गई थी। वह बड़े संकोची स्वभाव की थी। आदमियों के सामने कम निकलती और बहुत कम बोलती थी। दोनों में बड़ी बहिन ही अधिक आकर्षक लगती थी। यह बड़ी बहिन ही दुबे की प्रेमिका थी।

दुबे ने सुधाकर की मा और दोनों बहिनों से जगदीश का परिचय कराया। मा जब चाय बनाने चली गयी, तो ये तीनों छत पर जाकर बैठ

गए। वहाँ एक दरी बिछी थी जिस पर ताश पड़े थे। सुशील ने ताश उठाकर फाँटने शुरू किए और जगदीश से बोला : आज तुम भी खेलो।

"जुआ ?" जगदीश ने पूछा।

"नहीं, फ़्लश।"

"फ़्लश भी तो जुआ है।"

"नहीं, सब बड़े लोग इसे खेलते हैं। ज़्यादा मौरलिस्ट न बनो।" फिर रेवा की ओर देखकर कहा, "रेवा इन्हें 'हैल्प' करो।"

"लेकिन मैं तो बिल्कुल नहीं जानता।"

"तुम शुरू करो तो, रेवा बतायेगी।...पैसे निकालो।"

खेल कुछ मुश्किल न था और साथ ही था दिलचस्प। थोड़ी ही देर में जगदीश डेढ़-दो रुपये हार गया।

सुशील ने कहा, "आज का कोटा पूरा हुआ। अब खेल बंद।"

चाय पीकर वे दोनों लौट आये।

रास्ते में सुशील ने पूछा, "सच कहना कैसी है ?"

"छोटी कि बड़ी ?"

"बड़ी ?"

"सुन्दर है।"

"मैंने ग़लत आदमी तो नहीं चुना ?"

"नहीं।"

"कल यहाँ आओगे ?"

"तुम ज़िद करोगे तो आ जाऊँगा।"

"अबे साले, अब हमसे उड़ो नहीं। हम उड़ती चिड़िया पहचानते हैं। छोटी अच्छी लगने लगी क्या ?"

"नही, बड़ी अच्छी लगती है।"

"तब तो यार, दोस्तों में ही झगड़ा होगा।"

"झगड़ा नहीं होगा। दोनों मिलकर प्यार करेंगे। क्या दो आदमी एक लड़की को प्यार नहीं कर सकते ?"

"कर क्यों नहीं सकते; लेकिन ठीक बता तू सचमुच..."

"नहीं बे, मैं तो हँसी कर रहा था।"

"यही तो मैंने कहा।" और दुबे हँस पड़ा।

३७

बहुत दिनों से जगदीश सीमा के यहाँ नहीं गया था। एक दिन सहसा उसकी याद जगी तो बहुत व्याकुल हुआ। वह उसका कितना ध्यान रखती है और वह है कि दुबे के चक्कर में उस ओर से उदासीन हो गया है। पढ़ता है कम और फ़्लश खेलता है ज़्यादा। भाग्य ऐसा है कि हमेशा हार होती है। कभी अच्छे पत्ते आते ही नहीं। आते हैं तो फिर एक साथ बहुत अच्छे। उस समय ऐसा होता है कि सब अपने पत्ते फेंक जाते हैं और उसे कुछ नहीं मिलता। दूसरी ओर दुबे है—पत्ते बनाता है कि क्या करता है—जब देखो तब ट्रेल या कलर। पेयर से कम तो दिखाता ही नहीं। अक्सर ब्लफ़ खेलता है; पर जीत उसी की होती है। अपने-अपने भाग्य की बात है।

सामने उसने देखा कुछ महिलाएँ स्नान करके लौट रही हैं। कोई राम-नाम जपती आ रही है, कोई गीत गा रही है, किसी के हाथ में गंगा-जली है, किसी के कंधे पर भीगी धोती। लेकिन इनके बीच में यह कौन है! नयन है। निश्चित रूप से वही। श्वेत वस्त्रों में सौम्यता धारण किए हुए ऐसी लगती है जैसे कोई देवी हो। मुख पर चंचलता का कोई चिह्न नहीं। कब लौटी यह बाहर से? मुझे पता तक नहीं। वह थोड़ा

पीछे हट गया। पास आने पर उसने आगे बढ़कर कहा—नयन। साथ चलने वाली महिलाओं ने चौंककर उधर देखा। नयन ने दृष्टि उठाई और जैसे उसे पहचानती न हो, जैसे उससे कोई संबंध न हो, वह आगे बढ़ गई। जगदीश देखता खड़ा रह गया। उसकी समझ में ही न आया कि उसने ऐसा व्यवहार क्यों किया! क्या यह नयन की आकृति की कोई दूसरा महिला तो नहीं? कभी-कभी दो व्यक्तियों की आकृति इतनी मिलती है कि हम आश्चर्य या धोखे में पड़ जाते हैं। पर यह तो निश्चित रूप से नयन थी। तो अपने कमरे में वह मुझे पहचान सकती है, सड़क पर नहीं। यह तो बड़ी अपमानजनक बात हुई।

भट्टाचार्य के घर के सामने पहुँचा तो उसने देखा उस पर ताला पड़ा हुआ है। कहाँ चले गए ये लोग? किससे पूछे। इतने में सामने से एक आदमी ने कहा: भट्टाचार्य बंगाली क्लब में चले गए हैं। वह पास में ही है। उनकी छोटी लड़की की शादी है। यह मकान छोटा था; अतः विवाह वहीं से करेंगे। क्लब पहुँचने पर भट्टाचार्य, शंकर मुखर्जी और कालिंदी तीनों से भेंट हुई। मुखर्जी कल ही आ गए थे। सीमा ऊपर कहीं लेटी हुई थी। कालिंदी ने बताया: सीमा का विवाह सुधांशुशेखर बनर्जी से पक्का हो गया।

"सीमा कहाँ है?"

"पड़ी है ढोंग किए हुए। इतना सुन्दर, शिक्षित और बड़ा घर मिल गया है, इसलिए ढोंग और भी बढ़ गया है।"

"पर यह सब है आपके प्रयत्न का फल।"

"मैं कवि जी, क्या हूँ। सीमा का भाग्य है जो उसे इतने बड़े घर लिए जा रहा है। लेकिन रानी जी को देखिए कि कुछ भाता ही नहीं है। अब क्या किसी गवर्नर से शादी करेगी?"

"शायद उनकी विवाह करने की इच्छा नहीं है।"

"लेकिन मैं पूछती हूँ, क्यों?"

"वे सोचती हैं, उनकी साधना में इससे विघ्न पड़ेगा।"

"यह वैसा विवाह नहीं है, कवि जी। कितनी कठिनाई से मैंने इसे तय किया है, आप नहीं जानते। बनर्जी के मा-बाप पटना में रहते हैं। एक विधवा बहिन है, वह कभी बनर्जी के साथ रहती है, कभी नहीं रहती। एक अफ़सर की पत्नी होना कोई साधारण भाग्य की बात नहीं है। बनर्जी ने मुझे वचन दिया है कि अब वे इसकी शिक्षा का प्रबन्ध करेंगे और संगीत की परीक्षाएँ दिलाएँगे। लखनऊ, इलाहाबाद कहीं भी वे इसके ठहरने का प्रबन्ध करेंगे। इलाहाबाद में तो मेरे पास ही रह सकती है; लेकिन शायद ही वे इसे हमारे पास छोड़ें।"

"हम दोनों मिलकर कहेंगे तो छोड़ देंगे।" शंकर मुखर्जी ने कहा।

"तुम चुप रहो जी।" कालिंदी ने अपने पति को झिड़का। "मर्द होकर इतना तो हुआ नहीं कि साली के लिए एक अच्छा-सा वर तलाश कर देते; अब अपनी भलमनसाहत दिखा रहे हैं।"

शंकर मुखर्जी सिगरेट के पीने के बहाने उठकर चले गए। अपने श्वसुर के सामने सिगरेट पीने में वे अब भी झिझक का अनुभव करते थे। क्लब के गेट पर एक ताँगा आता दिखाई दिया।

"पता नहीं कौन है। इतना कहकर भट्टाचार्य जी भी चलने लगे। जगदीश की ओर देखकर उन्होंने कहा, "विवाह के दिनों में तुम यहीं रहेगा। यहीं खाना खायगा। काम में हाथ बटायेगा। मैं तो बुड्ढा हुआ। तुम और शंकर ही दौड़-धूप का काम करेगा।"

"मैंने बंगालियों का विवाह कभी देखा नहीं; अतः मेरी बड़ी इच्छा है कि मैं इसे देखूँ। मैं जानना चाहता हूँ कि हमारे यहाँ की प्रथाओं से आपके यहाँ की प्रथाएँ किस प्रकार भिन्न हैं। मैंने सुना है वधू का ऐसा शृंगार भारत के और किस प्रान्त में नहीं होता, जैसा बंगाल में। मैं इसे अपनी आँखों से देखना चाहता हूँ।"

"हाँ हाँ, ज़रूर। लेखक आदमी को यह सब जानना चाहिए।"

भट्टाचार्य चले गए।

"ठीक बताइए, आपने किया क्या ?" जगदीश ने कालिंदी से पूछा।

"उस दिन सीमा ने जैसा व्यवहार किया था, उससे मैं तो एकदम घबरा ही गयी थी।"

"मैं भी समझता था कि सम्बन्ध टूट जायगा।"

"आपका भी यही अनुमान था न ?"

"हाँ, वह भूल उनसे हो ही गई।"

"नहीं; भूल मुझसे ही हुई। उसे बता देना चाहिए था कि बनर्जी के यहाँ हम क्यों जा रहे हैं। बचपन से ही वह कुछ ज़िद्दी स्वभाव की है।··· तो मैं बनर्जी के यहाँ जैसे आती-जाती थी आती-जाती रही। मिलना प्रायः उसकी विधवा बहिन से ही हुआ। बाद में मुझे पता चला कि जिस बात का बनर्जी को बुरा मानना चाहिए था; उस पर उन्होंने सीमा को एप्रीशियेट किया। ये आदमी भी कैसे होते हैं, कवि जी ?"

"आप ही देख लीजिए। अब मैं क्या कहूँ।"

"सीमा से नहीं मिलेंगे ?"

"मैं यहाँ हूँ ही। किसी समय बात करूँगा।"

३८

सीमा के विवाह में जगदीश जितना परिश्रम कर सकता था, उतना उसने किया। अपने कमरे में वह एक दिन के लिए भी लौटकर नहीं गया। नयन इस बीच उसके कमरे के पास होकर कई बार निकली और निराश होकर लौट गई। दुबे ने भी उसे बहुत ढूँढ़ा। बाज़ार जाकर वह कुछ रेडीमेड कपड़े ले आया था ? उन्हीं से उसने काम चलाया। वह डर

रहा था कि दुबे कहीं मिल न जाय। मेस्टन रोड से जब वह निकला तो सुधाकर चतुर्वेदी के बोर्ड पर उसकी दृष्टि पड़ी। डाक्टर सूट पहने बैठा था और क्लीन शेव्ड होने के कारण बहुत ही सुन्दर लग रहा था। उसकी इच्छा हुई कि जाकर परिचय दे; पर सुधाकर किसी महिला के इंजेक्शन दे रहा था; अतः वह लौट आया।

शंकर मुखर्जी क्योंकि नगर से परिचित न थे; अतः बाहर के कई काम कालिंदी ने उसे सौंपे थे। एक काम था शहनाई वालों को ढूँढ़ने का। नगर से परिचित जगदीश भी कहाँ था? अतः वह इधर-उधर पूछता फिरा। दूर शहर के एक कोने में एक गंदे से मुहल्ले में जाकर उसने एक शहनाई वाले को तय किया। सीमा का काम न होता तो वह कभी वहाँ न जाता। लेकिन जो सबसे कठिन काम उसे सौंपा गया, वह था सोने के लिए नया बिस्तर बनवाने का। जाड़े के दिन थे; अतः नये गद्दे और रजाई की ज़रूरत थी। कालिंदी रुपए निकाल कर देने लगी तो जगदीश ने कहा: रुपए मैं फिर ले लूँगा। सबसे कठिनाई यह थी कि दोनों चीज़ें चौबीस घंटे के अंदर चाहिए थीं। इस काम के लिए उसे कई बार बाज़ार जाना पड़ा। इन दोनों चीज़ों को लेकर जब वह लौटा तो उसका मन न जाने कैसा होने लगा। उसे लगा कि वह इन्हें कालिंदी को नहीं दे पायेगा और रास्ते में ही मूर्च्छित हो जायगा। हृदय को चीरने वाली एक पीड़ा उसके अंतःकरण को वेध गई। उसे न जाने क्यो लगा कि वह अपने हाथ से अपनी मृत्यु-शैया तैयार कर रहा है।

तीनों दिन सीमा और वह एक-दूसरे से बचते रहे। दोनों ही इस बात को समझते थे और कुछ कर नहीं पा रहे थे। कालिंदी दोनों के इस व्यवहार से बहुत प्रसन्न थी। फिर भी एक स्थान पर रहकर एक-दूसरे के आमने-सामने वे बिल्कुल न पड़ें, यह कहाँ तक सम्भव था।

सीमा ने पूछ ही लिया, "आप मुझसे बचते-बचते क्यों फिर रहे हैं?"

"तो मैं क्या करूँ, फिर?"

"इससे तो देखने वालों को और भी संदेह होगा।"

जगदीश कुछ और सँभलकर व्यवहार करने लगा। उसने सोचा : लौट जाऊँ अपने कमरे की ओर। वहाँ मुझे कोई नहीं देखेगा। या फिर दुबे के पास होस्टिल में दो-चार दिन काट दूँ। लेकिन क्या स्थिति इससे सुधर जायगी? मेरे मन का झंझावान शान्त हो जायगा?

ऊपर कई कमरे थे। उनमें से कोने वाला एक सीमा को दे दिया गया था। दूसरे कमरे में कालिंदी थी। इसी में ज़ेवर, कपड़े और विवाह का आवश्यक सामान था। तीसरे कमरे में भट्टाचार्य और मुखर्जी थे। चौथा कमरा ख़ाली था। उस पर इस समय जगदीश का अधिकार था।

जगदीश फ़र्श पर लेटा हुआ था कि सीमा ने सहसा प्रवेश किया।

"खाना क्यों नहीं खा रहे हैं? दीदी शिकायत कर रही हैं।"

"भूख नहीं है।"

"और रज़ाई-गद्दे के रुपये क्यों नहीं ले रहे हैं?"

जगदीश ने सीमा के मुँह की ओर देखा। उबटन लगने से सारा शरीर थोड़ा पीला लग रहा था। कुँवारेपन के सौंदर्य की चरम सीमा इन्हीं तीन दिनों में दिखाई देती है। वह उसके मुख की ओर देखता ही रह गया।

"मेरी बात का जवाब नहीं है क्या?"

"आपका ही कोई जवाब नहीं है, आपकी बात का फिर क्या जवाब होगा!"

सीमा मुलायम हो आयी। बोली, "सच बतलाओ रुपये क्यों नहीं लिए?"

"मेरी ओर से भी तो कुछ होना चाहिए!"

"तुम समझते हो एक गद्दा-रज़ाई देकर मुझे ख़ुश कर सकोगे?"

"तुम्हें कुछ देकर ख़ुश कर सकूँ, ऐसा तो मेरे पास कुछ नहीं है।"

"अच्छा सुनो, पिता जी के कमरे में जब मैं जाती हूँ, तो मुझे देखकर वे रोने लगते हैं। इससे मुझसे जाया नहीं जाता। तुम भी इस तरह बात करोगे तो मेरे लिए बहुत कठिन होगा। तुम पिता जी के कमरे में चलो और उन्हें थोड़ा समझाओ। मैं दोनों के लिए वहीं खाना भिजवाती हूँ।"

दूसरे दिन दोपहर को आँगन में लाकर जब केले के खंभे स्थापित किए जाने लगे, तो सीमा ने जगदीश से कहा, "उस समय तुम यहीं मेरी आँखों के सामने रहना।"

"लेकिन उस समय तो भीड़ होगी? अधिकतर महिलाएँ ही वहाँ रहेंगी।"

"नहीं पुरुष भी होंगे। तुम कहीं ऐसे स्थान पर रहना जहाँ से मैं तुम्हें देख सकूँ।"

जगदीश ने यह नहीं पूछा कि सीमा वैसा क्यों चाहती है। उसने धीरे-से सिर हिलाया और वैसा किया भी। विवाह के समय कई बार उसकी दृष्टि सीमा से मिली। उस दृष्टि में क्या था, वह पढ़ नहीं पाया।

विवाह सम्पन्न हो गया। सुधांशु बनर्जी ने अत्यंत शिष्टता के साथ व्यवहार किया। जो उसे मिला, उसने ले लिया। किसी भी वस्तु के लिए उसने अपनी ओर से आग्रह नहीं किया। जगदीश समझता था अब सीमा नहीं मिलेगी; लेकिन उसकी वह धारणा ग़लत निकली। जगदीश ऊपर से विवाह-मंडप को देखकर न जाने क्या सोच रहा था कि सीमा उसके पास आकर खड़ी हो गई। बोली, "अब मेरे एक हाथ में वरमाला है, दूसरे में पूजा की थाली।"

"वरमाला तो गले में डाल ही दी।"

"हाँ। यही तो तुम चाहते थे न?"

"मैं ?"

"हाँ, तुम।"

"मैं क्यों चाहता था ?"

"किसी दिन स्वयं ही समझ लोगे। लेकिन मुझे विश्वास है मैं फिर मिलूँगी।"

सीमा हट गई। तीसरे दिन संध्या समय जब सुधांशु के साथ सीमा कार में विदा हुई तो काफ़ी भीड़ थी। देर तक वह पिता और बहिन से रोकर मिलती रही। जगदीश उस भीड़ में कहीं दूर खड़ा था। कार में बैठते ही न जाने कैसे सीमा की दृष्टि ने उसे ढूँढ़ लिया...और तब सब आँसुओं के ऊपर दो और ऐसे करुण आँसू उसकी आँखों से ढलके जिनमें जीवन की असीम वेदना निहित थी।

३६

सीमा के विवाह से लौटने पर उसने ऐसी थकावट का अनुभव किया, जैसे उसका सारा शरीर दुखता हो। वह सीधा अपने कमरे में जाकर सो गया। रात में उसे किसी ने जगाया नहीं। प्रभातकाल में उठा तो लगा जैसे वह किसी दुःस्वप्न को देखकर उठा है। प्रभात का राशि-राशि आलोक बिखरा पड़ा था। वृक्षों पर चिड़ियाँ चहचहा रही थीं। वृंतों पर फूल खिल रहे थे। कोई सुखी हो कि दुःखी, प्रकृति पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। उसे वह घटना याद आयी जब नयन ने सड़क के किनारे उसे पहचाना नहीं था। वह उससे बिना कहे कहीं चली भी गई थी। मन जब किसी के विरुद्ध होता है तो इस प्रकार के सारे तथ्य एकत्र कर लेता है। ये तथ्य जीवन में अकारण कड़ुवाहट भरते हैं।

व्यवहार ही जीवन में मुख्य है। कोई किसी के लिए कितना ही त्याग करे; लेकिन एक बार उससे व्यवहार में चूक हुई नहीं कि मन सब मिटा देता है। नयन ने उसके साथ क्या कुछ नहीं किया। जब कोई उसकी बात पूछने वाला नहीं था, तब उसने ही उसे अपने यहाँ स्थान दिया था। वह तो यह भी नहीं जानती थी कि जगदीश है कौन ? उसके मानसिक क्लेश के पलों में न जाने कितनी बार उसने उसको सान्त्वना दी है। शारदा के व्यवहार से आघात पाकर जब वह लौटा था, तो उस दंश के प्रभाव को उसने ही मिटाया था। जहाँ उसे नयन का कृतज्ञ होना चाहिए था, वहाँ वह उससे रूठा बैठा है। उसे अपने स्वभाव पर पश्चाताप हुआ।

नयन कुछ स्वतंत्र स्वभाव की लड़की है। लेकिन यह तो बहुत बड़ा गुण है। इसके लिए तो मुझे उसका आदर करना चाहिए। वह अपने कर्म की व्याख्या मुझसे नहीं करना चाहती, यह ठीक है; लेकिन मेरे भी किसी काम में तो वह हस्तक्षेप नहीं करती। रात मै जैसे ही लौटा था, वह पूछ सकती थी कि मैं कहाँ गया था। लेकिन उसने मुझसे कोई प्रश्न नहीं किया। कोई कैफ़ियत नहीं माँगी। वह मनुष्य को समझती है, उसकी विवशताओं को जानती है, उसकी दुर्बलताओं को तिरस्कार की दृष्टि से नहीं देखती। ऐसे व्यक्ति की पल भर की उदासीनता से अपने मन को क्षुब्ध करना ठीक नहीं है। नयन के विरुद्ध सोचकर मैंने ठीक नहीं किया। यदि मुझे यहाँ से जाना ही है, तो लड़कर नहीं, हँसकर जाना चाहिए।

दरवाज़े पर लहँगा और चूनरी ओढ़े उसने एक औरत को देखा। गेहुँआ रंग। कसा हुआ शरीर। अवस्था तीस-बत्तीस।

"तुम रामदेई हो ?"

"जी, बाबू जी।"

"इधर की रहनेवाली तो मालूम नहीं पड़तीं।"

"जी, नहीं।"

"फिर।"

"मेरठ की रहने वाली हूँ।"

"जाटिनी हो?"

"जी, हाँ।"

"मुझे बुलाया है?"

"जी।"

"अच्छा कहना, मैं अभी आता हूँ।"

भेंट होते ही जगदीश ने कहा, "बहुत सुन्दर नौकरानी रख छोड़ी है।"

"आपको अच्छी लगी?"

"लगी तो।"

"आप सोच सकते हैं, इसके होते हुए इसके पति ने एक दूसरी औरत घर में रख ली है। इसने विरोध किया तो दोनों ने मारकर इसे घर से निकाल दिया। विवश होकर यह अपने पिता के घर गई। बाप ने कहा कि यहाँ तेरे लिए कोई जगह नहीं है। सुखी रखे या दुःखी, उसी के साथ रह। मा ने ग़ुस्से में कहा कि जाकर अपनी सौत को ज़हर दे दे। यह अकेली लौट रही थी कि ट्रेन में मुझे मिल गई और मेरे साथ चली आई।"

"चलिए, आपके थर्ड-क्लास में यात्रा करने से एक लाभ तो हुआ—एक व्यक्ति का जीवन तो सुधरा।"

"अब क्या पता है किसी दिन इसका पति लाठी लेकर मेरे सिर पर आ धमके।"

"क्या यह चली जायगी?"

"क्यों नहीं चली जायगी? मेरे पास है क्या जो यह रहेगी?"

जगदीश ने कहा, "मैंने कई स्थानों पर देखा है सुन्दर महिलाएँ असुन्दर नौकरानियाँ रखती हैं।"

"उन्हें अपने पतियों का भय रहता होगा। यहाँ तो ऐसा कोई भय नहीं है।"

"नहीं कुछ ऐसे भी स्थान हैं जहाँ उनका विवाह नहीं हुआ है और नौकरानियाँ असुन्दर हैं।"

"तब आप जैसे व्यक्तियों का भय रहता होगा।"

जगदीश जैसे कट गया; पर तुरन्त ही खिलखिलाकर हँस पड़ा।

नयन ने कहा, "आप इतने उदास क्यों रहते हैं?"

"स्वभाव से ही कुछ उदास हूँ। शायद यह उदासी जन्मजात है। अपने इस स्वभाव से मैं स्वयं बहुत परेशान हूँ।"

"स्वभाव भी तो कहीं न कहीं से बनता ही होगा?"

"आपको क्या लगता है?"

"मैं आपके जीवन के सम्बन्ध में बहुत अधिक तो नहीं जानती; लेकिन जितना जानती हूँ उससे लगता है कि आप अतीत में अधिक रहते हैं। उसके सम्बन्ध में अधिक सोचना सभी दृष्टियों से हानिकारक है। जो मिट चुका है, जो बीत चुका है, जो चला गया और लौटकर कभी नहीं आयगा, उसे लेकर जीवित रहने से क्या लाभ है? जो अतीत में जीवित रहता है, वह वर्तमान का स्वागत कभी भी खुले हृदय से नहीं कर सकता।"

"जो कभी था और अब नहीं है, उसे भुला देना सरल तो नहीं है। अतीत से व्यक्ति अपना सम्बन्ध कैसे तोड़ सकता है?"

"अतीत यदि मुरझा गया है, मर गया है, रह ही नहीं गया है, तब तो उसे भुला ही देना चाहिए। मुझे पता नहीं; लेकिन आपके साथ ज़रूर ऐसी ही कोई बात है। मेरी समझ में यह बात कभी नहीं आई कि प्राणी सुदूर अतीत के दुःख में डूब कर वर्तमान के सुख से क्यों वंचित रहना चाहता है?"

"घटना बहुत छोटी-सी है; लेकिन मुझे तोड़ ही गयी है..."

"उसे मैं फिर कभी सुनूँगी। आइए, बाहर चलें।"

"आप मेरे साथ बाहर जायँगी? कोई देखेगा तो क्या कहेगा?"

नयन ने उसका हाथ पकड़कर कहा, "आइए, कभी-कभी हमें मुक्त

आकाश, मुक्त पवन और मुक्त वातावरण में भी साँस लेनी चाहिए। कमरे में बहुत बन्द रहने से दम घुटने लगता है।"

४०

फ्लश खेलने का जगदीश को ऐसा चस्का लग गया कि कभी वह दुबे के कमरे में होता, कभी चतुर्वेदी के यहाँ। दुबे के कमरे में स्थायी रूप से फ्लश होता था। श्याममोहन से सुशील की मित्रता यहीं प्रारंभ हुई, यह उसे बाद में पता चला। कई धनी घरों के लड़के रात को खाना खाने के उपरान्त वहाँ एकत्र होते और कमरा बन्द करके खेलते रहते। पास में उनके पुस्तकें खुली पड़ी रहतीं। एकाध बार वार्डन ने उधर चक्कर लगाया और बंद कमरा देखकर आश्चर्य किया। कमरा जब खोला गया तो सबके हाथों में पुस्तकें थीं; अतः वह लौट गया। शनिवार की रात को खाना वहीं कमरे में आ जाता और रविवार को रात के बारह बजे ताश बंद होते। दो-एक घंटे के लिए वे केवल हाथ-मुँह धोने जाते। खेल क्योंकि बहुत ऊँचा नहीं होता था; अतः हार-जीत अधिक नहीं होती थी। उन्होंने अपने कुछ नियम बना लिए थे और उसका पालन वे करते थे। दुबे एक गाँव का रहने वाला था और उसके पिता खाते-पीते किसान थे। लेकिन उसका स्वभाव सभी को ठगने का था, यहाँ तक कि अपने पिता के साथ भी वह धोखा कर जाता था। उसके पिता कभी-कभी गाँव से कानपुर आया करते थे। खेल के बीच-बीच में दुबे की बहुत-सी कहानियाँ सुनाई जातीं। कभी-कभी स्वयं दुबे उन्हें सुनाने में आनंद का अनुभव करता था। पिछले वर्ष बी० ए० फाइनल में जब उसके पिता उससे मिलने आये तो कमरे में उसके साथ ताश खेलने वाले कुछ मित्र भी थे। चलते समय

उन्होंने उसे कुछ रुपये दिए तो वह बोला : पिता जी मुझे कुछ किताबें भी खरीदनी हैं।

पिता अशिक्षित और गाँव के थे तो क्या, लेकिन थे चालाक। दुबे में चालाकी शायद अपने पिता से ही आई थी। वे बोले : किताबें तो अभी पिछले साल की ही चलेंगी न?

"जी नहीं, कुछ किताबें हर साल बदल जाती हैं।"

बड़े दुबे जी ने सहसा पूछा, "क्या नाम हैं किताबों के?"

दुबे को आशा नहीं थी कि वे किताबों के नाम पूछेंगे। सहसा बोला, "एक का नाम 'ट्राइएँगिल' है, दूसरी का 'परपेंडीक्यूलर'। दोनों ही मोटी पुस्तकें हैं पिताजी। पंद्रह-पंद्रह रुपये की तो आयेंगी ही।"

पिता अंग्रेज़ी नहीं जानते थे। बोले : अच्छी बात है। तीस रुपये और निकालकर उन्होंने दिए। सत्तर के सौ हो गए।

दोस्तों ने जैसे-तैसे अपनी हँसी रोकी।

परीक्षा के दिन निकट आ गये थे; अतः होस्टिल में खेल अब शनिवार की रात को ही होता था। विद्यार्थियों ने अपने-अपने कमरे बंद करके पढ़ना प्रारम्भ कर दिया था। जगदीश का चतुर्वेदी से परिचय हो गया था; लेकिन पिछले कई महीनों से उसका वहाँ जाना नहीं हुआ था। दुबे से जब वह वहाँ चलने के लिए कहता तो वह टाल देता। जगदीश को विशेष दिलचस्पी नहीं थी; अतः उसने अधिक ध्यान नहीं दिया। एक शनिवार को जब वह दुबे के होस्टिल पहुँचा तो उसने देखा दुबे के कमरे पर ताला पड़ा हुआ है। पूछने पर पता चला कि उसका तो तीन-चार दिन से कहीं पता नहीं है। जगदीश ने सोचा, हो न हो, वह चतुर्वेदी के यहाँ गया होगा। वहाँ न भी होगा, तो उसका पता अवश्य चल जायगा। संभव है वह अपने गाँव चला गया हो। लेकिन गाँव जाता तो सबसे कहकर जाता। कहाँ चला गया कमबख़्त!

चतुर्वेदी के यहाँ पहुँचने पर जगदीश ने पाया कि वहाँ का वातावरण

विचित्र-सा है। जिस उत्साह के साथ उसका पहले स्वागत होता था, उसका कोई चिह्न नहीं। उसे देखते ही रेवा एक ओर उठकर चली गई, रोहिणी दूसरी ओर। जगदीश ने सोचा वह लौट जाय। लेकिन फिर वह साहस करके सुधाकर की मा के पास गया। मा एक पलंग पर बैठी चावल बीन रही थीं। जगदीश के लिए उन्होंने एक कुर्सी खिसका दी और चुप बैठी रहीं। वे बहुत गम्भीर थीं।

"क्या बात है? आप सब गम्भीर क्यो हैं?"

सुधाकर की मा रोने लगी।

जगदीश अस्थिर हो उठा। खड़े होकर उसने चावलों का थाल उसके हाथ से लेकर पलंग पर रख दिया और उसके कंधे पर हाथ रखकर कहा, "क्या बात है मा?"

"हम तो लुट गये बेटे। अब हम किसी को मुँह दिखाने के क़ाबिल नहीं रहे।"

"साफ़ बताइये न क्या बात हुई?"

"दुबे ने ऐसा कलंक का टीका हमारे माथे पर लगाया है कि हमारे आँसू भी अब उसे नहीं धो सकते।

"रोहिणी…"

"रोहिणी का जीवन तो विधवा होने के कारण पहले से ही नष्ट था। उस पर मुझे पूरा विश्वास था और इस विश्वास को उसने कभी तोड़ा भी नहीं। दुबे के आने से उसका कुछ मन लग गया था और मैंने उस पर विश्वास कर लिया था। उसी के कहने से दुबे का बे रोक-टोक इस घर में आना-जाना था। रेवा प्रारम्भ से ही उसका विरोध करती रही और प्रायः उससे लड़ती रहती थी। पता नहीं किस समय क्या हुआ कि रेवा के पेट में बच्चा रह गया…" ऐसा कहकर वह फिर रो पड़ीं।

ऐसी असाधारण स्थिति का सामना उसने कभी नहीं किया था; अतः उसकी समझ में नहीं आया, वह क्या करे।

"आपको विश्वास है कि इसमें दोष दुबे का ही है ?"

"हाँ। मेरे घर में तो तुम दोनों को छोड़कर और कोई नहीं आता।"

"वह बाहर भी तो कहीं आती-जाती होगी ?"

"बाहर का कुछ नहीं है।"

"कितने दिन हो गये ?"

"सात महीने।"

"इन्हें कहीं बाहर क्यों नहीं भेज देतीं ?"

"वह जाती ही नहीं।"

"आपको कब पता चला ?"

"संदेह तो मुझे बहुत पहले हो गया था; लेकिन विश्वास कुछ बाद को हुआ।"

"आपको किसी से पूछकर कोई दवा देनी थी।"

"घरेलू दवाएँ प्रारंभ में कीं। उससे कुछ हुआ नहीं।"

"सुधाकर से आपने चर्चा नहीं की ?"

"पहले तो नहीं की। बाद में बात करने पर उसने कहा : यह काम मै नहीं कर सकता।"

"आपको कहना था कि इज़्ज़त की बात है।"

"कहा था। उसने जवाब दिया : कुछ भी हो। यह मैं नहीं कर सकता। और वह तैयार हो भी जाता तो रेवा तैयार नहीं थी।"

"अब क्या होगा ?"

"नहीं कहा जा सकता।"

"दुबे से आपने बातचीत की ?"

"मेरे पैर छूकर कहता है कि मा जी मेरा क़सूर नहीं है। और अगर आप ऐसा समझती हैं तो अपने हाथ से मुझे ज़हर दे दीजिए। अगर मैं मना करूँ तो कहिए नालायक़ था। ऐसी हालत में मेरी तो कुछ समझ में ही नहीं आता।"

"रेवा से आपने नहीं पूछा ?"

"वह रोती है और कुछ नहीं बताती ।"

"उसे थोड़ा डरा-धमकाकर पूछना था । ऐसा भी प्यार क्या !"

"उस लड़की को जिसे मैंने कभी उँगली नहीं छुआई थी, तुम सोच नहीं सकते, कितने मारा है । लेकिन हुआ क्या ! भाई को पता चला तो उसने भी उसके गाल पर दो चाँटे जड़ दिए । वह 'भैया' कहकर रोने लगी और उसके कन्धे से चिपट गई । और वह इतना कमज़ोर है कि ख़ुद रोने लगा । पता नहीं डाक्टरी कैसे करेगा ! इसके बाद उसने दवा देने को भी मना कर दिया । मैं तो इस कमबख़्त को घर से निकाल देती, लेकिन लड़के के कारण कुछ नहीं कह पाती हूँ..."

"ऐसी ग़लती न कीजिए । कोई और दुर्घटना हो गई तो क्या कीजिएगा ?"

"अब इससे बड़ी दुर्घटना क्या होगी ? इससे तो कहीं कुए-पोखर में डूब मरती तो अच्छी बात थी ।"

"अब जो हो गया, सो हो गया । उसका साहस के साथ सामना कीजिए । मैं जाता हूँ । फिर किसी समय आऊँगा । दुबे कहाँ है, इस बात का मैं पता लगाऊँगा । लगता है वह डर के मारे कहीं छिप गया है ।"

"इसीसे तो मेरा सन्देह और भी पक्का होता है ।"

जगदीश जब लौटने लगा तो उसने धीरे से सुना—"हे राम !" यह कराह रेवा की मा के मुँह से निकली थी । उसने लौटकर नहीं देखा ।

४१

सुधाकर के घर से लौटने पर जगदीश का मन किसी काम में नहीं लगा । पहले उसने सोचा इस बात की चर्चा वह नयन से करे । लेकिन

नयन इसमें क्या कर सकती थी। एक घर की बात दूसरे घर फैलाना ठीक नहीं, ऐसा सोचकर वह चुप रह गया। रात को उसे ठीक से नींद नहीं आयी। वह आँख मींचने का बहुत प्रयत्न करता; पर आँखें बार-बार खुल जातीं। एक छोटी-सी भूल जीवन का कैसा विनाश कर सकती है, वह सोचने लगा। व्यक्ति अकेला कहाँ है? उसके कर्म का प्रभाव चारों ओर पड़ता है। इसके बाद रेवा से कौन विवाह करेगा? कैसी सुन्दर लड़की थी। निश्चित रूप से किसी अच्छे घर जाती। वहाँ सुखी रहती। क्या सूझा इसे? ऐसी स्थिति में लड़कियों के मन की दशा कैसी रहती है, वह जानना चाहता था। वह रोहिणी और रेवा दोनों से बात करना चाहता था, लेकिन वे सामने ही नहीं पड़ती थीं। आज नहीं तो कल बातें होंगी ही। क्या रेवा सच-सच अपने मन की बात बता देगी?

रोहिणी तो सुशील को प्यार करती थी। विधवा होकर भी प्यार करती थी। इस बात को स्वयं सुशील ने उससे स्वीकार किया था। क्या उसकी दृष्टि यह नहीं पहचान सकी कि रेवा पर दुबे की दृष्टि है? रोहिणी तो कम सुंदर नहीं थी और सुशील से आकर्षित भी थी। तब सुशील ने रोहिणी को क्यों नहीं ख़राब किया? रेवा का जीवन उसने क्यों नष्ट किया? क्या सुशील रोहिणी को सचमुच प्यार करता था? इस प्यार के कारण ही क्या उसने रोहिणी को नहीं छुआ? लेकिन उसका यह कर्म तो गुन्डेपन की सीमा में आता है। क्या गुन्डा भी किसी को प्यार कर सकता है?

सोचते-सोचते जगदीश सो गया। उसकी आँख खुली तो वह फिर सोचने लगा: एक नारी को प्यार करके क्या कोई दूसरी नारी से शरीर का सम्बन्ध रख सकता है? क्या इसे प्यार कहना चाहिए? जब हमारा मन किसी के प्रति समर्पित हो जाता है, तो क्या हम उससे दूसरे को प्यार कर सकते हैं? एक स्थान पर प्यार करके भी क्या मनुष्य का मन

अनेक स्थानों पर भटकता रहता है ? लेकिन यह बहुत संभव है सुशील दोनों में से किसी को भी प्यार न करता हो।

वह फिर सो गया और प्रातःकाल देर से उठा। संध्या होते ही वह चतुर्वेदी के यहाँ पहुँचा। रोहिणी जब उसकी आँखों के सामने से जाने लगी तो उसने कहा : रुकिये, मैं आपसे ही बात करने आया हूँ। रोहिणी छत पर चली गयी। जगदीश उसके पीछे वहाँ पहुँच गया।

"यह सब क्या है ?"

"मेरी तो कुछ समझ में नहीं आता।"

"आप नहीं समझतीं कि दुबे इस बात के लिए दोषी है ?"

"नहीं। मैं तो नहीं समझती। हँसी-मज़ाक वे कितनी ही करते हों; पर इस तरह के तो नहीं थे।"

"इतने गहरे विश्वास का कारण क्या है ?"

"अपने प्रति व्यवहार से ही मैं जानती हूँ।"

"एक ही व्यक्ति का दो आदमियों के प्रति दो प्रकार का व्यवहार हो सकता है, क्या आप इस बात को नहीं मानतीं ?" रोहिणी ने झुँझलाकर कहा, "हो क्यों नहीं सकता; लेकिन रेवा कोई बच्चा नहीं है। वह सब समझती है। पढ़ना उसका हमने अब बंद किया है। उसकी कई सहेलियाँ हैं। उनके यहाँ वह जाती थी और देर से लौटती थी। कई के भाइयों से उसकी जान-पहचान है। उनसे वह हँसती-बोलती थी। एक से तो मा विवाह करने को भी राज़ी हो गयी थी और उसे लेकर हँसी-मज़ाक भी चलता था। ऐसी दशा में यह कैसे कहा जा सकता है कि वे ही असली अपराधी हैं ?"

"फिर वह भाग क्यों गया ?"

"सुधाकर उनके प्रिंसिपल से अभी मिला था और होस्टिल से उनका पता भी ले आया है और इनके पिता को उसने लिखा है। हो सकता है इसी डर से भाग गये हों।"

"दुबे के पिता ने कोई उत्तर दिया है ?"

"लिखा है जो मन में आये उसका करो। मेरे जाने मेरा लड़का मर गया। अच्छी बात यह हो कि उसे पुलिस में दे दो।"

"फिर आप लोगों ने क्या सोचा ?"

"आप भी कैसी बात करते हैं। कहीं ऐसी घटनाओं की सूचना पुलिस में दी जाती है ?"

"रेवा क्या कहती है ?"

"पहले तो कुछ बताती ही न थी; पर एक रात मैं अपने साथ उसे ऊपर ले गयी और हम दोनों बहिनें छत पर ही दरी बिछाकर सो गईं। मेरे इस आश्वासन पर कि इस बात की चर्चा मैं किसी से नहीं करूँगी, उसने बड़ी कठिनाई से मुझे बताया।"

"किसी और का नाम लिया उसने ?"

"नहीं, वह तो इन्हीं का नाम लेती है।"

"आपको फिर भी विश्वास नहीं है ?"

"मैं तो यही समझती हूँ कि वह असली आदमी को छिपाती है ?"

"क्यों ?"

"सभी लड़कियाँ अपने प्रेमियों के दोषों को छिपाती हैं।"

"आप भी तो उनमें से एक हो सकती हैं ?"

रोहिणी ने हतप्रभ होकर कहा, "मैं नहीं जानती। कुछ भी हो, इस कमबख़्त ने अपना जीवन तो नष्ट किया ही, मेरे जीवन में भी अँधेरा भर दिया।"

जगदीश ने इस दृष्टिकोण से इस घटना पर विचार नहीं किया था। उसने फिर पूछा, "मान लीजिए, यह बात सच हो कि रेवा के जीवन के विनाश के लिए दुबे उत्तरदायी है, तो क्या आप उसे घृणा नहीं करेंगी ?"

"नहीं।"

"वैसे ही प्यार करती रहेंगी ?"

"आप समझते हैं अन्तर आ जायगा ?"

"आपकी बहिन का अपमान, आपके भाई का अपमान, आपके परिवार का अपमान, आपका अपमान नहीं है ?"

रोहिणी ने कुछ ज़ोर से बोलते हुए उत्तर दिया, "सब लोग अपमान-अपमान चिल्ला रहे हैं; लेकिन कोई यह नहीं सोचता कि उसमें रेवा का भी उतना ही हाथ है; और यह कोई नहीं सोचता कि मेरा क्या होगा ? क्या मैं उस आदमी से अब मिल सकती हूँ ?"

"रेवा क्या सुशील को घृणा करती है ?"

"आप भी क्या आदमी हैं, घृणा नहीं करेगी तो उनकी आरती उतारेगी ?"

"लेकिन आपके अनुसार जब उसका भी इस घटना में हाथ है तो वह उसे घृणा की दृष्टि से क्यों देखती है ?"

"उनके भाग जाने से वह उन्हें कायर समझती है, और क्या।"

"लेकिन क्या उसका विवाह अब कहीं और नहीं हो सकता है ?"

"वह कहती है : विवाह तो मेरा हो गया।"

"उसके कहने से हो गया ?"

"वह तो यही मानती है। इसी से कहती है कि वह दवा नहीं खायगी। बच्चे को बड़ा करेगी और जीवित रहेगी। वह अपने मन को समझा लेगी कि उसका पति परदेश गया है।"

"अगर वह कभी नहीं लौटा तो ?"

"तब भी वह कहती है, उसी का चिंतन करेगी।"

जगदीश सोच में पड़ गया। बोला, "हो सकता है दुबे मुझे चिट्ठी लिखे। अगर आप कोई बात कहना चाहती हों, तो मैं उसे सूचित कर सकता हूँ।"

"मैं केवल एक बार उनसे मिलना चाहती हूँ और जानना चाहती हूँ कि ठीक बात क्या है। झूठ-सच मैं उन्हीं के मुँह से सुनना चाहती हूँ।

मुझसे शायद ही वे कुछ छिपायें। क्या इतना आप मेरे लिए कर सकते हैं?"

"मैं कोशिश करूँगा।" जगदीश ने कहा।

४२

दुबे के कमरे का ताला तोड़ दिया गया था और उसमें एक दूसरा लड़का आ गया था। एक दिन जगदीश उधर गया तो उसने सुशील का एक पत्र उसे दिया। सुशील कलकत्ते में था। पत्र पाकर उसे बड़ा सन्तोष हुआ। दुबे ने अपनी कठिनाइयों की चर्चा खूब बढ़ा-चढ़ाकर की थी। जगदीश ने अपना पता देते हुए उससे आने का आग्रह किया। पत्र के पीछे उसने चौराहे से लेकर कोठी तक का नक़्शा दे दिया था। इस बीच रेवा के एक अठमासा लड़का हुआ था, जिसकी मृत्यु जन्म के थोड़ी देर बाद ही हो गई थी। रोहिणी ने बतलाया कि रेवा बच्चे की मृत्यु पर बहुत रोयी थी। लेकिन यह एक प्रकार से अच्छा ही हुआ। रेवा अब धीरे-धीरे स्वस्थ हो रही थी और पहले से बहुत सुन्दर लगने लगी थी। नयन इस समय कोठी में थी नहीं; अतः जगदीश ने सुशील को एक दूसरा पत्र लिखा और उसके आने की प्रतीक्षा करने लगा। फिर भी उसे विश्वास नहीं था कि वह आयगा। इसी से उसे सहसा अपने सामने पाकर वह बोला, "मैं तो समझा था कोई भूत मेरे कमरे में घुस आया। यह आपने हालत क्या मजनुओं की-सी बना रखी है? कुर्ता मैला, पाजामा सिकुड़ा हुआ, बाल बढ़े हुए। रोहिणी देखेगी तो क्या कहेगी?"

"अब मुझसे किसी का कोई सम्बन्ध नहीं। मैंने सब देख लिए। उन लोगों की बात मैं नहीं करना चाहता।"

"तुम्हारी रेवा रो-रो कर जान दिए डाल रही है।" शेव करने का सामान बढ़ाते हुए जगदीश ने कहा।

"मैने कहा न, मेरा उस घटना से कोई सम्बन्ध नहीं है।'

"तुम साले, इतने कमीने हो, हम नहीं जानते थे।" जगदीश ने क्रोध करते हुए कहा।

"यार, बिगड़ता क्यों है?"

"तुम दोस्तों से भी झूठ बोल सकते हो। तुम्हें तो ज़िन्दा गाड़ देना चाहिए।"

सुशील ने जगदीश को गले से लगा लिया। बोला : धीरे-धीरे सब बतलाऊँगा। तू तो एकदम लाल-पीला हो जाता है। पहले मुझे नहा-खा लेने तो दे।

"काम तुमने साले, फाँसी पर चढ़ने का किया है। तुम्हें खाना खिलाना चाहिए?"

दुबे हँसता रहा और देवदास फिल्म का—दुख के अब दिन बीतत नाहीं—गाता हुआ, नहाने चला गया।

खाना उन दोनों ने रैस्ट्रां में बाहर ही खाया। बौय जब प्लेटें रखकर चला गया तो दुबे ने पूछा, "मेरे पीछे तो बड़ा कुहराम मचा होगा?"

"आपकी सुशीलता की सूचना प्रिंसिपल को दे दी गई है। आपके पूज्य पिता जी ने घोषित किया है कि आप उनके सुपुत्र नहीं हैं। पुलिस आपकी प्रतीक्षा कर रही है कि कब आप आयें और कब वह आपसे साग्रह कहे—स्वागतम्।"

"रोहिणी मेरे बारे में क्या सोचती है?"

"सोचती है कि आप दूध के धोये हुए हैं।"

"अच्छा यार, मज़ाक छोड़। ठीक बतला, स्थिति क्या है?"

"आपकी प्रेमिका नम्बर वन सोचती है कि आप निर्दोष हैं।"

"बस, उसी की मुझे फ़िक्र थी...और मैं सब ठीक कर लूँगा।"

"अब प्रेमिका नम्बर टू के सम्बन्ध में कुछ कहने की कृपा करें।"

दुबे बोला, "प्यार तो मेरा रोहिणी से ही था और रेवा की ओर मैं ध्यान ही नहीं देता था। लेकिन एक बार मैंने जो उसकी ओर दृष्टि उठाई तो पता चला वह मुझे घूर रही है। उसने कुछ ऐसी भरी आँखों से मुझे देखा कि वह चितवन मेरे कलेजे के पार उतर गई।

अब कभी-कभी मै उससे मज़ाक करने लगा और वह मुझे उत्तर देने लगी। मैं उसे कभी छू देता तो वह बुरा न मानती। हल्का-सा चपत लगा देता तो शर्म के मारे लाल हो जाती।

एक बार मैं घर गया तो रेवा छत पर थी। ताश हम छत पर ही खेला करते थे। रोहिणी चाय बना रही थी। उसने कहा : ऊपर चलिए। मैं अभी आती हूँ। रेवा दरी पर सो रही थी। मै पास जाकर बैठ गया। पहले मैं उसके बाल सहलाता रहा। पता नहीं, वह सो रही थी या जग रही थी; पर हिली नहीं। मुझे अधिक साहस तो नहीं हुआ; पर मैंने धीरे से उसके माथे को चूम लिया। रेवा सहसा उठ बैठी। बोली : यह हमें अच्छा नहीं लगता। मैं दीदी से आपकी शिकायत करूँगी।

मैं तो डर गया था; पर रोहिणी से उसने कुछ कहा नहीं।

यह सम्पर्क बहुत बुरी चीज़ है, यार। सम्पर्क बढ़ता गया और मैं अधिक आकर्षित होता चला गया।

अब दुर्भाग्य जहाँ से प्रारंभ होता है उस घटना को सुनाता हूँ। यह बात मेरी समझ में आज तक नहीं आई कि जब मैं कभी उसके घर जाता था, तब वह मुझे छत पर ही प्रायः मिलती थी। नहीं भी होती थी, तो थोड़ी देर में वहाँ पहुँच जाती थी।

छत पर एक झरोखेदार कमरा है। वह तुमने देखा ही है।

मकान के सामने कुछ दूर पर एक बहुत प्रसिद्ध व्यापारी की कोठी है। इस आदमी ने बहुत रुपया पैदा किया था और वह शहर के मशहूर कंजूसों में से था। उसके मरने पर उसका सारा रुपया उसके लड़के के

हाथ लगा। इस समय लड़के की अवस्था पैंतीस-छत्तीस के आस-पास होगी। शरीर से कुछ स्थूल है।

पिता के मरने पर दोस्तों ने उसे घेरा। कभी-कभी जुआ उसके घर पर ही होता और शराब के दौर चलते रहते। चुपके-छिपे कभी-कभी कोई वेश्या भी वहीं आ जाती थी। लेकिन पुलिस को शायद जुए का पता चल गया था और इसी से अब वह रात को दोस्तों के साथ बाहर निकल जाता था।

विवाह इस आदमी ने किया नहीं। खाना बनाने के लिए एक महाराजिन रख छोड़ी थी। वह भरे शरीर की गोरे रंग की एक विधवा ब्राह्मणी है। अवस्था सत्ताईस-अट्ठाईस की होगी। रोज सुबह गंगा-स्नान को जाती है; लेकिन लोगों की ऐसा धारणा है कि निहायत बदचलन क़िस्म की औरत है। कुछ लोगों का ऐसा अनुमान है कि यह आदमी अपनी महाराजिन से फँसा हुआ है।

थोड़े दिन हुए एक नौकर घर की देखभाल के लिए इस आदमी ने और रख लिया था।

एक दिन रात के साढ़े आठ बजे के आसपास ऊपर के कमरे में रोशनी हुई। सहसा वर्षा प्रारम्भ हुई और मूसलाधार पानी बरसने लगा। रोहिणी नीचे थी...रेवा मेरे पास। न ऊपर का आदमी नीचे जा सकता था और न नीचे का ऊपर आ सकता था। मोटा व्यापारी अपने दोस्तों के साथ जुआ खेलने बाहर चला गया था।

हम लोग अँधेरे में थे; अतः हम तो किसी को नज़र नहीं आते थे; पर सामने का दृश्य स्पष्ट दिखाई देता था। गोरी महाराजिन लाला के पलंग पर आकर सो गई। उसके चले जाने पर मेरा ऐसा अनुमान है कि वह उसके मुलायम बिस्तर पर लेट जाती होगी। थोड़ी देर में ऐसा हुआ कि वह नौकर भी ऊपर आ गया और उसने महाराजिन की धोती उतारनी प्रारम्भ कर दी। मैंने रेवा को पकड़कर उधर दिखाया कि देख क्या हो

रहा है। मज़े की बात यह थी कि महाराजिन भी नौकर की धोती खींच रही थी। थोड़ी गुत्थम-गुत्था हुई और अंत में दोनों नंगे हो गये।

रेवा ने उधर से मुँह फेर लिया। वर्षा घनघोर हो रही थी और बिजली कड़क रही थी। कानों को कुछ सुनाई नहीं देता था। रेवा ने उत्तेजना का अनुभव किया और विवश होकर कंधा मेरे सिर पर रख दिया। उस दिन से हमारे बीच से झिझक जाती रही।"

जगदीश ने कहा, "अच्छा, अब मैं कॉलेज जाऊँगा। तुम कमरे में जाकर सोओ।"

चतुर्वेदी के घर जाकर जगदीश ने रोहिणी को सूचना दी। उसकी मा आगरे चली गयी थी। वहाँ उसके भतीजे का विवाह था। अतः रोहिणी को आने में कोई कठिनाई नहीं हुई। जगदीश दोनों को अकेला छोड़कर बाहर चला गया।

रात को दोनों मित्र अपने-अपने भविष्य के सम्बन्ध में बातें करते रहे। जगदीश बीच-बीच में रेवा का प्रसंग छेड़ता रहा; पर उसे दुबे के मन का पता न चला।

दूसरे दिन संध्या समय जब सुधाकर अपनी डिस्पेंसरी चला गया, तो उसने रोहिणी से आग्रह किया कि वह रेवा और दुबे को एक बार मिल लेने दे। पता नहीं फिर सुशील इधर कभी आये या न आये। रोहिणी ने कोई आपत्ति नहीं की। और तब रेवा को अपने कमरे में छोड़कर जगदीश रोहिणी के पास ही लौट आया। रोहिणी से उसने पूछा, "आपकी क्या बातचीत हुई?"

"विशेष कुछ नहीं। उस बात के लिए वे अब भी मना करते हैं और इसका मुझे पूरा विश्वास है।...मेरे पास जो था, वह मैंने सब दे दिया।"

"अर्थात् आपके पास जो रुपया और ज़ेवर था वह?" जगदीश ने चौंककर पूछा।

"हाँ।"

"कितना था!"

"काफ़ी था। लेकिन उन्हें रुपये की इस समय बहुत ज़रूरत है।"

यह कैसी नारी है! यह कैसा प्रेम है! जगदीश सोचता रह गया।

जगदीश जब अपने कमरे में लौटा तो वहाँ कोई न था। दुबे रेवा को लेकर भाग गया था। ख़र्च के लिए उसके पास रोहिणी के रुपये थे ही।

४३

"जी, मैं बनर्जी साहब से मिलना चाहता हूँ?"

"कहिए क्या काम है?" बँगले के फाटक के पास एक पत्थर की चौकी पर हुक्का पीते एक वृद्ध सज्जन ने जगदीश से पूछा।

"काम तो कोई विशेष नहीं है। लेकिन मैं इस परिवार से बहुत दिनों से परिचित हूँ। वैसे ही मिलने आया था।"

बनर्जी कहीं पास में ही थे। सुनकर एकदम निकल आये। आते ही बड़े उत्साह से हाथ मिलाया और ड्राइंग-रूम में ले गए। बोले, "कितने दिन हो गये आपसे भेंट हुए। वहीं विवाह में मिले थे। उसके बाद हम लोग आपको देख ही नहीं सके।"

बनर्जी के स्वागत से पिघलते हुए जगदीश ने कहा, "इधर मुझे अवकाश ही नहीं मिला। कुछ तो पढ़ने में भी लगा रहा। और भी झंझटें थीं जिनमें फँस गया।"

"ये शिकायत कर रही थीं कि आप वहाँ भी नहीं गये। आप तो इनसे घनिष्ठ रूप से परिचित थे। फिर ऐसी भी बेरुख़ी क्या?"

"सीमा ने शिकायत की है ?"

"जी हाँ। कह रही थीं कि मुझसे मिलना तो दूर, पिता जी से भी मिलने नहीं आये। दीदी इनकी इलाहाबाद चली गई हैं; अतः पिता जी आजकल बिल्कुल अकेले हैं। बहुत कमज़ोर हो गये हैं।"

"आप लोग तो मिलते रहते होंगे ?"

"हम लोग तो कई बार हो आये हैं। एक शहर का रहना है, जब चाहें तब मिल सकते हैं। लेकिन आपको भी जाना चाहिये था। मैंने उनसे कहा भी था कि नौकरानी को दूर कीजिए और हम लोगों के साथ रहिए; लेकिन वे किसी प्रकार राज़ी ही नहीं होते।"

"बाहर जो सज्जन बैठे हैं, वे आपके पिता जी हैं ?"

"जी हाँ। अभी आये हैं। एक सप्ताह रहकर चले जायँगे। आपने कैसे पहचाना ?"

"आपसे आकृति मिलती है; दूसरे जिस 'टोन' में उन्होंने बात की, वह कोई पिता ही कर सकता था।"

"हम भाई-बहिन सब उनसे बराबर डरते रहते हैं। कोई ऐसी-वैसी बात तो नहीं कही जो आपको बुरी लग गयी हो ?"

"जी नहीं। वे तो जैसे आपके पिता, वैसे मेरे भी···"

बनर्जी ने नौकर से चाय लाने के लिए कहा और फिर अपने शिक्षा-काल की चर्चा करते रहे। बात अपनी पेंटिंग्स पर आ गई। सीमा को बुलाना जैसे वे बिल्कुल भूल ही गए। जगदीश को अब पता चला कि स्थिति में कितना परिवर्तन आ गया है। एक दिन था जब सीमा उसे रोकती थी और वह चला आता था। कभी-कभी तो बुलाने पर भी वह नहीं जाता था। कैसे दिन थे वे जो उसने यों ही खो दिए।

"सीमा क्या बहुत नाराज़ है ?"

बनर्जी ने हँसकर कहा, "इतनी नाराज़ हैं कि आपसे बात नहीं करना चाहतीं।"

"तो उसे बुलाइए न। कर क्या रही है ?"

"संगीत की एक परीक्षा की तैयारी में हैं। उसी में लगी होंगी। लेकिन मैं कोशिश करता हूँ।"

बनर्जी उठकर भीतर जाने वाले थे कि नौकर के साथ चाय लेकर सीमा ने भीतर के दरवाज़े से प्रवेश किया। जगदीश उठकर खड़ा हो गया।

"आप बैठिए न।" बनर्जी ने कहा।

"अफ़सर की पत्नी भी अफसर से क्या कम होती है, साहब। कुछ दिन हुए एक अफसर के घर उनके बच्चे को पढ़ाने मुझे जाना पड़ा था। उनकी पत्नी इस प्रकार बात करती थीं जैसे अफसर उनके पति न हों, वे ही हों। दोनों में से कौन ज़्यादा बड़ा है इस बात का पता ही नहीं चलता था। एक दिन मुझे विदा करते हुए उन्होंने कहा : क्या बताएँ मास्टर साहब, हमारा तो ट्रांसफर ही लखनऊ को हो गया—यद्यपि ट्रांसफर हुआ था केवल उनके पति का।"

"यहाँ कोई ऐसा डर नहीं है।" सीमा ने मुस्कराते हुए कहा और चाय बनाने लगी।

जगदीश ने दृष्टि उठाकर देखा तो पाया सीमा के चेहरे पर थोड़ा पीलापन आ गया है। वह कुछ थकी-सी लग रही है। उस चेहरे को देखकर वह एकदम उसकी शिकायत वाली बात को पूछना भूल गया। चाय समाप्त हो चुकी थी; लेकिन पति-पत्नी दोनों ही चुप बैठे थे। उसने सोचा वह आज्ञा माँगे और चला जाय। लेकिन फिर पता नहीं वह उसे कब देख पायेगा; अतः अपने इस निर्णय को उसने मन ही मन लौटा दिया।

"आपका यह बँगला तो बहुत सुन्दर बना है।" जगदीश ने कहा।

"जी हाँ। मुझे भी बहुत पसन्द है। लेकिन असली पसन्द तो

इनकी है। चारों ओर से इतनी विरक्त हैं कि पता ही नहीं चलता इन्हें क्या अच्छा लगता है।"

"क्या, एक बार मैं इसे पूरा देख सकता हूँ ?"

"यह भी आपने क्या बात कही। आइए। इससे बड़ी प्रसन्नता की और हमारे लिए क्या बात हो सकती है।" बनर्जी ने उत्साह से उत्तर दिया।

"आप बैठिए। मैं दिखाए देती हूँ।" सीमा ने उठते हुए कहा।

"अच्छी बात है।" बनर्जी बोले और बाहर अपने पिता से बात करने चले गए।

कमरों में घूमते हुए जगदीश ने पूछा, "तुम्हें छू दें ?"

"यह साहस तुममें कब से आ गया ? जब कोई रोक-टोक नहीं थी, तब तो तुमने कभी छुआ नहीं, अब क्या छुओगे ? दूसरे की पत्नी होने से ही लोभ क्या अधिक हो जाता है ?"

"रोक-टोक क्या सचमुच नहीं थी ? अपने मन से पूछकर देखो।"

"किसी दिन छूकर देखते न !"

"तुम इतनी गंभीर क्यों हो ? कोई विशेष बात है ?"

"कोई होगी। आपको इस सबसे क्या मतलब ?"

"इतने कठोर नहीं होते सीमा।"

"पिता जी से मिलते रहना—बस। मकान देखने तुम नहीं आए हो, इतना वे भी समझते हैं। आओ, जल्दी लौट चलें।"

दोनों डाइंग-रूम में आ गए। बनर्जी वहाँ पहले-से ही बैठे हुए थे। लौटते हुए सीमा सुधांशुशेखर के कई चित्र उठा लाई थी। जगदीश ने उसके आशय को समझ लिया था। चित्र उसने अपने हाथ में ले लिए। जगदीश के हाथ में अपने चित्र देखकर बनर्जी का मूड कुछ बदला। कैसा ही प्राणी हो, ह्यूमर किए जाने पर कुछ न कुछ अनुकूल हो

ही जाता है। जगदीश चित्रों के शीर्षक देखने लगा—स्वप्न, आकर्षण, प्रतीक्षा, मिलन, दूरी, अनंत विरह···।

"चित्रों पर टैगौर शैली का प्रभाव है ?"

"हाँ।"

"इसी से वे इतने भावपूर्ण और सांकेतिक बन पड़े हैं।"

"आपको अच्छे लगे ये चित्र ?"

"अच्छे इसलिए लगे कि परिवर्तनशील जगत में जो शाश्वत भाव प्रवाहित हो रहा है उसके किसी गतिशील पल को बाँधने का प्रयत्न आपने इनमें किया है। देश-काल की सीमा से परे होने के कारण इस प्रकार की परिस्थितियाँ दर्शकों के मन को बराबर छूती रहेंगी।"

"पश्चिम में जब 'आर्ट' शब्द का प्रयोग होता है तो वहाँ उससे तात्पर्य प्रायः चित्रकला का ही होता है; पर यहाँ न जाने क्यों सभी चीजों को कला कहते हैं।" बनर्जी ने प्रशंसा से अप्रभावित होते हुए कहा।

"कला का अर्थ इतना सीमित तो नहीं ही होना चाहिए। चाहे आप हमारे यहाँ बताई गई चौंसठ कलाओं में से सभी को न मानें; लेकिन साहित्य, संगीत और चित्र आदि को तो कला की संज्ञा देनी ही पड़ेगी..."

"क्या आप कला की व्याख्या कर सकते हैं ?"

"व्याख्या ये सब चीज़ों की कर सकते हैं—उन चीज़ों की भी जिनकी कोई नहीं कर सकता। ये भावुक कम और विश्लेषक ज़्यादा हैं।" ऐसा कहकर सीमा हँस पड़ी। उसने नौकर को बुलाकर कहा, "रामदास, चाय और लाओ।"

"हमारे यहाँ हिन्दी के एक बहुत बड़े कवि हैं—मैथिलीशरण गुप्त। उनका 'साकेत' नाम का एक महाकाव्य है। उसमें उन्होंने कला की अत्यन्त स्पष्ट और निर्विवाद व्याख्या की है।"

"काव्य-ग्रंथ में कला की व्याख्या की है ?" सुधांशुशेखर ने टोका।

"जी हाँ।"

बनर्जी ने पूछा, "कला के सम्बन्ध में आपके कवि ने क्या कहा है ?"

कहा है, "अभिव्यक्ति की कुशल शक्ति ही तो कला।"

"यह तो ठीक है।" बनर्जी ने कुछ सोचते हुआ कहा।

"इस दृष्टि से काव्य ही श्रेष्ठतम कला है। काव्य में आपके संगीत और चित्र दोनों समहित हो जाते हैं। काव्य की व्यापकता और स्थायित्व को न संगीत छू सकता है और न चित्रकला।"

"लेकिन स्वर तो स्वयं ब्रह्म है। मेरा कहना यह है कि जो स्वर को नहीं समझता, वह ब्रह्म को भी नहीं समझ सकता।" सीमा बोली।

"क्या करना है आपके ब्रह्म को समझ कर ?" जगदीश ने पूछा।

"ये ब्रह्म के पीछे बहुत पड़ी रहती हैं। इस घर में एक 'राइवल' तो अपना यह 'ब्रह्म' ही है।" बनर्जी ने व्यंग्य करते हुए कहा।

"सारी कलाओं का केन्द्र और उनका लक्ष्य मनुष्य ही है।" जगदीश बोला।

"आप ईश्वर में विश्वास नहीं करते ?" सीमा ने चिढ़कर पूछा।

"जिस रूप में आप करती हैं, उस रूप में तो नहीं ही करता···।"

"विराट के प्रति आत्म-निवेदन सभी कलाओं में पाया जाता है। नृत्य, चित्र, संगीत और काव्य जब सभी इस भूमि में प्रवेश करते हैं तो कितने 'सबलाइम' हो जाते हैं।"

"अपने से किसी बड़े के प्रति आत्म-समर्पण करना, यह तो मनुष्य का स्वभाव है। ऐसी दशा में वह अपनी भावना को ही बड़ी करके देखता है। उसके लिए ईश्वर का होना आवश्यक नहीं है। आत्म-समर्पण की भावना एक आदिम प्रवृत्ति है।"

"आदिम प्रवृत्ति तो अधिकार की भावना भी है।" सीमा ने कहा।

"अधिकार की भावना और आत्म-समर्पण की भावना के बीच एक

और भी भावना है जिसकी अनुभूति सभी को नहीं होती ··" जगदीश ने रुककर कहा।

"वह क्या है ?" बनर्जी ने पूछा।

"मैं उसे जीवन की सार्थकता की भावना कहूँगा। जिनमें अधिकार की भावना प्रबल होती है उनमें और जिनमें आत्म-समर्पण की भावना प्रबल होती है उनके मन में भी, यह आकांक्षा कहीं छिपी रहती है कि उन्हें कोई स्वीकार करे—स्वीकार करे जिससे उन्हें लगे कि उनके अस्तित्व की कोई सार्थकता है, कि दुनिया में कम से कम एक प्राणी ऐसा अवश्य है जिसे उनकी आवश्यकता है। ऐसा न हो तो फिर जीवित रहना व्यर्थ है। इसी को मैं अस्तित्व की सार्थकता कहता हूँ।"

सुधांशुशेखर और सीमा दोनों सहसा उदास हो गए। सीमा जब चाय बनाने लगी तो जगदीश ने कहा, "मिस्टर बनर्जी के लिए पहले आप चाय बनायें, लेकिन अपनी चाय मैं स्वयं बनाऊँगा।"

"क्यों ?"

"चाय बनाना महिलाओं का काम समझा जाता है; लेकिन मुझे सबसे अच्छी चाय वह लगती है जो मैं अपने हाथ से बनाता हूँ।"

"जितनी चाय आप पीते हैं, उतनी चाय बनाकर आपको दे, इतना अवकाश है किस महिला के पास !" सीमा बोली और मन में चुप से कहा, "झूठे कहीं के !"

"आप क्या बहुत चाय पीते हैं ?"

"दिन में दस-बारह प्याले तो हो ही जाते हैं।"

"पन्द्रह।" सीमा बोली।

"अच्छा पंद्रह ही सही। तीन प्याले का झूठ कोई झूठ नहीं है।"

सीमा ने मुस्कराकर चाय का सामान जगदीश की ओर बढ़ा दिया।

दरवाज़े पर किसी को खड़े देख बनर्जी ने कहा, "सीमा तुम्हारे मास्टर साहब आ गए। तुम कहो तो आज मना कर दें ? न सही एक दिन।"

"नहीं, नहीं।" सीमा ने कहा, "अच्छा, मैं चलकर अपना अभ्यास करूँ। परीक्षा एकदम सिर पर है।"

सीमा भीतर चली गयी। जगदीश भी बनर्जी से हाथ मिलाकर और उसके पिता को फाटक पर प्रणाम करके लौट आया।

४४

जगदीश की सबसे बड़ी इच्छा कवि बनने की थी। कानपुर में आकर उसके मन में सहसा काव्य का स्फुरण हुआ और अपनी अनुभूतियों को उसने शब्द-रूप दिया। इन प्रारंभिक रचनाओं में कोई विशेष बात न थी। सभी प्रकार का कचापन उनमें विद्यमान था। कच्चे फल में जैसा रस होता है, वैसा ही रस उनमें था। बीच-बीच में पंक्तियाँ कहीं-कहीं चमक उठी थीं। लेकिन कवि-सम्मेलनों में इनमें से कुछ रचनाएँ बहुत सफल सिद्ध हुईं। उनके अतिरिक्त भी उसने बहुत-सी कविताएँ उस समय लिखीं, जिन्हें उसने कभी किसी को सुनाया न था।

लिखने की कामना पूरी होने पर, उसे सुनाने की कामना मन में स्वभावतः जगी। कभी-कभी तो वह अपनी कविता उसी समय किसी को सुनाना चाहता। लेकिन उसके आस-पास कोई व्यक्ति ऐसा न था जो उसकी इस इच्छा को पूरी कर सकता। नयन से वह बहुत खुला हुआ न था; अतः दुबे को ही वह कभी-कभी पकड़ता था। दुबे कविता का प्रेमी तो था नहीं; अतः उसे सुनाना न सुनाना बराबर था। आगे चलकर जब उसका कुछ नाम हुआ तो 'मानसरोवर' का वह सदस्य हो गया। उसकी गोष्ठियों में वह बराबर भाग लेता रहा।

अब उसके मन में एक तीसरी कामना जगी—अपना फोटो छपवाने

की। पत्र-पत्रिकाओं में हिन्दी के कुछ प्रसिद्ध कवियों के चित्र देखकर वह सोचने लगा : उसका फोटो क्यों नहीं छप सकता? बी० ए० में उत्तीर्ण होने के उपरान्त अपनी डिग्री लेने वह आगरे गया था। वहाँ से वह अपने एक मित्र के साथ फ़तहपुर सीकरी चला गया और रास्ते में उसने एक लम्बी कविता लिखी—सीकरी के क़िले में। लौटकर वह फिर आगरे आया। वहाँ एक कवि-गोष्ठी में उसने भाग लिया। उसमें एक प्रसिद्ध पत्रिका के एक सहायक संपादक भी थे। सीकरी के क़िले पर लिखी कविता उन्हें बहुत पसंद आयी और उसकी प्रतिलिपि वे अपने साथ ले गए। अपने कार्यालय में पहुँच कर उन्होंने जगदीश को एक पत्र लिखा। उसमें उसका फ़ोटो माँगा गया था। जगदीश की प्रसन्नता की सीमा न रही। इसके उपरांत तो उसकी बहुत-सी रचनाएँ चित्र सहित प्रकाशित हुईं। लेकिन उसकी प्रसन्नता का सबसे बड़ा दिन था वह जब उसे उसकी एक कविता पर दस रुपये का पारिश्रमिक प्राप्त हुआ। इस पारिश्रमिक में थोड़े रुपये और डालकर उसने हिन्दी के कई प्रसिद्ध काव्य-ग्रन्थ ख़रीदे।

लेकिन नवयुवकों की कामनाओं का क्या कोई अंत है! उसने अपनी कविताओं का एक संग्रह तैयार किया। स्वयं एक छोटी-सी भावपूर्ण भूमिका लिखी और पांडुलिपि लेकर वह एक प्रकाशक के घर पहुँचा—उसके कार्यालय जाना उसने उचित नहीं समझा। प्रकाशक तकिये के सहारे बैठा सुबह का अख़बार बाँच रहा था। उसे खद्दर के कपड़ों में देखकर जगदीश के ऊपर थोड़ा रौब पड़ा। फिर भी वह साहस बटोर कर अपनी बात उसे समझाने लगा। प्रकाशक ने ऊपर से नीचे तक जगदीश को देखा और उससे अपनी कोई एक रचना पढ़ने के लिए कहा।

जगदीश ने कहा, "आप पढ़ लीजिए।"

प्रकाशक ने अख़बार को दूसरी ओर रख दिया और पांडुलिपि अपने हाथ में ले ली। वह इधर-उधर पृष्ठ पलटने लगा। अपने काम के लिए किसी को 'परस्यूएड' करने की कला जगदीश को अभी आती न थी; अतः

वह समझ नहीं पा रहा था कि किस प्रकार की बातें करे। इतने में दरवाजे से एक व्यक्ति ने प्रवेश किया। देखने में वह किसी का नौकर-सा लगता था।

"लाला जी ने चैक मँगाया है।"

"बैठ जाओ।" प्रकाशक ने कहा और एक कविता पढ़ने लगा।

"मैं कितनी देर में आऊँ ?"

"कल इसी वक्त।" संक्षिप्त-सा उत्तर था।

आदमी भुन्नाता चला गया। वह संभवतः किसी महत्त्वपूर्ण व्यक्ति का नौकर था।

"आप तो अभी पढ़ते हैं ?"

"जी हाँ।"

"अभी आपने एम० ए० भी पास नहीं किया है ?"

"जी नहीं। लेकिन हमारे बड़े कवियों में एक महादेवी को छोड़कर कोई एम० ए० पास नहीं है। कविता और एम० ए० का कोई संबंध नहीं है।"

इतने में एक दूसरा नौकर आया। उसने नमस्ते करके कहा, "सेठ जी ने चैक मँगाया है। कहा है : बहुत जरूरी न होता तो मैं इस समय आदमी नहीं भेजता।"

"तुम देख रहे हो कि हम इस समय एक सज्जन व्यक्ति से बातचीत कर रहे हैं। बैठ जाओ।" जगदीश की ओर मुड़कर उसने पूछा।

"आप किसी प्रसिद्ध कवि या आलोचक से इस पुस्तक की भूमिका लिखवा सकते हैं ?"

"जी नहीं।"

इतने में नौकर ने कहा, "मैं सेठ जी से क्या कह दूँ ?"

"कहना कल-परसों तक किसी समय भिजवा देंगे।"

नौकर चला गया।

प्रकाशक ने कहा : देखिए बात यह है कि कविता की पुस्तकें बहुत चलती नहीं हैं। आप नए लेखक हैं। मैं 'रिस्क' लेने के लिए भी तैयार हो जाता; लेकिन आप मेरी छोटी-से-छोटी बात मानने के लिए भी तैयार नहीं हैं।...

इतने में सेठ जी के एक तीसरे नौकर ने दरवाज़े से प्रवेश किया। इस बार एक वृद्ध मुसलमान आया। वह आकर चुपचाप एक कोने में बैठ गया।

"मैं किसी की प्रशंसा के सहारे प्रसिद्ध होना नहीं चाहता। अपनी रचनाओं के बल पर ही मैं जीवित रहना चाहता हूँ..."

"यह तो ठीक है।" फिर रुककर पूछा, "आप कोई उपन्यास नहीं लिख सकते?"

"आप समझते हैं मेरी उम्र उपन्यास लिखने की है? मेरा क्या अनुभव है जो मैं उपन्यास लिखूँ?"

"यह तो ठीक है।"

"अच्छा, आप कुछ रुपये इसके प्रकाशन में ख़र्च कर सकते हैं?"

"मेरे पास रुपये ही होते तो मैं आपके पास क्यों आता?"

"यह तो ठीक है।"

प्रकाशक कुछ झुँझला गया था। उसने कोने में बैठे वृद्ध मुसलमान से पूछा, "कहो बड़े मियाँ, तुम्हें क्या काम है?"

"मैं हुज़ूर को सलाम करने चला आया था। जब दो नौकरों को हुज़ूर ने लौटा दिया, तो लाला जी बड़े दुःखी हुए। दोनों नए आदमी हैं हुज़ूर। जानते नहीं बड़े आदमियों से कैसे बातें करनी चाहिए। लाला जी दोनों को निकालने को तैयार हैं। मैंने अर्ज़ किया : मैं अभी दरियाफ़्त करके आता हूँ कि दोनों से क्या बेअदबी हुई।"

"कितने रुपये की जरूरत है?" प्रकाशक ने मुलायम होते हुए पूछा।

"ज़रूरत तो पूरे एक हजार की ही थी; पर इस वक्त पाँच सौ रुपये से ही काम चल जायगा।"

"पाँच सौ के क्या माने होते हैं, तुम पूरे एक हजार लो।"

और प्रकाशक ने एक हज़ार का चैक उसे काट दिया।

जगदीश की पुस्तक उसने नहीं छापी।

४५

अपने पिता के घर सीमा को देखकर जगदीश की प्रसन्नता की सीमा न रही। नगर में एक धार्मिक चित्र आया था, उसी को देखने बाप-बेटी दोनों जा रहे थे। धार्मिक चित्रों में जगदीश की कोई रुचि न थी; अतः उसने जाने की अनिच्छा प्रकट की; परन्तु सीमा ने बहुत आग्रह किया और उसे उनके साथ जाना पड़ा। चित्र इतना बुरा न था। वहाँ से लौटने पर सभी ने साथ-साथ खाना खाया। सीमा के आने से भट्टाचार्य बहुत प्रसन्न थे। जगदीश सीमा से एकांत में कुछ बातें करना चाहता था; लेकिन उसने वह अवसर ही उसे न दिया। यह बात जगदीश को कुछ अखरी, फिर भी दूसरे के घर में अपनी इच्छा कहाँ तक चल सकती है, यह सोचकर वह चुप हो गया।

"आज पिता जी अपना उपन्यास हमें भी सुनाइए।"

"अरे, कैसी पागल लड़की है! उस उपन्यास में क्या रखा है! मैं कोई शरच्चन्द्र हूँ।"

"शरच्चन्द्र तो सब नहीं हो सकते पिता जी, इसका तात्पर्य यह नहीं है कि और कोई कुछ लिखेगा ही नहीं।"

"लेकिन इन्हें जाने को जो देर होगी।"

"नहीं, मैं देर से चला जाऊँगा। साहित्य-चर्चा के लिए मेरे पास सदैव समय है।"

भट्टाचार्य नीचे जाकर अपनी पांडुलिपि उठा लाए। पांडुलिपि क्या थी, पूरा पोथा था। उपन्यास विवरणात्मक अधिक था। नायक उद्यान में है तो फिर एक-एक वृक्ष, फूल और लता का वर्णन है। नदी-किनारा है तो उसके घाट, स्नान करने वालों, पंडा-पुजारियों-भिखारियों की पूरी चर्चा है। वसंत या शरद ऋतु है तो पूरे बारहमासे के साथ उस ऋतु की विशेषताएँ गिनायी गई हैं। रात का समय है तो उसका काव्यात्मक चित्रण है। कथानक का विकास बहुत धीरे-धीरे हो रहा है, इसकी उपन्यासकार को चिंता ही नहीं है—जैसे लिखने और पढ़ने वाले दोनों के पास बहुत समय है। थोड़े से पृष्ठ सुनकर लगा कि एक साधारण प्रेम-कहानी है जिसका अंत निराशाजनक होगा। नायक या तो नदी में डूब मरेगा—क्योंकि नदी की चर्चा उसमें बार-बार आती थी, या संन्यासी हो जायगा।

जगदीश ने बीच में एक बार चाय माँगी, तो सीमा ने 'ना' कर दी। भट्टाचार्य लड़की पर बिगड़ पड़े। बोले: यह तो तुम्हारा अत्याचार है सीमा। एक भद्र पुरुष को एक थर्ड-रेट उपन्यास सुनाने के लिए रोक रखा है और उसके लिए चाय भी नहीं।

"कौन कहता है कि मेरे पिता जी थर्ड-रेट उपन्यास लिखते हैं? आप क्या ऐसा सोचते हैं कवि जी?"

"वर्णन तो इसमें बड़े चित्रात्मक हैं और बीच-बीच में काव्य के पुट ने उन्हें रसात्मक बना दिया है। संसार के बीच आँखें खोलकर चलने वाला ही ऐसे सूक्ष्म वर्णन कर सकता है। लेखक के ज्ञान की जैसे कोई सीमा नहीं है। अनुभव उसका विशाल है। सबसे अच्छी बात मुझे यह लगी कि यौवन-काल की भावनाओं का वर्णन करते समय अश्लीलता कहीं नहीं आई…"

भट्टाचार्य गद्‌गद् हो उठे। बोले: आहा! मैंने कहा नहीं था—

गुणी व्यक्ति है। अपने बंगाल में यदि ऐसे श्रेष्ठ आलोचक होते तो बहुत सी प्रतिभाएँ, 'अनरिकौगनाइज़्ड' न रह जातीं। शरद का ही उन्होंने कितना विरोध किया है—अकारण।"

"शरच्चन्द्र की बहुत-सी विशेषताओं में से एक यह भी है कि कथानक पर उनका असाधारण अधिकार है। उपन्यास के समाप्त होने पर भी पाठक भटकता रह जाता है। उसकी इच्छा होती है कि वे उसे कुछ और आगे बढ़ाते। उन्होंने ऐसा कभी किया नहीं। वे चाहते तो जहाँ उपन्यास समाप्त हुआ है, वहीं से उसे फिर उठाकर उतने ही बड़े कथानक की कल्पना कर सकते थे।" जगदीश ने कहा।

सीमा चाय बनाने चली गयी। भट्टाचार्य ने उत्साहित होते हुए कहा "मेरे इस उपन्यास का कथानक भी ऐसा ही है। उसमें अन्त तक उत्सुकता बनी रहती है। मैं भी चाहूँ तो इसे एक निराला ही मोड़ देकर इतना ही बढ़ा सकता हूँ।"

जगदीश की समझ में नहीं आया क्या उत्तर दे। उसने देखा सीमा मुंह फेरकर मुस्करा रही है।

"उपन्यास को बढ़ाना ही है तो उसका दूसरा भाग कर दीजिए न।" जगदीश ने सुझाव दिया।

भट्टाचार्य को यह सुझाव पसन्द आया। सीमा ने टोकते हुए कहा, "लेकिन पहले उसे पूरा सुन तो लें। ये बहुत चालाक आदमी हैं पिता जी। चाय की बात उठाकर इन्होंने मूड ही बदल दिया और अब रात भी बहुत हो गयी है।..."

"हाँ, अब तुम सोने जाओ।"

"अच्छा, मुझे आज्ञा मिले।" जगदीश ने उठते हुए कहा।

"नहीं, इसके आगे का अंश हम प्रभातकाल में सुनेंगे।"

"तो मैं उस समय आ जाऊँगा।"

"नहीं पिता जी, इनका कोई भरोसा नहीं। इनसे कहिए ये यहीं सो

जायँ। मैं इनके लिए ऊपर प्रबन्ध कर दूँगी। वहाँ अकेले पड़े-पड़े कविता सोचते रहेंगे।"

देर वास्तव में बहुत हो गयी थी। लेकिन इस बीच कि जगदीश जाने के लिए अधिक आग्रह करे, सीमा उसका बिस्तार लगा आई। वह वहाँ जाकर लेट गया और थोड़ी देर में उसे नींद आ गयी।

स्वप्न में उसने देखा—एक बहुत बड़ा महल है। उसमें न जाने कितने कमरे हैं; पर दरवाज़ा किसी में नहीं। वह कभी किसी कमरे में जा निकलता है, कभी किसी में। अंत में वह एक ऐसी दीवाल के सामने आता है जिसके आगे रास्ता ही नहीं है। वहाँ उसका जी बहुत घुटता है।

उसकी आँख कुछ खुली। वह फिर तंद्रावस्था में हो गया। इस बार उसने देखा—एक बहुत घना जंगल है। उसमें एक बहुत ऊँची और चौड़ी दीवार है। वह न जाने कैसे उसके ऊपर पहुँच गया है और दौड़ता चला जा रहा है।

आँख उसकी फिर खुली। चारों ओर अँधेरा देखकर वह सो गया। थोड़ी देर में उसने देखा—एक विशाल नदी है। उसके ऊपर वह उड़ता चला जा रहा है। नदी का कहीं अंत नहीं है!

यह सपना भी उसका बहुत देर नहीं चला। फिर भी सपने से उसे छुटकारा नहीं मिला। देखता है—वह यात्रा कर रहा है, ट्रेन में। खिड़की के सहारे बैठा वह बाहर के दृश्य देख रहा है। इतने में रात हो जाती है और वह सो जाता है। स्वप्न में वह सीमा को देखता है। स्वप्न के भीतर जो स्वप्न चल रहा है उसमें चाहता है कि वह कभी टूटे नहीं। लेकिन स्वप्न टूट जाता है और वह अर्द्ध निद्रावस्था में कहता है—सीमा। थोड़ी देर में उसकी आँख खुल जाती है। वह देखता है सीमा उसके पास बैठी है।

जगदीश उठकर बैठ गया। इसकी आशा उसे नहीं थी।

"सीमा तुम?"

"हाँ, मैं।"

"पिता जी कहाँ हैं?"

"नीचे सो रहे हैं—अपने कमरे में, डरने की कोई बात नहीं।"

"फिर भी, रात में इस समय?"

"हाँ।"

"तुम कितनी देर से यहाँ हो?"

"थोड़ी देर हुई। पहली बार मैंने तुम्हारे मुँह से अपना नाम सुना।"

जगदीश ने यह नहीं बतलाया कि स्वप्न में वह उसी को देख रहा था। इस स्थिति की उसने कभी कल्पना नहीं की थी। उसने सीमा के मुँह की ओर देखा। फिर सिर झुका लिया। थोड़ी देर दोनों चुप रहे। न जाने कितनी भावनाएँ दोनों के मन में बिजली-सी कौंध गयीं।

सीमा आगे बढ़कर उसके कंधे से लग गई और रोने लगी। जगदीश ने न तो उसे छुआ और न उसका सिर कंधे से हटाया। बहुत प्यार से उससे पूछा: तुम तो सीमा इतनी दुर्बल कभी थीं नहीं। क्या बात है?

सीमा ने रोते-रोते ही कहा, "मेरे साथ विश्वासघात किया गया है।"

जगदीश की समझ में कुछ नहीं आया। पूछा, "किसने किया है यह विश्वासघात?"

"सभी ने।"

"जैसे?"

"इन्होंने। दीदी ने।"

उसे लगा बात गंभीर है। अपने दोनों हाथों में उसके मुख को लेकर उसने पूछा: तुम क्या मेरे ऊपर विश्वास करती हो?

"हाँ।"

"तो पहले यह रोना बंद करो। मुझसे नहीं देखा जाता। रोने से तो

तुम ठीक से बात भी नहीं कर पाओगी। और बिना कुछ भी छिपाए मुझे बताओ बात क्या है।"

"जब इनका विवाह हुआ तो इनके मा-बाप उसमें सम्मिलित नहीं हुए थे। इस पर मुझे थोड़ा आश्चर्य हुआ था। मैंने उनके दर्शन करने चाहे तो ये बराबर टालते रहे। मेरे बहुत आग्रह करने पर ये मुझे पटना ले गए। वहाँ जाकर मुझे पता चला कि इनका एक विवाह इसके पूर्व ही हो चुका है ?"

"इस बात का कालिंदी को पता था ?"

"हाँ। कहते तो ये यही हैं कि यह बात इन्होंने विवाह से पूर्व दीदी को बता दी थी।"

"तुम्हारे पिता को इस बात का पता है ?"

"हो सकता है हो, हो सकता है न हो।"

"संभावना क्या है ?"

"दोनों ही बातें संभव हैं। पुराने विचारों के आदमी हैं। सोचा होगा : इससे कुछ बनता-बिगड़ता नहीं। दीदी ने भी यही सोचा होगा कि साथ तो मैं ही इनके रहूँगी। वह एकदम अशिक्षित और कुरूप है। शुरू से ही इनका मन उससे नहीं मिलता।"

"तुम्हें तो ये प्यार करते हैं ?"

"इससे क्या होता है ? मेरी अंतरात्मा तो इस अन्याय को सहन नहीं कर सकती।"

"फिर भी इस समय तुम एक व्यक्ति की पत्नी हो—इसे अब कोई नहीं मिटा सकता।"

"मैं नहीं मानती।"

"क्या नहीं मानती, पागल ?"

"नहीं मानती कि ये मेरे पति हैं, कि मैं इनकी पत्नी हूँ। ऐसे व्यक्ति को मैं कभी अपना पति स्वीकार नहीं कर सकती।"

"यह विद्रोह की आग तुममें कहाँ छिपी थी ? मैं इसे कभी देख ही नहीं पाया ?"

"यह विद्रोह की बात नहीं, व्यक्ति के सहज अधिकार की बात है।"

"तो बनर्जी से तुम्हारी बातचीत हुई ?"

"हुई क्यों नहीं। मैंने कहा कि मैं उन्हें छोड़ना चाहती हूँ।"

"क्या उत्तर दिया उन्होंने ?"

"पहले तो बहुत समझाया। फिर कहने लगे इसमें मेरी बेइज़्ज़ती है। अगर तुम अलग ही रहना चाहती हो तो मैं प्रबंध कर दूँगा। जब मै राजी नहीं हुई तो कहने लगे : अच्छा मैं अपने ट्रांसफर के लिए प्रयत्न करता हूँ। उसके उपरांत तुम जैसा उचित समझो वैसा करना। वैसे भी मैं उनकी 'टाइप' नहीं हूँ।......"

"क्यों कुछ और भी मतभेद हैं क्या ?"

"अभी बात बहुत स्पष्ट तो नहीं है; लेकिन यह तो पता चल ही गया है कि मैं गाती हूँ। अफ़सरों के यहाँ प्रायः पार्टियाँ या उत्सव होते रहते हैं। वहाँ मुझसे बिना पूछे मेरा कार्यक्रम रख दिया जाता है और मुझे गाना पड़ता है। वहाँ गाने को मेरा मन नहीं करता; लेकिन मैं जानती हूँ कि उसके पीछे अफ़सरों को प्रसन्न करने और उसके द्वारा अपनी पद-वृद्धि की कामना छिपी हुई है। यह 'स्प्रिट' मुझे बुरी लगती है। क्या तुम इसे ठीक समझते हो ?"

"नहीं, कम से कम मैं तो इस बात का समर्थन नहीं ही कर सकता।" फिर रुककर पूछा, "तो इनके ट्रांसफ़र तक तुम इनके साथ रहोगी ?"

"हाँ।"

"फिर सदैव को पृथक हो जाओगी ?"

"हाँ।"

"यह तुम्हारा अंतिम निर्णय है ?"

"हाँ।"

"इसके उपरान्त कहाँ रहोगी ?"

"पिता जी के साथ रहूँगी।"

"वे तुम्हारे विद्रोह का समर्थन करेंगे ?"

"थोड़े दिन समझायेंगे। फिर मान लेंगे।"

"लेकिन वे तो वृद्ध हो रहे हैं! उनका क्या पता। इसके उपरान्त क्या होगा ?"

"इसके उपरान्त तुम्हारे साथ रहूँगी।"

जगदीश ने सिर झुका लिया। अपने हाथ उसने खींच लिए।

"क्यों, मैं सब कुछ छोड़कर यदि किसी दिन तुम्हारे पास चली आऊँ, तो तुम मुझे निकाल दोगे ?"

"इतनी बड़ी बात नहीं कहा करते। उधर देखो, प्रभातकाल हो रहा रहा है। अब मैं जाऊँगा।"

"पिता जी पूछेंगे तो मैं क्या जवाब दूँगी ?"

"कहना—रात में किसी समय साँकल खोलकर चले गये···।"

सीमा ने रुककर पूछा, "मुझसे कहने को कुछ नहीं है ?"

"बहुत-सी बातें तुम समझती नहीं। तुम क्या कर रही हो यह भी नहीं जानतीं। तुमने कितना बड़ा क़दम उठाया है, कितनी बड़ी 'रिस्क' लाइफ़ में ली है, इसका अनुमान भी तुम्हें नहीं है। मुझे तुमसे यही डर था······"

"मुझे तो डर नहीं लगता।"

"लेकिन मुझे लगता है।"

इतना कहकर जगदीश ने सीमा के दोनों हाथ अपने हाथों में ले लिए। बोला, "कोई तुम्हें समझता हो या नहीं, लेकिन एक आदमी है जो तुम्हें समझता है, इतना विश्वास रखना। जीवन में और कोई तुम्हारा साथ दे या न दे, मैं तुम्हारा साथ दूँगा—इतनी दूर तक जिसकी तुम

कल्पना नहीं कर सकतीं। लेकिन फिर भी तुम स्वतन्त्र हो मेरी ओर से…"

"इसका क्या आशय है ?"

"व्यक्तित्व की जिस स्वतंत्रता को लेकर तुम अपने को संकट में डालने जा रही हो, उसे कभी खोना नहीं, मेरे लिए भी नहीं, इतना ही मैं चाहता हूँ और अब मैं जाऊँगा…"

सीमा कुछ कहने वाली थी; लेकिन जगदीश ने सुना नहीं। वह तारों की मिटती छाया में उतरकर न जाने कहाँ चला गया।

४६

जगदीश के मन की स्थिति आजकल विलक्षण है। यह वह समय है जब मनुष्य अपने सपनों का निर्माण करता है, जब मनुष्य अपने जीवन-पथ पर संबल बटोरकर चल पड़ता है। जगदीश का पाथेय क्या है, वह नहीं जानता। यह मन में बार-बार क्या जगता है, वह समझ नहीं पाता। पूर्व और पश्चिम के अनेक लेखकों के अनेक ग्रंथ उसने पढ़े! उनमें से सभी सत्य को अपनी सीमित परिधि में ही पकड़ पाये थे। उससे जीवन के सम्बन्ध में उसे कुछ भी स्पष्ट नहीं हुआ। अंततः ये बानू, सीमा, प्रीति और नयन ही थीं जिन्होंने मिलजुलकर उसके जीवन-पथ का निर्माण किया। सभी अपने विश्वासों में आस्था रखती थीं। किसकी आस्था उसकी आस्था बनेगी, वह जानता नहीं था। कानपुर में जब कभी वह किसी ऐसी सड़क पर निकल जाता जहाँ नगर के उच्च अधिकारी और सम्पन्न व्यक्ति रहते थे, तो उनके बँगलों और विस्तृत कोठियों को देखकर उसके मन में ऐसी आकांक्षा उठती कि वह

भी किसी दिन सम्पन्न बनेगा। उसके पास भी एक सुन्दर बँगला होगा, उसके आगे लॉन होगा, कार होगी, नौकर-चाकर होंगे, सुसज्जित ड्राइंगरूम होगा, वहाँ लोग उससे मिलने आया करेंगे, उसके कमरे से भी पियानो के स्वर फूटकर रात पर जादू जैसा किया करेंगे। कभी वह सोचता वह कुछ भी नहीं बन पायेगा और तब उसका सपना टूट जाता। हिन्दी लेकर वह एम० ए० कर रहा है। अधिक से अधिक वह किसी डिग्री कॉलेज में लेक्चरर हो जायगा। अध्यापकों का समाज में क्या स्थान है? उन्हें कौन पूछता है? और तब उसका मन उदास हो जाता। एक हताश भावना उसके मन में घर कर लेती और घर कर लेती मन में एक प्रकार की हीनता की भावना। वह सोचता अब मै इधर से कभी नहीं निकलूँगा। कभी ऊँचे सपने नहीं देखूँगा। बड़े आदमियों के सम्पर्क में रहने से अकारण मन महत्वाकांक्षी बनता है और दुःख उठाता है। मैं अपनी अध्यापकी या जीवन में जो भी काम मिल जायगा, उसमें सुखी और संतुष्ट रहूँगा।

ऐसे ही जब वह देश-विदेश के लेखकों की महान् कृतियाँ पढ़ता, तो वह सोचता किसी दिन मैं भी ऐसा ही लिखूँगा, मेरी भी ऐसी ही ख्याति होगी, मेरा भी ऐसा ही सम्मान होगा। कम अवस्था होने से बुद्धि उसकी बहुत परिपक्व नहीं थी। वह नहीं जानता था कि महान् कृतियों की रचना के लिए कितनी शिक्षा, कितनी साधना, कितनी प्रतिभा की आवश्यकता है। उसमें न विशेष प्रतिभा ही थी, न साधना ही वह कर सकता था और शिक्षा भी उसकी क्या थी! बहुत-से ग्रंथों का तो वह आशय ही नहीं समझता था। कुछ कविताएँ उसने अवश्य लिखी थीं। चार लोग वाह-वाह भी करने लग गये थे; लेकिन क्या इससे उसे प्रसन्न होना चाहिए था। एक साधारण से प्रकाशक ने उसका कविता-संग्रह छापने से मना कर दिया था! उसे लगा कि वह अच्छा लेखक भी नही है और किसी दिन हो भी पायेगा या नहीं, कहा नहीं जा सकता। अभी

तो आशा की कोई किरण दिखाई नहीं देती। ऐसा सोचते ही वह बहुत उद्विग्न हो उठा।

लेकिन सबसे अधिक उसकी सौंदर्य-चेतना उसे विकल करने लगी। अपने गाँव को वह बहुत सुन्दर समझता था—सबसे जुड़ा हुआ और सबसे दूर एक सौंदर्य-स्थल। उसकी सौंदर्य-भावना को जगाने और विकसित करने में उस स्थान का बहुत बड़ा हाथ था। वहाँ रहकर वह कभी नदी के किनारे बैठा रहता, कभी उसकी स्वच्छ बालू में लेटकर नीलाकाश को देखता, कभी ऊबड़-खाबड़ जंगल की ओर निकल जाता, कभी आम और अमरूद के बाग़ों में घूमता, कभी इमली, खिरनी और जामुन के वृक्षों के नीचे ठहरता हुआ नहर के किनारे टहलने निकल जाता। बचपन से ही मल्लाहों से उसने मित्रता कर ली थी और जब नावें एक किनारे से दूसरे किनारे को छूटतीं तो वह उनमें से किसी में भी बैठकर नदी के विस्तार को अपने मन में भरकर खो जाता। बरसात में तो नदी का पाट मीलों चौड़ा हो जाता था और उसका दूसरा किनारा ही दिखाई नहीं देता था। उन दिनों पानी कुछ गँदला रहता; पर नदी की सुन्दरता में उसे कमी दिखलाई न देती। नदी में दूर-दूर से बहकर न जाने कितनी चीज़ें आती थीं। उनमें विशेष प्रकार की एक लकड़ी आती थी जिसे वह पकड़ लेता और चाक़ू से काटकर उसमें से चकई बनाकर गाँव के छोटे लड़कों को बाँट देता। मल्लाहों में एक का नाम भगीरथ था। उसकी एक लड़की थी सत्तो। इंदुकुँवरि के समान सत्तो भी जगदीश की बचपन की साथिन थी। ये दोनों गाँव के दो छोरों पर रहती थीं। एक पर इंदुकुँवरि की हवेली थी, दूसरे पर सत्तो का कच्चा स्वच्छ घर। इंदुकुँवरि मल्लाहों के घाट पर शायद ही कभी आई हो। उसका घाट अलग था। जगदीश ने पहले-पहल तैरना सत्तो के साथ ही सीखा था। मल्लाहों की बेटी के समान सत्तो का शरीर बहुत ही सुगठित था। रंग उसका कालेपन की ओर झुकता हुआ, साँवला था। बचपन में एक दिन इंदुकुँवरि के यहाँ से देर से लौटने पर जगदीश

घर में बहुत पिटा; अतः दूसरे दिन शाम तक भगीरथ के घर में छिपा रहा। उस दिन नाव छोड़ने से पहले भगीरथ ने खुले मैदान में मोटी-मोटी रोटियाँ पकाई थीं। भगीरथ के लाख मना करने पर भी जगदीश ने उन्हीं में से आधी खायी थी। आम के अचार के साथ उस नमकीन रोटी के स्वाद को वह कभी नहीं भुला पाया। भगीरथ के यह कहने पर भी...कि आप ब्राह्मण हैं मैं मल्लाह, जगदीश ने धमकी दी थी कि अगर वह उसकी बात नहीं मानेगा तो उसकी नाव के जाने के बाद वह नदी में डूब मरेगा। सत्तो ने कहा कि उसका बापू अगर उसके साथी को भूखा रखेगा तो उसके साथ वह भी डूब मरेगी। उस समय डूब मरने का अर्थ क्या ये बच्चे समझते थे ?

आज न जाने कैसे जगदीश को सत्तो की याद आ गई। सत्तो बड़ी हुई, उसका विवाह हुआ और वह विधवा भी हो गई। जगदीश को उसके पास जाने का साहस नहीं हुआ। लेकिन सत्तो ज़रूर उसके मन में कहीं सोयी हुई थी; अतः पिछली बार जब वह गाँव गया तो छिपकर उसके घर भी पहुँच गया। नदी के किनारे एक कम ऊँचे टीले पर उसका मकान था। आँगन में तुलसी का एक बिरवा था। विधवा होने के उपरान्त सत्तो संध्या को यहाँ न जाने क्यों दीपक जलाती थी। वह अपने पिता के साथ ही रहने लगी थी और नाव लाने ले जाने में उसकी सहायता करती थी। इस समय नाव की मोटी रस्सी पुराने इमली के तने से बँधी हुई थी।

बरसात के दिन थे। बादल घिर आये थे।

एक छोटी नाव पर बैठे हुए जगदीश को न जाने क्या सूझा कि उसने सत्तो से पूछा, "सत्तो, इस समय क्या नाव तू उस पार ले जा सकती है ?"

"पार कहाँ दिखाई देता है; लेकिन जहाँ तक ताकत है, वहाँ तक ले जा सकती हूँ।"

"तो चल ।"

भगीरथ किनारे पर ही बैठा चिलम पी रहा था। उसके मना करने पर भी सत्तो ने नाव खोल दी। भगीरथ इसे हँसी समझ रहा था; अतः पानी में नाव को उतरते देख वह बहुत घबराया। काले बादल फूटकर फैलने लगे। नाव जब और आगे बढ़ी तो उसने पुकार कर कहा, "कहाँ जा रही है बेटा, लौट आ।"

सत्तो नाव को लेकर बहाव की ओर दूर ले जा रही थी। वर्षा का उसे भी अनुमान था। उसने बल्ली पानी में डाली।

"कितना पानी है सत्तो ?"

"पता नहीं। सायद बहुत है।"

"अगर इस समय नाव डूब जाय तो ?"

"जब तक मेरे हाथ में बल्ली है, तक तक तो नहीं डूब सकती।"

"और अगर मैं कूद जाऊँ तो ?"

"तब भी तुम्हें तो बचा ही लूँगी। कुछ भी हो, यह क्यों भूलते हो कि मैं मल्लाह की बेटी हूँ।"

"अच्छा सत्तो, अगर गाँव के लोग इस समय हम दोनों को देख लें तो क्या कहेंगे ?"

"शहर में रहकर क्या आदमी इतना कमज़ोर हो जाता है ?" सत्तो ने पूछा। थोड़ी देर चुप रहकर उसने फिर कहा, "तुमने जो थोड़ी देर पहले नाव को डुबाने वाली बात कही थी, वही ठीक थी।" लगा वह कुछ उदास हो गई है। उसका उत्साह न जाने क्यों बुझ-सा गया। वह बहुत खिन्न स्वर में बोली, "चलो, किनारे लौट चलें।"

इस गाँव में इन्दुकुँवरि और सत्तो ही नहीं थे और लड़कियाँ भी थीं। लेकिन गाँव की लड़कियों के रूप ने जगदीश को कभी आकर्षित नहीं किया। गाँव में गङ्गा में स्नान करने या देवी की उपासना के लिए दूर-दूर से लोग आते थे। इनके साथ नगर का सौन्दर्य भी खिंच आता

था। जगदीश ने उस सौन्दय को दूर से देखा था और वह उसके मन को कभी-कभी पुलकित भी कर जाता था। गाँव में जन्म लेकर भी न जाने क्यों जगदीश के मन का खिचाव नगर की ही ओर था। और एक दिन ऐसा भी आया कि वह नगर के सौन्दर्य के सम्पर्क में आया। बानू, सीमा, नयन और प्रीति नगर के सौन्दर्य की अनुपम प्रतिनिधि थीं। लेकिन जीवन में सौन्दर्य की सार्थकता क्या है, इस पर वह अब कभी-कभी सोचने लगा। सुन्दर प्राणी के सम्पर्क में रहना क्यों अच्छा लगता है, वह अपने मन से पूछने लगा? क्या सुन्दरता आप अपना उद्देश्य है या उसकी सार्थकता प्यार के लिए है? क्या सुन्दरता और प्यार का अनिवार्य सम्बन्ध है? सौन्दर्य आनन्द क्यों देता है? क्या सौन्दर्य से दूर रहकर कोई व्यक्ति जीवित रह सकता है? सृष्टि में सुन्दरता क्यों है?

उसे लगा जैसे उसकी साहित्य-साधना सफल नहीं है, वैसे ही उसकी प्रेम-भावना भी अभी तक विफल रही है। वह सोचने लगा—क्या उसका अस्तित्व व्यर्थ हो जायगा? क्या सृजन की विराट योजना में वह एक छोटी-सी भूल मात्र है? मन के इस अन्तर्द्वन्द्व को लेकर वह कैसे जीवित रहेगा?

इतने में कमरे के द्वार पर उसे रामदेई दिखाई दी। उसे देखकर जगदीश को प्रसन्नता हुई। पूछा, "कब आई रामदेई?"

"आज सवेरे ही।"

"क्या मुझे बुलाया है?"

"जी, बाबू जी।"

"भरोसे कहाँ है?"

"मैंने तो उसे देखा नहीं बाबू जी! क्या आपको नहीं मिला? वह हमारे पीछे कुछ दिन को न जाने कहाँ चला गया था?"

"तू खुश तो है?"

"जी, बाबू जी, आपकी कृपा है।"

"कहना—मैं एक घन्टे बाद आऊँगा।"

रामदेई चली गई। जगदीश को कोई काम नहीं था; लेकिन वह गया नहीं। नयन के इस दुराव के कारण कि जिस बात का पता रामदेई और भरोसे को रहता है, उसका उसे नही, उसके मन में एक तनाव-सा रहने लगा था। उसने सोचा—नयन की इच्छा की उसी क्षण पूर्ति नहीं होनी चाहिए। एकदम न जाकर उसे थोड़ा सन्तोष हुआ। नयन ने भी फिर दोबारा किसी नौकर को नहीं भेजा। इससे वह फिर क्षुब्ध हो उठा।

लेकिन नयन की रम्य आकृति देखकर उसके मन का क्षोभ न जाने कहाँ विलीन हो गया। उसे अपने पर पछतावा होने लगा—वह कितना छोटा आदमी है, उसने सोचा। थोड़ी देर में उसने चतुर्वेदी के घर जाने से लेकर दुबे के साथ रेवा के भागने की पूरी कहानी नयन को सुनाई।

"हाँ, भरोसे उन्हें एक सुरक्षित स्थान पर पहुँचा आया है। थोड़े दिन गाँव में रहकर फिर वे कहीं चले जायँगे।"

"भरोसे?" जगदीश ने आश्चर्य से पूछा।

"हाँ, उसे सन्देह हो गया था। दुबे ने उससे सहायता चाही और वह उन दोनों को एक जगह पहुँचा आया। आपको आश्चर्य क्यों होता है?"

"भरोसे देखने में तो बहुत सीधा लगता है।"

"लेकिन क्या आप कल्पना कर सकते हैं कि यही भरोसे किसी समय मध्य प्रदेश के एक प्रसिद्ध डाकू के दल में रह चुका है!"

"तो यह इसका वास्तविक नाम नहीं है?"

"नहीं।"

"आपके यहाँ कैसे आया? मुझे तो इससे डर लगने लगा है।"

"डरने की कोई बात नहीं। पुराना भरोसे मर चुका है। अब यह दूसरा ही भरोसे है। फिर भी साहस का काम तो कर ही सकता है। जब यह आया तब मैं तब बहुत छोटी थी। पिता जी बहुत सम्पन्न व्यक्ति थे और

सम्पन्न व्यक्तियों के बहुत-से दोष उनमें थे। वे शराब पीते थे; लेकिन घर पर ही। एक दिन एक लम्बा-चौड़ा व्यक्ति उनके कमरे में घुस आया। उसने कहा, "पुलिस मेरा पीछा कर रही है। मुझे बचाइए। कल सुबह मैं यहाँ से चला जाऊँगा।"

पिता जी ने पूछा, "तुम इस समय कहाँ से आ रहे हो?"

उसने कहा, "यहाँ की एक वेश्या के यहाँ साल में दो एक-बार मैं आया करता हूँ। इस बार न जाने कैसे मेरा पता चल गया। उसके घर को पुलिस ने घेर रखा है। मैं बहुत ही कठिनाई से निकलकर भाग आया हूँ। एक रात के लिए मुझे जगह दे दीजिए।"

पिता जी ने फिर और कुछ नहीं पूछा। उसे शराब पिलायी, खाना खिलाया और न जाने कहाँ उसके छिपने का प्रबन्ध कर दिया। रात के चार बजे के क़रीब वे उठे और अपनी कार निकालकर इसे उसमें बिठाया और बाहर ले जाने लगे। भरोसे पीछे बैठा था। कार वे तेज़ी से ड्राइव कर रहे थे कि सहसा उन्होंने उसे धीमा किया। कुछ सोचा और फिर उसे तेज़ कर दिया।

भरोसे ने कहा, "कार रोकिए।"

पिता जी ने पूछा, "क्यों?"

"यह तो कोतवाली का रास्ता नहीं है?"

"मेरे मन में थोड़ी देर को कमज़ोरी आ गई थी। लेकिन शराबी कितना ही बुरा आदमी हो, चरित्रहीन नहीं होता।" इतना कहकर कार उन्होंने तेज़ कर दी शाम को वे फिर उसे अपने साथ ले आये। भरोसे पर इस घटना का इतना प्रभाव पड़ा कि डकैती डालना उसने छोड़ दिया और फिर उस वेश्या के यहाँ भी वह कभी नहीं गया। बुरा आदमी जब अच्छाई की ओर मुड़ता है, तो वह फिर बहुत अच्छा होजाता है। लेकिन आप उसे इस प्रकार का कोई संकेत नहीं दीजिएगा।

"बुरे आदमियों की भी अपनी नैतिकता की धारणाएँ होती हैं, यह मैं अपने अनुभव से जानता हूँ।"

"आपके साथ क्या हुआ ?"

"एक बार मैं बाहर से लौट रहा था। वही पुराना छोटा ट्रंक, जिसे आपने ट्रेन से बाहर फेंक दिया था, मेरे हाथ में था। स्टेशन गाँव से कई मील दूर है। सवारियाँ कम उतरती हैं और कच्चा रास्ता है, इसी से इक्के-ताँगे नहीं मिलते। रास्ता बीहड़ है। ट्रेन संध्या के समय पहुँचती थी; लेकिन मेरे पास कुछ अधिक रहता नहीं था; इसी से डर भी नहीं लगता था। रास्ते में भी कभी कोई नहीं मिला था।

उस बार मैं एक झाड़ी के पास पहुँचा ही था कि पीछे से आवाज आई, "कौन है ?"

मैं एकदम डर गया। दूसरी आवाज़ आई, "रुको !"

मैं रुक गया। दो आदमी हाथों में लट्ठ लिए और साफ़ा बाँधे मेरे सामने आकर खड़े हो गए।

"कहाँ रहते हो ?" एक ने कड़कती आवाज में पूछा।

मैंने गाँव का नाम बताया।

उसने दूसरे की ओर देखा। दूसरे ने पूछा, "किसके लड़के हो ?"

मैंने पिता का नाम बताया।

"गाँव में और किसी का नाम जानते हो ?"

मैंने वहाँ के कई व्यक्तियों के नाम बताए। गाँव में एक वयोवृद्ध पुजारी जी बहुत प्रसिद्ध थे, उनका नाम भी बताया।

"छोड़ दो, गाँव का लड़का है।" दूसरे ने कहा और मुझे थोड़ी दूर पहुँचाकर वे न जाने कहाँ छिप गए। बदमाश होने पर भी 'हमारे गाँव का लड़का है,' इस भावना ने बुराई करने से उन्हें रोक लिया। ऐसे ही जिन पुजारी जी की मैंने चर्चा की, सुनते हैं उन्होंने थोड़ी बुद्धिमानी से एक बहुत बड़ी दुर्घटना को सहसा रोक दिया था।"

"कैसी दुर्घटना ?"

"हमारे गाँव में एक ठाकुर थे—बड़े ही दबंग किस्म के। जिसको मन में आया डाट दिया। उसी गाँव में एक पनवाड़ी था। उसके सम्बन्ध में प्रसिद्ध था कि वह किसी समय डकैतों के दल में रह चुका है। न जानें वह कैसे एक औरत के चक्कर में आ गया। उससे शादी कर ली और उसे घर ले आया। गाँव में जब वह ढंग से रहने लगा तो सब उससे बराबर का व्यवहार करने लगे। एक बार ठाकुर साहब उससे भी अकड़ गए। पहले तो वह चुप रहा। फिर बोला, "अच्छा, कभी देखा जायगा।" बात गयी-बीती हो गई।

कई वर्ष बाद ठाकुर साहब के इकलौते लड़के का विवाह दूर एक गाँव में पक्का हुआ। जब विवाह का सब प्रबंध हो गया और ठाकुर साहब बाज़ार से निकले तो चेतराम ने कहा—ठाकुर, बारात ज़रा होशियारी से ले जाना। ठाकुर साहब फिर भी अकड़कर चले गए; लेकिन उन्हें रात-भर नींद नहीं आई। जब उन्हें कुछ नहीं सूझा तो वे पुजारी जी के पास गए और उनसे अपनी चिंता की बात कही। पुजारी जी ने उनके कान में कुछ कहा और वे चुपचाप लौट गए।

दूसरे दिन पुजारी जी ने चेतराम को बुलाया। उन्हें प्रणाम करके चेतराम एक कोने में बैठ गया।

"ठाकुर की बारात में चलने के लिए मैं तुम्हें निमंत्रण देता हूँ, चेतराम।"

"नहीं पुजारी जी, मैं नहीं जाने का। ठाकुर तो ऐसा नहीं चाहते।" चेतराम बोला।

"ठाकुर चाहने वाले कौन होते हैं ? उनका सारा काम दूसरे लोग कर रहे हैं। मैं तुम्हें न्यौता देता हूँ। ठाकुर को इसमें बोलने का कोई अधिकार नहीं। यह, ठाकुर की नहीं, गाँव की बारात है।"

"लेकिन मैं वहाँ जाकर करूँगा क्या पुजारी जी? मैं एक मामूली दूकानदार......"

"तुम्हारी जरूरत है तभी तो बुलाया है। तुम सोचते होगे रायता-कचौड़ी खिलाने के लिए तुम्हें वहाँ लिए जा रहे हैं?" पुजारी जी हँसकर बोले।

"तब हुकुम करें पुजारी जी।"

पुजारी जी उसे मंदिर के एक कोने में ले गए। भीतर से लाकर पीले कपड़े में बँधी एक पोटली उन्होंने उसके हाथ में रख दी।

बोझ को सँभालते हुए वह बोला, "यह क्या है पुजारी जी?"

"इसमें बहू के गहने और विवाह में उठाने के लिए सारा ख़र्च है। लड़की और लड़के वाले दोनों बिगड़ैल क़िस्म के लोग हैं। गाँव की इज़्ज़त बनी रहे, इतना ही मैं चाहता हूँ।"

चेतराम ने पोटली सँभालकर गर्दन ऊँची की और वह लौट आया।

विवाह समाप्त होने पर उसने ठाकुर से एक दिन कहा, "यह तो ब्राह्मण की मात थी ठाकुर! तुम्हारी जीत मैं इसे नहीं मानता।"

"शायद वह देवता के मंदिर में होने से डर गया। अब यह भरोसे ही है। बहुत ही साहसी व्यक्ति है; लेकिन भूत-प्रेतों में विश्वास रखता है। इस पर मुझे बहुत हँसी आती है।"

"आप भूत-प्रेतों को नहीं मानतीं क्या?"

"आप मानते हैं?"

"संसार में बहुत-सी आश्चर्यजनक घटनाएँ तो होती हैं, यह दूसरी बात है कि उन पर हम ध्यान न देते हों—जैसे साँपों को ही लीजिये। उनसे भयंकर और कौन हो सकता है; लेकिन कभी-कभी वे ऐसा व्यवहार करते हैं कि चकित रह जाना पड़ता है। हमारे अपने घर की एक कहानी

है—मेरे आँखों को सामने की। मैं तब बहुत छोटा था। ऊपर जहाँ हम सोया करते थे उस कमरे की कड़ियों में कभी-कभी एक साँप लटका रहता था। मैंने अपनी मा से कहा तो वह बोली: डरने की कोई बात नहीं। घर के देवता हैं। तुमसे कुछ नहीं कहेंगे। पूरे घर में उस साँप की छूट थी। नीचे भी भीतर के अँधेरे कमरे में वह कभी-कभी रहता। वहाँ जेवर या रुपये-पैसे हाँड़ियों में रखे रहते। मा कभी जाती तो आवाज़ दे देती—कहीं हो तो हट जाना और वह फुफकार कर हट जाता। एक बार मा ज़ीने से उतर रही थी। मैं उसके साथ था। साँप ज़ीने की नीची सीढ़ी पर पूरा फैला बैठा था। मैं एकदम मा से चिपट गया। मा ने वहीं से कहा, "तुम्हें यह नहीं सूझता कि छोटा बच्चा है। देखते ही डर जाता है। अब तुम इसकी आँखों के सामने न आना।" साँप ने फन उठाकर हिलाया और न जाने कहाँ चला गया। उसके उपरान्त फिर मैंने उसे कभी नहीं देखा।

"आश्चर्य की बात है।"

"ऐसे ही हमारे गाँव में एक औरत थी। उसके एक छोटा लड़का था। वह खेत में उसे बिठाकर काम करती रहती थी। बड़ी मनौती के बाद बढ़ी हुई अवस्था में उसके वह बच्चा उत्पन्न हुआ था; अतः वह उसे बहुत प्यार करती थी। एक दिन जब वह लौटी तो उसने देखा उसका बच्चा बैठा है और एक बड़े काले नाग ने उसके कोमल शरीर को चारों ओर से जकड़कर अपने फन को उसके सर पर रख दिया है। वह औरत एकदम घबरा गई। खेत में काम करने वाले और लोग भी घिर आए; लेकिन ज़रा-सा भी शोर मचाने से परिणाम भयंकर हो सकता था, इसलिए उसने किसी को भी कुछ नहीं करने दिया। साहस करके वह आगे बढ़ी और घुटनों के बल बैठकर उसने हाथ जोड़कर बिनती की, "हे नागदेवता, यह मेरा अकेला ही बच्चा है। अगर इसे कुछ हो गया तो मैं भी तुम्हारे सामने प्राण दे दूँगी। मैं कुछ नहीं जानती। तुम्हारी शरण हूँ। मेरे बच्चे

पर दया करो।" और वह नाग धीरे-धीरे अपनी कुंडली खोलकर उतर गया और वहीं खेतों में होता हुआ न जाने कहाँ विलीन हो गया।"

"अच्छा हुआ, मैं तो एकदम डर गयी थी।"

"ऐसे ही पुनर्जन्म की कहानियाँ बहुत आश्चर्य-चकित करने वाली हैं। एक कहानी तो हमारी दादी की ही है।"

"हम भी सुनें। कैसी कहानी है।"

"यह कहानी मेरी मा ने मुझे सुनायी थी। हमारे बाबा की मृत्यु हो गयी। दादी हमारी उन्हें बहुत प्यार करती थीं। उनकी मृत्यु का समाचार सुनकर वे बेहोश हो गयीं और बहुत उपाय करने पर भी तीन दिन तक उसी अवस्था में पड़ी रहीं। गाँव की औरतें उन्हें देखने आने लगीं; लेकिन मेरी मा ने उन्हें किसी को छूने नहीं दिया। तीसरे दिन उनकी चेतना लौटी।

"मैं कहाँ हूँ ?" उन्होंने उठते ही कहा।

"अपने घर में माता जी। मैं तुम्हारी बहू सामने बैठी हूँ।" मेरी मा बोली।

मेरी दादी अपनी हथेलियाँ, बाल और कपड़े सूँघने लगी। मा ने समझा ये पागल हो गई हैं।

दादी बोली, "नहीं, मैं तो उनके साथ थी। तीन दिन से उनके पीछे-पीछे चल रही थी। कितने बियाबान जंगल, नदी, नाले हमने लाँघे। फिर एक बहुत ऊँचा पहाड़ दिखाई दिया। वहाँ बहुत से फूल थे—रंग-बिरंगे तालाब और झरने थे जिनके पानी में सुगन्ध थी। मैं वहाँ नहाई। देखो, अभी तक मेरी हथेलियों, बालों और कपड़ों में गंध बसी हुई है।" वे फिर अपनी हथेली और बाल सूँघने लगीं।

"फिर क्या हुआ माता जी ?" मा ने पूछा।

"नहाकर हम पहाड़ की चोटी पर चढ़ने लगे। एक स्थान पर दो चोटियों के बीच खाली जगह थी। नीचे आर-पार कुछ दिखाई नहीं देता

था। इतने में जैसे बरसात में आसमान में यह धनुष उग आता है, वैसा एक पुल बन गया। उसी समय सफ़ेद कपड़े पहने एक आदमी ने मुझसे कहा। "ए बुढ़िया अब तू आगे नहीं जा सकती।"

"मैंने कहा : नहीं मैं तो साथ नहीं छोड़ने की। जहाँ ये जायँगे, वहीं मैं जाऊँगी। उस कमबख़्त ने मेरी बात नहीं मानी और मुझे धक्का दे दिया और अब मैं यहाँ हूँ।"

"पुनर्जन्म से संबंधित कहानियाँ तो पत्र-पत्रिकाओं में भी प्रकाशित होती रहती हैं। परलोक भी तब होगा ही।"

"लेकिन जनता बड़ी अंधविश्वासी होती है। बहुत-सी कहानियाँ वह गढ़ भी लेती हैं। उसमें समय-समय पर परिवर्तन होते रहते हैं और उसका जो मूल रूप है उसका पता ही नहीं चलता। हमारे गाँव में देवी का जो पुराना मन्दिर है उससे संबंधित कहानी भी ऐसी ही है..."

"आप पूजा करने जाते हैं ?"

"बचपन में अपनी मा के साथ एकाध बार गया था। अब तो नहीं जाता।"

"क्यों, अब क्या हो गया ?"

"इस कहानी को सुनकर मेरा विश्वास उठ गया।"

"तब तो हम ज़रूर सुनेंगे उस कहानी को।"

"मन्दिर बहुत पुराना है, इसमें संदेह नहीं। मूर्ति भी बहुत प्राचीन काल की है। यह मन्दिर एक टीले पर बसा हुआ है। कुछ दिन हुए बरसात के दिनों में एक स्थान पर दरार होने से पत्थर की एक मूर्ति दिखाई दी। लोगों का अनुमान है कि यह महाराज कर्ण की मूर्ति है। संभवतः इन्हीं के नाम पर गाँव का नाम कर्णवास पड़ा है।

सुनते हैं ये कर्ण महाप्रतापी दानी राजा थे और नित्य सबेरे उठकर

प्रजा को सवा मन सोना दान करते थे। इस दान की चर्चा चारों दिशाओं में फैल गयी।

एक दिन एक साधारण-सा लगने वाला एक व्यक्ति इनके पास आया और बोला, "मुझे नौकर रख लीजिए।"

महाराज ने पूछा, "क्या लोगे ?"

"रोज़ एक हज़ार सोने के सिक्के।"

"काम क्या करोगे ?"

"जो कोई न कर सके।"

महाराज ने उसकी ओर देखा और उसे अपनी सेवा में रख लिया।

लेकिन वह आदमी यह जानने के लिए आया था कि महाराज के पास सवा मन सोना रोज़ आता कहाँ से है; अतः उससे छिपकर उनका पीछा किया। उसने देखा महाराज रात के बारह बजे उठकर स्नान करते हैं और फिर देवी के मन्दिर की ओर चले जाते हैं। एक रात पहरेदार को धोखा देकर वह भीतर घुस गया। वहाँ उसने देखा मन्दिर के पीछे की ओर एक बहुत बड़ा कमरा है। वहाँ एक गर्म तेल का बहुत बड़ा कढ़ाव है। महाराज उसमें एकदम कूद पड़े। थोड़ी देर में देवी ने उन्हें निकाला और अमृत छिड़ककर जीवित किया। महाराज ने उनके चरणों में सिर रखा। देवी ने एक चुटकी भभूत दी। वह उन्होंने अपने पलंग के पीछे डाल दी और सो गए। सुबह उठे तो वहाँ सवा मन सोना हो गया था।

यह देखकर उस व्यक्ति को बहुत कष्ट हुआ। उसने सोचा : इस सोने के लिए महाराज कितना कष्ट उठाते हैं ! अतः एक रात महाराज के उठने से पहले ही स्नान करके वह वहाँ पहुँच गया और उसने अपने शरीर को खौलते तेल के कढ़ाव में डाल दिया। देवी ने अमृत से उसे जीवित कर दिया। वह उठकर फिर कढ़ाव में कूद पड़ा। देवी ने फिर उसे प्राण का दान दिया। उसने फिर तीसरी बार ऐसा ही किया। देवी ने उसे जीवित करते हुए पूछा, "बता, तू क्या चाहता है ?"

"वचन दीजिए कि आज की रात जो मैं माँगूँगा, वह आप देंगी ।"

देवी बोली, "मैं तुझ पर बहुत प्रसन्न हूँ । जो तू माँगेगा, मैं तुझे वही वरदान दूँगी ।"

"मैं महाराज का सेवक हूँ । उनका कष्ट रोज़-रोज़ मुझसे देखा नहीं जाता; अतः भभूत का जो घड़ा आपके पास है, उसे मैं चाहता हूँ ।"

देवी ने कहा, "तूने मुझे धोखा दिया है । लेकिन मैं वचन हार चुकी हूँ, इसलिए वह घड़ा मैं तुझे देती हूँ ।" इतना कहकर वे अन्तर्धान हो गईं ।

वह व्यक्ति घड़ा लेकर अपने स्थान पर लौट आया । महाराज नित्य की भाँति वहाँ आये; लेकिन वहाँ तेल का कढ़ाव न था । उदास होकर वे लौट गए ।

प्रभातकाल में जब याचकों ने शोर मचाया तो नित्य की भाँति वे उठे ही नहीं । मन्त्रियों से भी जब वे नहीं मिले, तो सबने मिलकर उस व्यक्ति को महाराज को जगाने भेजा । वह व्यक्ति भभूत का घड़ा सौंपकर और महाराज को प्रणाम करके जहाँ से आया था, वहीं लौट गया ।"

नयन बहुत जोर से हँसने लगी ।

"इस बात पर विश्वास नहीं किया जा सकता न ?"

"क्या पता सच हो ?" नयन ने कहा ।

"तब आप हँसीं क्यों ?"

"क्षमा चाहती हूँ, मुझे हँसना नहीं चाहिए था । लेकिन मैं इस बात ··नहीं हँसी । इतनी ज़ोर से हँसना भी नहीं चाहती थी ।"

"फिर किस बात पर हँसी फूट उठी ।"

"मैं सोच रही थी कि पहले-पहल जब आप आये थे, तो कितना सकुचाते थे और आज इस ढंग से बात कर रहे हैं कि रुकना ही नहीं जानते···।"

"मेरा अधिक बोलना आपको बुरा लगा ?"

"नहीं-नहीं, अच्छा लग रहा है; लेकिन उस दिन जब आप आँख नहीं उठा पाये थे, तब मुझे और भी अच्छा लगा था।"

"वह दिन तो अब लौटाया नहीं जा सकता।"

"कोई दिन भी नहीं लौटाया जा सकता। प्राणी को जो मिलता है, उसके मूल्य को वह ठीक से कभी आँक ही नहीं पाता। उससे दूर होने पर ही वह जान पाता है कि उसने क्या खो दिया है······" इतना कहकर नयन चुप हो गई।

"क्या सोच रही हैं ?" जगदीश ने पूछा।

"कुछ नहीं···कुछ भी नहीं।" बहुत धीरे-से नयन ने कहा।

"क्यों, क्या बात है बताइए न ?"

"हम क्या आज डाकुओं, भूतों और साँपों की ही बातें करते रहेंगे ?"

"आपको डर लगता है ?"

"नहीं, डर मुझे किसी से भी नहीं लगता।"

"फिर ?"

"आप कैसे आदमी हैं ?" यही सोच रही हूँ।

"आप समझती हैं बहुत बुरा आदमी हूँ ?"

"नहीं।"

"तब क्या बात है ?"

"जानना चाहती थी कि अगर मैं आपको कभी कुछ देना चाहूँ तो क्या आप उसे स्वीकार करेंगे ?"

जगदीश ने सहसा कोई उत्तर नहीं दिया। फिर भी उत्तर तो देना ही था। वह बोला, "आपने इतना तो दिया है।"

"यह तो मेरी बात का उत्तर नहीं हुआ।"

"अच्छा, जिस दिन यहाँ से जाऊँगा, उस दिन इस बात का उत्तर दूँगा।"

"नहीं, मैं आज ही इस बात का उत्तर चाहती हूँ—अभी।"

"मैंने आपकी किसी इच्छा में कभी बाधा दी है ? आपने जहाँ रखा है, वहाँ रहा हूँ; जब बुलाया है तब आया हूँ; जो दिया है, वह बिना इस बात को सोचे कि कैसा क्या है, सिर झुकाकर कृतज्ञतापूर्वक सिर आँखों पर स्वीकार किया है।"

"फिर भी मुझे लगता है कि भीतर से आपने कभी भी कुछ स्वीकार नहीं किया।" इतना कहकर नयन जगदीश की ओर देखने लगी।

"देख क्या रही हैं ? पलकें गिराइए न !" जगदीश ने कहा।

"मैं झूठ बोल रही हूँ ?" नयन ने पूछा।

"आख़िर, कठिनाई क्या है ?"

"जीवन में देना ही सब कुछ नहीं है, उसका स्वीकार किया जाना भी उतना ही महत्वपूर्ण है। जो हम देना चाहते हैं, जब उसे भीतर से कोई स्वीकार नहीं करता, तो वह देना एक प्रकार से व्यर्थ हो जाता है।"

"लेकिन आपको तो जीवन में कोई अभाव नहीं।"

"आपको कैसे मालूम है ?"

"अनुमान से जानता हूँ।"

"अनुमान ग़लत नहीं हो सकता ?"

"नहीं।"

"क्यों ?"

"मुझसे प्रशंसा करनी नहीं आती; लेकिन आप इतनी असाधारण सुन्दर हैं, इतनी गुणी कि कोई भी व्यक्ति आपके इन कोमल चरणों पर अपने प्राण न्यौछावर कर सकता है—और करते ही होंगे।"

"जिन लोगों को मैं जानती हूँ, उनमें से किसी को आप जानते हैं ?"

"नहीं, मैंने किसी को कभी देखा नहीं। किसी के विषय में कभी कुछ

सुना भी नहीं। जो सामने आ जाता है, उसे जान लेता हूँ। इससे अधिक मेरी स्पृहा भी नहीं। लेकिन उन लोगों में निश्चित रूप से कुछ होगा ही; नहीं तो आप इतनी दौड़कर उनसे इतने दूर मिलने न जातीं।"

"आप समझते हैं, एक से अधिक ऐसे व्यक्ति हैं?"

"हैं तो।"

"और मैं उनमें से सबको प्यार करती हूँ?"

"प्यार तो किसी को भी नहीं करतीं।"

"आपको कैसे मालूम है?"

"प्यार की मनोदशा में मैंने आपको कभी देखा ही नहीं।"

"आप क्या चौबीस घंटे मेरे साथ रहते हैं?"

"फिर भी तीन साल मुझे आपके साथ रहते हो गए। कुछ तो मैं आपको जानता ही हूँ।"

"सचमुच मुझे जानते हैं?"

"मुझे नहीं मालूम।"

"यह तो गुस्से की बात हुई?"

"समझ लीजिए—है।"

"अच्छा, मान लीजिए यह बात आपकी सच है कि मैं कभी किसी को जी भर कर प्यार नहीं कर पायी; लेकिन इसका कारण क्या है?"

"जीवन में कभी कुछ ऐसा हुआ है जिससे सत्य के बहुत निकट आप आ गई हैं।...या और कुछ हो तो मुझे नहीं मालूम...।"

"अच्छा बताइए, आप क्या मुझे सचमुच जानते हैं?"

"लगता तो है कि जानता हूँ।"

"क्या जानते हैं?"

"यही कि स्वभाव से बहुत अच्छी हैं। चलते आदमियों को पकड़ लाती हैं। उन्हें जगह देती हैं। खिलाती-पिलाती हैं। उनके ऊपर ख़र्च

करती हैं। उनके दुःख-दर्द की बात सुनती हैं। जिनसे बात करना नहीं आता, उन्हें बातचीत करने की कला सिखलाती हैं। बातचीत करते समय कभी ऊब का अनुभव नहीं करतीं। अपने सम्पर्क से मनुष्य के हृदय को संवेदनशील बनाती हैं। उसके मन में कोमलता और सौंदर्य की चेतना जाग्रत करती हैं। न अपने सुख की चर्चा कभी करती हैं और न अपने दुःख की। उपकार करके कभी उसे जताती नहीं; बल्कि ऐसा व्यवहार करती हैं जैसे दूसरा कोई आपके ऊपर उपकार कर रहा है। मनुष्य के मन को समझकर जिस समय जिस चीज़ की उसे आवश्यकता है, वह देती हैं......"

"बस कीजिए..." नयन ने कहा।

जगदीश चुप हो गया। बोला, "बहुत देर हो गई। अब मैं जाऊँ ?"

नयन ने कुछ कहा नहीं—उसे जाते हुए केवल देखती रही।

४७

जगदीश बहुत देर से अपनी खिड़की के सहारे बैठा था। सामने शरद की चाँदनी खिल रही थी। वह सहसा उठा। धूपदान में एक बत्ती लगाकर उसने उसे जला दिया। काग़ज़ और पैन उठाकर वह कुछ लिखने लगा। थोड़ी देर में काग़ज़ उसने एक ओर सरका दिया। उसे लगा जैसे वह बहुत थक गया है...।

सामने दृष्टि पड़ी तो देखा एक वृक्ष के नीचे नयन टहल रही है। पता नहीं वह वहाँ कब से थी। दोनों ने एक-दूसरे को देखा; लेकिन दोनों ने ही एक-दूसरे के मूड में विघ्न डालना उचित नहीं समझा। नयन धीरे-

धीरे टहलती रही, जगदीश बैठा रहा। दोनों को ही लगा कि उनमें से यदि कोई किसी को पुकारेगा, तो रात का जादू नष्ट हो जायगा।

जगदीश का काम समाप्त हो गया था और अब वह स्वस्थ था, प्रसन्न था। वह उठकर नयन के पास पहुँचा। नयन उसे आता देखकर स्वयं थोड़ा उसकी ओर खिंचकर आ गई। इस समय जहाँ दोनों खड़े थे, वहाँ से लेकर कोठी के भीतरी फाटक तक एक चौड़ा, पक्का, स्वच्छ मार्ग था जिसके दोनों ओर ऊँचे यूकिलिप्टस के वृक्ष खड़े थे। चाँदनी राशि-राशि बिखरी पड़ी थी।

नयन ने जगदीश का हाथ अपने हाथ में ले लिया। थोड़ा झुककर अपना मस्तक उस पर रखा और फिर उसे छोड़कर वह स्वच्छंदता से टहलने लगी। जगदीश को बहुत अच्छा लगा।

"कविता लिख रहे थे?"

"हाँ।"

"पूरी हो गई?"

"हो तो गई। एक बार में जो लिख जाता है, मैं उसे वैसे ही रहने देता हूँ। उसमें काट-छाँट नहीं करता। प्रसन्नता तो मुझे हर बार कुछ-न-कुछ लिखकर होती है; लेकिन आज मैं बहुत प्रसन्न हूँ। बहुत दिनों से जो मैं कहना चाहता था, वह मैंने इसमें कहा है। इसका शीर्षक भी मैंने बहुत सुन्दर दिया है—साथी की खोज। शीर्षक आपको कैसा लगा?"

"सचमुच अच्छा है। लेकिन कविता में कहा क्या गया है?"

"उसे तो बोलचाल की भाषा में नहीं समझाया जा सकता। सुनना चाहेंगी तो किसी समय कविता ही सुना दूँगा।"

"ज़रूर सुनना चाहूँगी; लेकिन इस समय नहीं।"

"इस समय तो मेरा भी उधर जाने को मन नहीं है।"

"अब आप प्रसन्न तो हैं?"

"सब आपकी कृपा है..."

"मैंने कितनी बार समझाया है कि ऐसी बात नहीं किया करते।"

"मैं सचमुच प्रसन्न हूँ और वह बात मैंने केवल आपके प्रति अपना आभार प्रकट करने के लिए कही थी। मेरा अध्ययन ठीक चल रहा है, चार प्राणियों को मैं जान गया हूँ, दस आदमी मुझे जान गए हैं। फिर भी ऐसा लगता है कि व्यक्ति पूर्ण रूप से कभी सुखी नहीं रह सकता।"

"अधिक से अधिक सुखी तो रह ही सकता है—यदि वह अपने को केन्द्र बनाकर चले और उसके जीवन के मूल्य ठीक हों तो..."

"आपके अपने जीवन के मूल्य क्या हैं?"

"पहला तो यह कि आदमी को बहुत सम्पन्न होना चाहिए। आर्थिक कष्ट उसे कभी भी नहीं होना चाहिए। और सब बातें इसके बाद आती हैं। जीवन की अस्सी फ़ीसदी प्रसन्नता इसी तथ्य पर निर्भर करती है। धन में क्रय करने की शक्ति है, इसलिए मैं इसे इतना महत्व देती हूँ। हम जो देते हैं उसके बदले में हमें जो मिलता है, वह काफ़ी होना चाहिए, अधिक से अधिक होना चाहिए। गाँव में जिसे औषधियों का ज्ञान है, उसका अपना महत्व भी है, पर वही व्यक्ति यदि डाक्टर हो तो वह रोगों को तो दूर करता ही है, साथ ही अपनी सेवा के बदले में जो पाता है, उससे उसकी प्रसन्नता भी बढ़ती है। किसी मुक़दमे में जो मित्र परामर्श देता है, उसका भी अपना मूल्य है, लेकिन बैरिस्टर के परामर्श का और ही महत्व है। वह अपने मुवक्किल के हित की रक्षा तो करता ही है, अपने सुख के साधनों का भी विस्तार करता है। कोई एक कहानी लिखता है, उसके बदले किसी पत्र-पत्रिका से मिल जाते होंगे पंद्रह-बीस रुपये। लेकिन यदि वही कहानी कुछ घटा-बढ़ाकर फ़िल्म में ले ली जाय तो उसी का मूल्य हज़ारों रुपये हो जाता है। जब जीवन में काम करना है और अपने को बेचना ही है तो आपके परिश्रम और प्रतिभा का अधिक से अधिक मूल्य आपको मिलना चाहिए। कवि होना बहुत बड़े

सौभाग्य की बात है। उससे यश मिलता है तो नशा-सा छा जाता है। लेकिन यदि आपने यह निश्चय कर लिया है कि आप कवि का जीवन व्यतीत करेंगे तो आपने अपने सुख के साधनों को बहुत सीमित कर लिया है। रात-दिन आपको आर्थिक कष्ट बना रहेगा, अपनी बहुत कम इच्छाएँ आप पूरी कर पायेंगे और फिर जीवन के प्रति भी आपका दृष्टिकोण कुछ 'मौरबिड'-सा हो जायगा। मेरे कहने का तात्पर्य यह बिल्कुल नहीं है कि आप कविता लिखना बंद कर दें; लेकिन उसे जीविका का साधन न बनायें।"

"तब साहित्य, कला और संस्कृति के लिए सब लोग उद्योग करना बन्द कर दें ? भौतिक सुख के सामने ये सब फीके हैं न ?"

"साहित्य और संस्कृति का निर्माण बाल्मीकि, कालिदास, सूर, तुलसी और मीरा की रचनाओं से होगा—लिखना जिनके जीवन की अनिवार्यता थी, जो विराट कल्पना और बड़ी प्रेरणाओं के धनी थे, जिन्होंने जीवन में बड़े आघात पाये थे। छोटी-छोटी प्रेरणाओं से प्रेरित होकर लिखने वाले आप लोगों की रचनाओं से—क्षमा चाहती हूँ, आपसे, मेरा तात्पर्य आपसे नहीं है—संस्कृति का निर्माण नहीं होगा। कहीं गली-कूचे में एक सुन्दर मुख को झाँकते देख लिया तो एक कविता लिख दी, उसने निराश कर दिया तो उदासी का दूसरा गीत लिख दिया, उसका किसी से विवाह हो गया तो जीवन को मरघट बता दिया—छोटे-छोटे पलों को आनन्द और वेदना कहकर चिल्लाने से संस्कृति क्या, काव्य का सृजन भी नहीं होता। प्रतिभा का आवरण ओढ़ने से भी, बिना कोई बड़ा काम किए, कोई भी बड़ा आदमी नहीं बन जाता। आपने जो बात कही वह तो एक कल्याण-मयी कामना है, सैद्धान्तिक बात है। उससे किसका विरोध हो सकता है ? क्या आप नहीं चाहते या मैं नहीं चाहती कि कला और साहित्य और संस्कृति की उन्नति हो; लेकिन उसका व्यावहारिक रूप क्या है ? आपने क्या देखा है और क्या आपका अनुभव है कि आप कविता लिखने बैठ

गए ? इससे तो जीवन का जो सुख आपको मिल सकता था, उससे भी आप वंचित होने जा रहे हैं। आपका लिखना वैसा ही है जैसे समय से पहले फ़सल को काटना, आधे पके घड़े को अवाँ से निकालना। चार आदमी प्रशंसा करते हैं, इससे भी रचना श्रेष्ठ नहीं हो जाती। मुझे नहीं लगता कि कविता आपके जीवन की अनिवार्यता है और आप वह व्यक्ति हैं जो साहित्य या संस्कृति के उन्नयन में योग देंगे ?"

जगदीश को यह स्पष्टता बहुत बुरी लगी। उसे यह भी संदेह हुआ कि नयन उससे किसी बात पर अप्रसन्न है। उसकी इच्छा हुई कि कोई प्रतिप्रश्न करके ही वह उसे अप्रतिभ कर दे; लेकिन रात इतनी सुन्दर थी और साथ घूमने वाला प्राणी इतना कमनीय कि वह उस रम्यता को नष्ट नहीं करना चाहता था। इस समय उसे सचमुच ऐसा लग रहा था जैसे वह किसी स्वप्नलोक में विचरण कर रहा है। उसने धीरे से कहा, "आप ठीक ही कहती हैं। मैं भी कभी-कभी सोचता हूँ कि कहीं रास्ता भूल गया हूँ।"

"मेरा आशय आपका मन दुखाना नहीं था..." नयन ने धीरे से कहा।

"पैसे का महत्व तो मैं स्वीकार करता हूँ। मैं यह भी मानता हूँ कि व्यक्ति को भौतिक दृष्टि से सम्पन्न होना चाहिए। लेकिन जिस सम्पन्नता की बात आप करती हैं उसमें धनी बनने के लिए उचित-अनुचित साधनों का ध्यान नहीं रखा गया है। जीवन में चाहे मैं सुखी रहूँ या दु:खी; लेकिन अनुचित साधनों का उपयोग कभी भी नहीं कर सकता। बाह्य सुख की अपेक्षा मैं आंतरिक शांति को अधिक महत्वपूर्ण समझता हूँ। अनुचित साधनों को अपनाकर कोई भी व्यक्ति आंतरिक शांति की उपलब्धि नहीं कर सकता। बिना अपनी आत्मा को कुचले कोई भी व्यक्ति भौतिक सम्पन्नता के मार्ग पर नहीं बढ़ सकता। अपनी अन्तरात्मा की आवाज़ का गला मैं तो कम से कम नहीं घोटना चाहता......? मुझे पूरा विश्वास है

कि जो व्यक्ति अनुचित साधनों का उपयोग नहीं करता, उसके भीतर एक ऐसी शक्ति निहित रहती है कि वह कहीं भी सिर उठाकर घूम सकता है। इस सुख के सामने अनुचित साधनों पर आधारित बड़े से बड़े वैभव का सुख मुझे बहुत तुच्छ लगता है।"

"जीवन में मैं किसी को भी दीन, किसी को भी दरिद्र, किसी को भी अशिक्षित, किसी को भी असभ्य, किसी को भी टूटा हुआ, किसी को भी सिर झुकाए हुए, किसी को भी अपमानित होते नहीं देख सकती। अभाव के कारण किसी की भी आँख में आँसू आयें इसमें मैं पूरी मानवता का अपमान देखती हूँ। कोई भी अकेला मनुष्य पूरी मानवता के दुःख को नहीं मिटा सकता। लेकिन यदि प्रत्येक प्राणी इस बात का निश्चय करे कि वह दरिद्रता का जीवन किसी भी दशा में व्यतीत नहीं करेगा, तो धरती का मुख जो अभाव की छाया से मलिन है, मुसिकानों में बदल सकता है। लेकिन यहाँ तो मनुष्य जीवन को महत्वपूर्ण समझता ही नहीं। आज का व्यक्ति अपने को इतना छोटा मान बैठा है कि वह सचमुच छोटा हो गया है।"

"यह बात तो आपकी ठीक है।"

"और दूसरे, मैं इस शरीर को बहुत महत्व देती हूँ। मैं चाहती हूँ कि प्राणियों का शरीर इतना उजला होता जैसे चाँदनी..."

जगदीश ने टोककर कहा, "और किसी का हो न हो, आपका तो है ही।"

"और उससे फूलों की-सी गन्ध निसृत होती।"

"और मन और बुद्धि और आत्मा?" जगदीश ने जानना चाहा।

"मन, बुद्धि, आत्मा, सब शरीर से पीछे हैं।"

"मैं नहीं मानता।"

"न मानिए। आप लोग अधिकतर कोरे भावुक, व्यर्थ के बुद्धिवादी, झूठे अध्यात्मवादी होते हैं। इस भावुकता, इस बौद्धिकता, इस अध्यात्म-

वाद से जीवन को कोई सहायता नहीं मिलती। वह तिल मात्र भी विकसित नहीं होता। जीवन का विकास व्यक्तित्व के विकास से ही हो सकता है और यह तभी सम्भव है जब व्यक्ति अपने को केन्द्र बनाकर चले। आप अपनी चिंता करते हैं कम, दूसरों की अधिक। इसी से न अपना भला कर पाते हैं, न दूसरों का। समर्थ व्यक्ति ही दूसरों का कुछ भला कर सकता है, इसलिए सबसे पहली आवश्यकता इस बात की है कि आप स्वयं समर्थ हों। संसार में जितने भी बड़े काम हुए हैं वे सब व्यक्तियों द्वारा ही। इसलिए व्यक्ति का तिरस्कार आप नहीं कर सकते। लेकिन वह तो बहुत बड़ी बात है। आप लोगों की सबसे बड़ी उलझन तो यह है कि भीतर-भीतर बहुत अधिक हैं, बाहर बिल्कुल नहीं—इंट्रोवर्ट ज़्यादा हैं, ऐक्स्ट्रोवर्ट कम। प्राणी का अधिक इंट्रोवर्ट स्वभाव का होना जीवन के सौंदर्य को नष्ट करना है।"

"आपको कोई आपत्ति न हो तो थोड़ी देर किसी वृक्ष के नीचे बैठ जायँ।" जगदीश ने कहा। "और अगर आपके कपड़े मैले होते हों तो मैं कुछ बिछा दूँ?"

"क्या बिछायेंगे?"

"अपना मन बिछा दूँ···।"

"यह तो मुझे आप ग़लत समझते हैं। मैं अपने कपड़े मैले नहीं कर सकती, ऐसा आभास तो मैंने आपको कभी भी नहीं दिया। आप केवल कहते हैं; लेकिन मैं हूँ कि आपकी धरती को सचमुच प्यार करती हूँ—इसके पहाड़ और नदियों को, इसके वृक्ष लताओं को, इसके फूल और तारों को। आप इस सब को केवल देखते हैं; लेकिन मैं एक-एक कण के भीतर जो सौंदर्य और माधुर्य है, उसके रस का उपयोग जितना कर सकती हूँ, अपने और अपने चारों ओर के संसार के लिए, करती हूँ।"

"क्या है आपका संसार?"

"जिन्हें मैं जानती हूँ, वही मेरा संसार है। इसके बाहर मेरे लिए

सब व्यर्थ है। आपका संसार भी उतना ही है। लेकिन आप लोग ढोंग करना खूब जानते हैं। सुबह से शाम तक ऐसा अभिनय करते हैं जैसे सृष्टि की सारी वेदना आपके अंतर में ही आ समायी है। इससे आप दूसरों की वेदना तो मिटा ही नहीं पाते, अपने मन में भी एक प्रकार की काल्पनिक व्यथा को घनीभूत करते चले जाते हैं।"

"आपकी बात सुनने में तो कुछ ठीक-सी लगती है, लेकिन..."

"लेकिन क्या ?"

"लेकिन है अर्द्ध-सत्य।"

"सभी सत्य अर्द्ध-सत्य होते हैं।"

"कुछ पूर्ण सत्य भी तो होगा ?"

"है।"

"क्या है वह ?"

"मनुष्य।"

इतना कहकर नयन खिलखिलाकर हँस पड़ी। बोली, "आप समझते थे मैं ब्रह्म कहूँगी ? आप तो ब्रह्मवादी हैं न ?"

"पता नहीं; लेकिन दर्शन में तो मैं अद्वैतवाद को ही चिंतन की चरम सीमा मानता हूँ।"

"जीवन की सुंदरता इस बात में निहित है कि इसमें सभी के लिए स्थान है—ब्रह्मवादी के लिए भी जीवनवादी के लिए भी, पुण्यात्मा के लिए भी, पापी के लिए भी, सभ्य के लिए भी, असभ्य के लिए भी—यहाँ तक कि मैं और आप जो दो विरोधी विचारों के व्यक्ति हैं, एक प्रकार की अनुकूलता का अनुभव कर सकते हैं।"

"केवल इतना ही ? इसके आगे कुछ भी नहीं क्या ?"

"पहले जब आप मुझे मिले थे तो मैंने आपको एकदम सामान्य व्यक्ति समझा था और बहुत दिनों तक ऐसा ही समझती रही। लेकिन जिस 'बोल्डनैस' से आपने मुझसे बातचीत की, वह मुझे कहीं अच्छी भी लगी।

उस दिन जब मैं बाल सुखा रही थी और आप आये थे और अपने संकोच में सन कर निगाह नहीं उठायी थी, तो न जाने क्यों मैं थोड़ी आकर्षित हुई—भीतर-भीतर। मेरा मन उस दिन इतनी जल्दी आपको जाने देने का नहीं था। आपने मुझसे चाहा कि मैं आपसे कुछ काम लूँ। इस छोटी-सी बात से ही मेरे मन में आपके प्रति एक प्रकार की आदर की भावना भी जागरित हुई। और उस रात जब अपने पहले ट्यूशन के थोड़े-से रुपये आपने मुझे लाकर दिये और कहा कि ये मेरी पहली कमाई के रुपए हैं और मैं जानता नहीं कि इन्हें किसे दूँ तो मैं कह नहीं सकती कि मेरे हृदय की क्या गति हुई। मुझे बहुतों ने बहुत कुछ दिया है; लेकिन इस तरह नहीं। मेरे मन में आया मैं रो पड़ूँ। भीतर मैं रोने के लिए ही गयी थी।"

जगदीश को लगा जैसे कुहरा-सा हटता जा रहा है और स्थिति कुछ स्पष्ट होती चली जा रही है। कौन कहाँ खड़ा है, इस बात का जैसे अब कुछ-कुछ पता चलता जा रहा है। एक पर्दा है जो सरक रहा है। उसके पीछे क्या है, यह अब थोड़ा दिखाई देने लगा है। लेकिन जगदीश इस स्थिति को न जाने क्यों बचाना चाहता है! यहाँ तक ठीक है। इसके आगे नहीं। जिन पलों की नयन ने चर्चा की है, वे सब कितने सुन्दर थे! क्या जीवन में उन्हें कभी लौटाया जा सकता है? भावना की उस तीव्रता को क्या अब अक्षुण्ण रखा जा सकता है? सत्य को मैं नहीं जानना चाहता, उसने अपने मन में कहा। मेरा परिचय केवल सुन्दर से रहे। मार्मिकता के अंचल को छोड़कर यथार्थ को मैं वरण न करूँ, तो कैसा रहे? लेकिन जो सामने आ गया है, उसके लिए क्या करूँ?

"आप क्या आज सोएँगी नहीं, सारी रात बाहर ही घूमती रहेंगी?" जगदीश ने पूछा।

नयन मुस्करा उठी। उस समय बाहर की चाँदनी में और उसकी मुस्कराहट में कोई अंतर नहीं था।

"तो मुझे लगता है जैसे मैं आपको प्यार करने लगी हूँ—यद्यपि बाहरी दृष्टि से आप मेरे जीवन के लिए उतने महत्त्वपूर्ण नहीं हैं—और मुझे इस बात पर आश्चर्य है।"

जगदीश का अहं जैसे आहत हो उठा। उसने शांत रहकर कहा, "ये दोनों परस्पर विरोधी बातें हैं।"

"कौन सी ?"

किसी को प्यार करना और उसे महत्त्वपूर्ण न मानना—यद्यपि इसकी उल्टी बात सही नहीं भी होती।"

"मुझे समझाइये।"

"जैसे आप मेरे लिए बहुत महत्त्वपूर्ण हैं, लेकिन शायद मैं आपको प्यार नहीं करता।"

"आपको ऐसा लगता है ?"

"ऐसा लगता नहीं—है ही।"

४८

जीवन की गति कहीं भी सरल नहीं है। मनुष्य का सारा प्रयत्न सुख के पलों को एकत्र करने में है; पर न जाने कौन उन्हें बार-बार दुःख के जल से अभिषिक्त कर जाता है। बाहर से देखने पर लगता है कि यह जो कुछ हमारे जीवन में सुख बनकर आया है, वह जीवन भर की वेदना को मिटा देगा; लेकिन फिर न जाने क्या होता है कि सब उलट-पलट जाता है। रह जाता है एक सूनापन, सुख के पल की मिटती स्मृति। और फिर मनुष्य वैसे ही किसी पल की खोज में निकल चलता है। पथ में फिर उससे कहीं भेंट हो जाती है। कभी वह उसे पहचानता नहीं, कभी पहचानकर

आगे बढ़ जाता है, कभी मिलता भी है तो दूरी रखकर। ठीक से उसका स्वागत नहीं कर पाता, ठीक से उसे भुजाओं में नहीं भर पाता। उसे बराबर डर लगता रहता है कि यह सुख भी कहीं अन्त में दुःख देकर न जाय!

जगदीश अपनी खिड़की के सहारे बैठा है। सामने पुष्पहीन हरसिंगार पर गुलाबी साँझ उतर आयी है। आज फिर उसे इन्दुकुँवरि की याद आ रही है। इस याद में सुधि का दंशन नहीं है। इस तीखेपन को नयन ने कम कर दिया है—यह समझाकर कि अतीत में जीवित रहना तो कोई जीवित रहना नहीं है। उसे शारदा भी याद आ रही है। लेकिन उसका अपमान अब मन से धुल चुका है—नयन ने अपने चुम्बनों से उसे मिटा दिया है। सच बात यह है कि अपमानित होकर जगदीश के मन में थोड़े दिन के लिए छोटापन आगया था—कैसे ही शारदा से मैं किसी दिन बदला लूँगा। लेकिन वह आकर्षित भी बहुत था; अतः यह भी सोचता था कि अब मैं कहीं विवाह ही नहीं करूँगा। केवल शारदा की स्मृति में ही जीवन व्यतीत कर दूँगा। आकर्षण और प्रतिशोध के अन्तर्द्वन्द्व ने उसके अन्तःकरण को बहुत दिनों तक मथा। लेकिन अन्त में नयन के अधरों की शीतलता की विजय हुई। शारदा का चित्र भी धीरे-धीरे धुँधला पड़ने लगा। अब तो वह इतना भी नहीं चाहता कि शारदा से उसकी कहीं भेंट ही हो जाय। वह सुख में हो तो, दुःख में हो तो, उसे कोई मतलब नहीं। वह उसकी दुनिया में अब नहीं है। वहाँ अब वह कभी लौट कर नहीं आयेगी।

लेकिन इन्दुकुँवरि और शारदा की स्मृति को मिटाने वाली यह नयन कौन है? क्या यह जगदीश के जीवन को नियंत्रित कर सकेगी?

मेज़ पर सिर रखे-रखे जगदीश को झपकी आ गई और पता नहीं इस तंद्रावस्था में वह कब तक रहा। आँख खुलने पर लगा उसका शरीर बहुत दुख रहा है; अतः वह नहाने चला गया। वहाँ से लौटने पर

उसने कपड़े बदले और नयन के यहाँ जा पहुँचा। रामदेई उसके लिए वहीं खाना ले आई। नयन उसे बैठी-बैठी खिलाती रही। उसने नयन से खाने के लिए पूछा तो वह बोली—पता नहीं क्यों, आज मुझे भूख नहीं है। जगदीश ने अधिक आग्रह नहीं किया।

खाना समाप्त होने पर दोनों एक खुले स्थान में आ बैठे।

नयन ने कहा, "क्या आप कल्पना कर सकते हैं कि मेरी मा इस शहर की एक प्रसिद्ध वेश्या थी?"

जगदीश ने सँभलकर शांत भाव से पूछा, "क्या कहा आपने?"

"मैं एक वेश्या की लड़की हूँ।"

"लेकिन यह बात आपने मुझे क्यों बतलाई?"

"समय आ गया है कि अब कुछ भी न छिपाया जाय।"

"क्या नाम था आपकी मा का?"

"आनंदी बाई।"

"मैंने यह नाम कभी नहीं सुना।"

"उस समय आप यहाँ थे कहाँ। तो—मैं भी उस नाते एक वेश्या हूँ। मेरे पिता बहुत धनी व्यक्ति थे। वे अपने काम से कानपुर आया करते थे। एक बार मेरी मा के रूप की किसी से प्रशंसा सुनकर वे उनसे मिलने आये और फिर लौटकर नहीं गए। यह कोठी उन्हीं की बनवायी हुई है। बहुत दिनों के उपरांत मेरा जन्म हुआ। पिता जी से मिलने के बाद मेरी मा ने एक साध्वी स्त्री का जीवन व्यतीत किया; लेकिन दुर्भाग्य की बात है कि पिता जी फिर भी मन में उन पर संदेह करते रहे। शिकार खेलने का उन्हें शौक था और वे काम से बाहर भी जाया करते थे; लेकिन मेरी मा ने बताया कि कभी-कभी वे समय से पहले ही लौट आते थे। मा को इस बात का दुःख जीवन भर बना रहा। एक बार जो वे शिकार खेलने गए तो फिर नहीं लौटे। अँधेरे में पता नहीं किसने दूर से उन्हें गोली मार दी। संभवतः वह मा का कोई पुराना परिचित था, जो

पिता जी को अपना शत्रु समझता रहा होगा। इस सूचना को पाकर मेरी मा मूर्च्छित हो गईं। होश लौटने पर उन्होंने ऐसी चारपाई पकड़ी कि वे फिर उठीं ही नहीं।"

"यह तो बहुत दुःख की घटना है।"

"मुझे स्मरण है जब आप ट्रेन से कानपुर आ रहे थे, तो उस वेश्या को लेकर आपने बड़ी घृणा प्रकट की थी। वेश्याओं से सभी घृणा करते हैं। करनी भी चाहिए। लेकिन आप नहीं जानते थे कि जिससे आप बचना चाहते हैं, उसी जाति के सम्पर्क में नियति ने आपको ला खड़ा किया है।"

"आप उन्हें अच्छा समझती हैं?"

"जानती नहीं वे अच्छी होती हैं या बुरी; लेकिन प्राणी जिस काम से अपना पेट पालता है, उसकी निंदा करना मैं पाप समझती हूँ।"

"इस जीवन का मुझे कोई अनुभव नहीं है। केवल कहानियाँ पढ़ीं हैं। उनके आधार पर कुछ नहीं कहा जा सकता। लेकिन आप इस चिंता में क्यों पड़ती हैं? आपका जीवन तो वैसा नहीं है?..."

"मुझे यही डर था कि आप मेरे संबंध में कुछ भी नहीं जानते। नहीं, मैं भी एक वेश्या हूँ; लेकिन भिन्न प्रकार की।"

जगदीश को जैसे बिजली मार गई। वह कुछ भी नहीं बोला। उससे बोला ही नहीं गया। वह नयन की ओर आँख फाड़कर केवल देखता रह गया।

"आपको इस बात का दुःख है कि आप मेरे यहाँ रहे?"

जगदीश ने सिर हिलाया।

"आपको इस बात का दुःख है कि आपने मेरे यहाँ का अन्न खाया?"

जगदीश ने फिर सिर हिलाया।

"फिर इस बात को सुनकर आपको आघात क्यों लगा?"

"मुझे जीवन का अनुभव नहीं है और मेरा मन अभी बहुत कच्चा है। संस्कार मेरे भी अभी कुछ शेष हैं; लेकिन वे ऐसे नहीं हैं जो धीरे-धीरे न मिट सकें। मेरे स्वभाव की भी अपनी सीमाएँ हैं। आख़िर मैं भी मनुष्य ही हूँ। दुर्बलता मेरे अन्दर नहीं है, ऐसा मैं नहीं कहता; लेकिन आवश्यकता पड़ने पर मैं तुरन्त उस से ऊँचा उठ सकता हूँ। फिर भी मेरी एक कल्पना थी, जो नष्ट हो गई। संभवतः इसी का दुःख होगा··· लेकिन मैं कुछ पूछना चाहता हूँ।"

"पूछिए।"

"आपके माता-पिता ने क्या इतना नहीं छोड़ा है, जो आपके जीवन भर के लिए काफ़ी हो?"

"बहुत रुपया छोड़ा है। लेकिन बचपन से ही मुझे इतने दुलार से, इतने नाज़ों से पाला गया है कि आप कल्पना भी नहीं कर सकते। मुझे बचपन से ही आदमी को नहीं, ज़िन्दगी को प्यार करना सिखलाया गया है। आपने अभी मेरा पूरा घर भी नहीं देखा है और अपने गुप्त जीवन में मैं किस तरह से रहती हूँ, यह आप नहीं जानते। बहुत रुपया होने पर भी, मेरी आदतें इतनी ख़राब हो चुकी हैं कि मुझे बहुत रुपये की ज़रूरत है। किसी प्रकार के अभाव में मैं जीवित नहीं रह सकती।"

"लेकिन मैंने तो यहाँ कभी किसी को आते नहीं देखा।"

"नहीं, यहाँ कभी कोई नहीं आता। मैं ही बाहर जाती हूँ।"

"ऐसे कितने लोग हैं जिनके यहाँ आप आती-जाती हैं?"

"हैं तीन-चार।"

"उनसे आपको काफ़ी मिल जाता है?"

"हाँ। वे देश के बहुत सम्पन्न व्यक्ति हैं जो पैसे को पानी की तरह बहाते हैं। उनमें एक बहुत बड़े अधिकारी भी हैं।"

"क्या नाम हैं उनके?"

"नहीं, नाम मैं नहीं बता सकती। धनी व्यक्तियों और कुछ बड़े

अधिकारियों का एक आन्तरिक चरित्र होता है जिसे सब नहीं जानते। बड़े लोगों का एक गुप्त जीवन होता है जिसका परिचय सभी को नहीं होता। यदि भारत में वेश्यावृत्ति का कभी सच्चा इतिहास लिखा गया—जिसकी मुझे बहुत कम आशा है—तो न जाने जीवन के कितने रहस्यों का उद्घाटन होगा। यदि देश की कुछ प्रसिद्ध वेश्याएँ अपने संस्मरण लिख या लिखा पातीं, तो वे इतने लोकप्रिय होते कि अच्छे से अच्छे उपन्यास भी उनके सामने फीके पड़ जाते।"

"आप लिखिए न अपने संस्मरण ?"

"छोड़िए—वह अलग की बात है।"

"एक बात पूछ सकता हूँ—यदि आपको बुरी न लगे तो ?"

"मैं जानती हूँ आप कुछ भी ऐसा नहीं कह सकते जो मुझे बुरा लगे।"

"क्या, इस काम को आप छोड़ नहीं सकतीं ?"

"नहीं।"

"क्यों नहीं ?" जगदीश ने आश्चर्य से पूछा।

"यह जीवन मुझे पसन्द है। मैं अपना जीवन जी रही हूँ—अपने मन का जीवन। इस जीवन में मैं पूर्ण स्वतंत्र हूँ। जो बन्धन हैं वे मेरे अपने बनाये हुए हैं। उन्हें मैं कभी भी तोड़ सकती हूँ। मुझे अपनी साध्वी मा की याद आती है तो मेरा हृदय बहुत दुखता है। मेरे पिता से मिलने के पहले वे कैसी ही रही हों; पर जिसे मैंने देखा है, वह उनका पुनर्जन्म था। उस पर भी संदेह ! नहीं, नहीं, संदेह के वातावरण में मैं एक पल भी जीवित नहीं रह सकती !"

जगदीश एकदम गम्भीर हो गया। दोनों थोड़ी देर चुप बैठे रहे—जैसे समय की गति सहसा रुक गई हो। नयन ने आगे बढ़कर उसके दोनों हाथ अपने हाथों में ले लिए, बोली, "तुम्हारे मन में क्या हलचल है, कुछ बताओ न ?"

"मेरे भीतर कुछ था, जो टूट गया है। इससे अधिक मैं कुछ नहीं जानता। स्त्रियों ने न जाने कितनी बार पुरुषों के हाथ झटक दिए होंगे; लेकिन पुरुष प्यार करने वाली नारी के हाथ को झटक सके, ऐसा साहस अब भी उसमें नहीं है। फिर भी, अब मैं जाऊँगा।"

इतना कहकर वह खड़ा हो गया। नयन उसी के साथ उठी चली आई।

"अपने कमरे में जाओगे न ?"

"नही, तुम्हारे घर से जाऊँगा।"

"इस समय ?"

"हाँ। इसी समय।"

"इतनी रात में ?"

"हाँ।"

"नहीं नहीं, इस समय मैं नहीं जाने दूँगी। मुझे यही डर था। लेकिन इस बात को मैं और अधिक नहीं छिपा सकती थी। क्या सब कुछ कहकर मैंने बुरा किया ?"

"बुरा तुमने कुछ भी नहीं किया। जितनी ईमानदार तुम हो, उतने जीवन में बहुत कम लोग होते हैं। लेकिन, मैं उस मिट्टी का बना हुआ नहीं हूँ जिसके सामान्य मनुष्य होते हैं और इतनी बड़ी बात कहने के लिए मैं क्षमा चाहता हूँ। मैंने तुमसे बहुत पाया है और बहुत सीखा है; लेकिन और अधिक नहीं। जीवन की सबसे बड़ी विडम्बना यह है कि सब व्यक्ति कहीं न कहीं विवश हैं—तुम भी, मैं भी। जब जाना ही है तो उसके लिए रात क्या, और दिन क्या! एक घंटा पहले क्या और एक घंटा बाद क्या! रोकर क्या और मुस्कराकर क्या! जाना जाना ही है। उसकी वेदना जो विदा देता है और जो विदा लेता है वही जानता है। मेरे विदा होने का समय सचमुच आ गया है। मैं जा रहा हूँ और अब

कभी भी नहीं आऊँगा। मैं कहीं भी रहूँ और कुछ भी करूँ; लेकिन मैं तुम्हें कभी भुला नहीं पाऊँगा।"

अपनी वाणी को संयत करते हुए नयन ने कहा, "यह तो मैं जानती थी कि तुम्हें बाँधकर नहीं रखा जा सकता—पैसे से भी नहीं, रूप से भी नहीं—लेकिन मेरे मन में एक संदेह हूँ, उसे मैं मिटाना चाहती थी।"

"कहो न क्या बात है ?"

"तुम क्या मुझे सचमुच प्यार नहीं करते ?"

"ये बातें इतनी स्पष्टता से नहीं पूछी जातीं, नयन ?"

"मैं समझती हूँ इसमें कोई हानि नहीं है। मन में भाव है तो उसे कभी न कभी बाहर लाना ही होगा। भाव को एक सीमा तक छिपाये रखना ठीक है; लेकिन उसके आगे उसे अधिक दबाना ठीक नहीं ••"

"मैंने तुम्हें प्यार करना चाहा था···"

"फिर क्या बात हुई ?"

"तुम में थोड़ा अहं है। वह कभी-कभी अच्छा भी लगता है। मेरे विरोध में जब वह आकर खड़ा होता है, तो मुझे थोड़ी चोट भी पहुँचती है। लेकिन अभी तक तुम्हें कोई ऐसा मिला नहीं जिसके सामने तुम झुक सको। फिर भी तुममें बहुत परिवर्तन आ गया है और मैं समझता हूँ यह अहं किसी दिन पिघल जायगा। जहाँ तक विचारों के विरोध का सम्बन्ध है, वहाँ तक मैं उनका स्वागत करता हूँ। प्रत्येक प्राणी को अपने विचारों की स्वतंत्रता की रक्षा करने का अधिकार है। मैं तुम्हारे विचार नहीं बदलना चाहता। साथ ही यह भी आशा रखता हूँ कि तुम भी मेरे विचारों का आदर करोगी। लेकिन जान या अनजान में तुम प्यार के मूल पर ही कुठाराघात कर रही हो, यह तुम नहीं जानतीं। ऐसी दशा में···"

"आपके सम्पर्क में आने से पूर्व का मेरा अपना एक जीवन है। उसे मैं मिटा नहीं सकती।"

"और मेरा नहीं था, यद्यपि वह हो सकता था···; लेकिन उससे तो कुछ बनता-बिगड़ता नहीं।"

"तब ?"

"मैं यह आशा नहीं करता कि जो हो गया, वह न होता; लेकिन तुम यदि यह कहती हो कि तुम मुझे प्यार करती हो और उसके बाद···"

"आप यह नहीं मानते कि शरीर का सम्बन्ध और बात है, प्यार और बात···"

"पता नहीं लेकिन कोई भी पुरुष इस स्थिति को सहन नहीं कर सकता। मैं तो एकदम नहीं। इसे तुम मेरा संस्कार कह सकती हो, लेकिन यहाँ मैं विवश हूँ। मैं समझता हूँ प्यार की स्पष्ट स्वीकृत के उपरान्त कोई स्त्री या पुरुष इस बात को सहन नहीं कर सकता कि उसके प्रेमी या प्रेमिका का शारीरिक सम्बन्ध किसी और से हो।"

"संस्कार तो है ही। तब मेरे और तुम्हारे बीच भाव का कोई सम्बन्ध नहीं है ?" नयन ने पूछा।

"तुम मेरे जीवन की पहली मित्र हो, इससे अधिक और मैं क्या कहूँ ?"

"मित्र होने के नाते मेरा कोई अधिकार नहीं है ?"

"है क्यों नहीं !"

"अच्छा, यदि यह बात सच है, तो मुझे कुछ और नहीं चाहिए; लेकिन फिर भी मेरी छोटी-सी एक इच्छा है। कहो, उसे पूरा करोगे ?"

"कहो न, क्या है ? मन में कुछ रखना ठीक नहीं।"

"जैसा तुम्हारा स्वभाव है, मैं नहीं समझती कि तुम कभी किसी प्रकार की लौकिक उन्नति कर पाओगे। तुम्हारे सम्बन्ध में सूचना मैं निरन्तर रख पाऊँगी, कह नहीं सकती। लेकिन, मेरा मन तुम्हारे लिए सदैव शंकित रहेगा। इसी से, अगर किसी दिन तुम्हारे ऊपर कोई बहुत बड़ा संकट पड़े या कभी तुम जिन्हें अपना समझते हो, वे सभी धोखा दे जायँ,

तो तुम बिना कुछ सोचे—समय की दूरी की चिंता किये बिना—मेरे पास सीधे आओगे।"

जगदीश कुछ कहने ही वाला था कि नयन ने उसके मुख पर हाथ रख दिया। बोली, "मैं इस बात का जवाब नहीं चाहती।"

जगदीश ने एक पल को नयन की ओर देखा और सिर झुका लिया और तब वह ऊपर से उतरकर वृक्षों के नीचे धीरे-धीरे चलता हुआ लोहे के फाटक के बाहर हो गया।

४६

ग्रीष्मावकाश में जगदीश गाँव चला गया और वहाँ से लौटने पर उसे होस्टिल में एक कमरा मिल गया। उसकी शिक्षा का यह अंतिम वर्ष था; अतः उसने कठोर परिश्रम करना प्रारम्भ किया। इस वर्ष के परिश्रम पर ही उसकी सफलता-असफलता निर्भर करती थी। मित्रों से मिलना-जुलना उसने एकदम बंद तो नहीं किया; पर जहाँ तक बन पड़ता, वह उनसे बहुत कम मिलता। उसे अपने ऊपर स्वयं आश्चर्य होने लगा।

मनुष्य के जीवन में नियति का हाथ हो अथवा न हो; पर उसके स्वभाव और परिस्थितियों का बहुत बड़ा हाथ होता है। परिस्थितियाँ हैं कि जीवन की गति कहीं से कहीं बदल देती हैं। कहना तो सरल है; परन्तु बहुत कम व्यक्ति परिस्थितियों पर अधिकार करके दिखा सकते हैं। अधिकतर तो उन्हीं के प्रवाह में बह जाते हैं। प्रवाह के साथ बहना कितना सरल और सुखद लगता है। यही दशा मनुष्य के स्वभाव की है। सभी अपने-अपने स्वभाव से विवश हैं। कभी-कभी ऐसा होता है कि सब कुछ हमारे अनुकूल हो जाता है; लेकिन तभी हम अपने स्वभाव के कारण

कुछ ऐसा कर बैठते हैं कि सारी परिस्थिति बदल जाती है। जगदीश को अब तक स्मरण है कि वह एक साधनहीन विद्यार्थी था। साहस करके ही वह बाहर निकल पड़ा था। न किसी से परिचय था और न किसी का बल। एक दिन ट्रेन में वह यात्रा करता है कि नयन से उसकी भेंट हो जाती है। रूप के आकर्षण के कारण वह उसके सामने पहुँचता है और फिर कुछ ऐसा होता है कि वह उसे अपने साथ ले आती है। वहाँ क्या उसे कोई दुःख था? नयन उसे कितना चाहती थी! तीन वर्ष वहाँ रहने के उपरांत एक रात उसका रहस्य खुलता है। इस रहस्य का उद्घाटन वह स्वयं ही करती है। अपने स्वभाव से विवश होकर जगदीश उसी रात, उसी पल उसके घर को छोड़ देता है। क्या इसमें नियति का हाथ समझना चाहिए? नयन यदि और थोड़े दिन कुछ न कहती तो जगदीश क्या उसके प्रणय-दान को स्वीकार न करता? कौन कह सकता है तब क्या हुआ होता! ऐसे ही यदि शारदा ने उसका अपमान न किया होता और उससे उसका विवाह हो गया होता तो? तो संभवतः उसका मन कहीं न भटकता और धीरे-धीरे ये सब लोग उसके जीवन से निकल गए होते। और यदि सीमा का ही विवाह न हुआ होता तो? तो पता नहीं क्या अन्तर पड़ता! सीमा तो वहीं की वहीं दिखाई देती है; पर जगदीश अवश्य कुछ बदल गया है। तब क्या प्रेम के क्षेत्र में स्थायी कुछ नहीं है? सब कुछ परिस्थिति और मनुष्य के स्वभाव पर निर्भर करता है?

कौन जाने!

जगदीश बाज़ार से निकला जा रहा था कि एक तांगे पर उसकी दृष्टि पड़ी। अरे, यह तो सीमा है। इस बीच सीमा ने भी उसे देख लिया था। तांगा रुक गया। जगदीश पास आगया।

"तुम कहाँ सीमा?"

"पहले तांगे में बैठ जाओ। फिर बातें होंगी।"

सीमा ने बतलाया कि मिस्टर बनर्जी का ट्रांसफ़र हो गया है और वह

उनके साथ नहीं गयी। संगीत की एक परीक्षा उसने इस बीच पास कर ली है और एक गर्ल्स स्कूल में उसे संगीत सिखाने का काम मिल गया है। शंकर मुखर्जी दीदी को बहुत दुःख देने लगे हैं; अतः पिता जी इलाहाबाद चले गए हैं और अब वे दीदी के साथ ही रहेंगे। उसने एक छोटा-सा मकान किराये पर ले लिया है और वह बहुत खुश है। दुःख था तो यही कि जगदीश ने उसे बिल्कुल भुला दिया और साल भर होने को आया कि उससे मिला ही नहीं। और अब जब वह मिल गया है तो वह सारे दिनों की कमी पूरी कर लेगी और उसे जाने देगी ही नहीं।

तांगा रुका। दोनों ने एक छोटे से घर में प्रवेश किया। मकान पुराना था। बाहर एक कमरा था जिसे ड्राइंग-रूम कह सकते थे। दो छोटे कमरे थे। छोटा-सा आँगन। खुली छत। ड्राइंग रूम में वस्तुएँ अव्यवस्थित ढंग से रखी थीं—वैसे ही जैसे कलाकारों के कमरे में पड़ी रहती हैं। तानपूरा भी बीच में वैसे ही पड़ा था। जगदीश को अच्छा नहीं लगा। कालिंदी ठीक ही कहती थी—सीमा कुछ नहीं जानती। नारी को वह व्यवस्था, सुन्दरता और सामंजस्य की प्रतिमूर्ति समझता था। वह तो अव्यवस्था में भी व्यवस्था ला देती है। पर उसने कुछ कहा नहीं। उसे कौन उसके साथ रहना है।

आँगन के कोने में एक ओर एक बेल चढ़ी हुई थी। उसके कुछ पत्ते बीच-बीच में सूख चले थे। क्यों नहीं सीमा उन्हें तोड़कर फेंक देती ? उसकी इच्छा हुई वह ही उन्हें तोड़कर घर से बाहर फेंक दे। बेकार लता से लिपटे हुए हैं! सफ़ेद फूल यहाँ-वहाँ दिखाई देते थे। जगदीश बहुत देर तक उस बेल को देखता रहा।

"क्या देख रहे हैं ?" सीमा ने पूछा।" यहाँ देखने योग्य कुछ नहीं है। कुछ नहीं है ऐसा जिस पर. कविता लिखी जा सके ?"

"यह आपने क्या कहा ? कविता किसी भी विषय पर लिखी जा सकती है। आवश्यक यह है कि विषय, भाव या वस्तु ने कवि के मन को छू

लिया हो। कविता के लिए कोई बन्धन नहीं है। वह कहीं से भी सामग्री का चयन कर सकती है।"

"लेकिन मैं जानती हूँ, यहाँ ऐसा कुछ नहीं है जो मन को छू सके। अव्यवस्था और लापरवाही के भीतर से काव्य का सृजन हो सके, ऐसा मैं नहीं मानती।"

"मुझे तो कभी-कभी ऐसा लगता है, सीमा कि यह सब कुछ एक विराट अव्यवस्था में चल रहा है। सृष्टि में 'कैओस' के अतिरिक्त और कुछ नहीं। ईश्वर जैसी कोई चीज़ कहीं नहीं। मेरी समझ में नहीं आता कि लोग नास्तिकता का प्रचार क्यों नहीं करते ? क्या तुम समझती हो कि नास्तिकता को आधार बनाकर महान् साहित्य या कला का सृजन नहीं हो सकता ?"

"छिः-छिः, यह आज तुम कैसी बातें कर रहे हो ? क्या हो गया है तुम्हें ? क्या तुम्हें कहीं कोई आघात लगा है ?"

"नहीं, नहीं; लेकिन मैं तुम्हारा बहुत आदर करता हूँ सीमा। तुमने सचमुच बहुत बहादुरी का काम किया है।"

सीमा ने इस बात का कोई उत्तर नहीं दिया। उसकी ओर देखकर उसने पूछा, "अपना सामान तुम यहाँ क्यों नहीं उठा लाते ? जानते तो हो, कितनी अकेली हूँ !"

"यहाँ कैसे आया जा सकता है ?"

"क्यों ?"

"कुछ नहीं..."

"मैं अभी चलकर तुम्हारा सामान उठाए लाती हूँ।"

"नहीं-नहीं सीमा, यह नहीं होने का। अच्छा अब मैं चलूँगा। फिर कभी दिन में आऊँगा।" इतना कहकर जगदीश उठ पड़ा।

"मैं तुम्हें पहुँचाने चल सकती हूँ—अगर तुम चाहो तो ?" सीमा ने कहा।

"तुम तो सचमुच बदल गई हो। लेकिन इसके बाद ?"

"इसके बाद क्या होता है ? यदि होता है तो तुम मुझे पहुँचा जाना।"

"अर्थात् रात भर फिर यही होता रहे—मैं आपको पहुँचाऊँ। आप मुझे... ।"

"ऐसा हो भी तो क्या बुरा है ? एक रात ऐसी भी होनी चाहिए जिसमें कुछ न किया जाय।"

"अच्छा, चाय बनाओ। तब आज मैं यहीं रहूँगा।"

सीमा प्रसन्नता में भरकर उसके कंधे से लग गई। बहुत रोकने पर भी आँसू उसके निकल ही आये।

"अब यही बात तो मुझे लड़कियों की बुरी लगती है कि बात-बात पर रोने लगती हैं। और तुम रोयीं तो मैं अभी चला जाऊँगा।" जगदीश ने थोड़े कठोर पड़कर कहा।

सीमा उन्हीं आँसुओ के बीच मुस्कराती हुई चली गयी। चाय लाकर उसने जगदीश के सामने रख दी और फिर खाना बनाने में व्यस्त हो गई। जगदीश चौके के सामने आँगन में ही बैठा था; अतः बीच-बीच में बातचीत भी होती जाती थीं। पर अधिकतर वह अपने में ही डूबा रहा।

उसके बचपन को तो निश्चित रूप से इंदुकुँवरि ने घेर रखा था—यद्यपि उसे वह प्रेम की कोई बहुत बड़ी घटना नहीं कह सकता था। यह भी स्पष्ट था कि वह प्रेम सफल नहीं हो सकता था। लेकिन क्या असफलता के कारण प्रेम का सौंदर्य कम हो जाता है ? उसका महत्त्व घट जाता है ? थोड़े बड़े होने पर उसने लैला-मजनू और शीरीं-फ़रहाद की कहानियाँ सुनीं। लोग उन्हें अत्यधिक भावुकता से भरी हुई प्रेम की सस्ती कहानियाँ बतलाते थे। लेकिन उसे उनमें कहीं भी सस्तापन नहीं लगता था। अतिरंजित वे कुछ अवश्य थीं; इसी से वह उर्दू के कई विद्वानों से मिला और उनके मूल रूप को जानने का उसने प्रयत्न किया। और बड़े होने

पर उसे पंजाब की प्रेम-कहानियों का परिचय मिला—हीर-राँझा, सोहनी-महीवाल, मिरज़ा-साहिबाँ, ससि-पुन्नू की कहानियों का। इसके उपरान्त वह प्रेम की कहानियों को ढूँढ़-ढूँढ़कर पढ़ने लगा और उन्हें एकत्र करने लगा। उसे यह जानकर आश्चर्य होता था कि सारे देश में केवल पंजाब में ही ऐसे प्रेमी-प्रेमिका क्यों उत्पन्न हुए ? रोमांटिक-प्यार के लिए पञ्जाब की भूमि ही क्यों इतनी उपयुक्त सिद्ध हुई ? पौराणिक कहानियों में उसका बहुत कम विश्वास था; इसी प्रकार कवियों के जीवन से सम्बन्धित जो कहानियाँ प्रचलित थीं, वे उसे गढ़ी हुई लगती थीं। उसकी इच्छा थी कि बड़ा होकर सभी देशों की प्रेम-कहानियों के आधार पर वह कोई ग्रंथ लिखे। वह कभी-कभी लोगों से पूछा करता कि अब प्रेम की ऐसी घटनाएँ क्यों नहीं घटतीं ? सारे देश में अब कहीं क्यों ऐसा नहीं होता जिससे एक कोने से दूसरे कोने तक शोर मच जाय ?

क्या उसका पथ भी प्रेम का पथ है ? क्यों प्रेम के संबंध में जानने की उसके मन में इतनी आकुलता है ? क्या उसकी आत्मा का निर्माण केवल प्रेम के तत्त्वों से ही हुआ है ? क्या जन्म-जन्मान्तर में वह प्रेम के लिए ही भटकता फिरा है ?

खाने में सीमा को कुछ अधिक नहीं करना था। खाना खाकर दोनों ऊपर छत पर आ गए। बिस्तर छत पर बिछा था और चाँदनी खिली हुई थी।

जगदीश ने कहा "अब सो जाओ।"

"जी हाँ सो जाओ" मतलब था—नहीं सोयेंगे।

खाना बनाने के उपरांत सीमा को रात में नहाने की आदत थी, अतः उसने आज भी स्नान किया था। बाल उसके खुले हुए थे। घर था और किसी का डर नहीं था; अतः वस्त्र वह बहुत कसे हुए और महीन पहने थी। उसे कैसे ही पता चल गया था कि जगदीश को श्वेत या हल्के पीले वस्त्र बहुत पसन्द हैं। इस समय वह एकदम श्वेत वस्त्रों में थी···!

बिस्तर चौड़ा अवश्य था; लेकिन था एक ही।

"मेरा विस्तर कहाँ है?"

"कहाँ लगा दूँ?"

छत के कोने की ओर संकेत करते हुए जगदीश ने कहा, "वहाँ।"

"तुम सोचते हो, वहाँ मैं नहीं पहुँच सकती?"

"फिर?"

"यहीं सो जाओ। बीच में एक तलवार रख लेंगे—जैसे राजपूत लोग कभी-कभी रख लेते थे।"

तलवार की बात सुनकर जगदीश को हँसी आ गई। बोला, "सीमा, तलवार एक प्रतीक है। ऐसी स्थिति आने पर राजपूत लोग संयम से काम लेते थे। संयम ही वह तलवार है।"

"मैं अब तक यही समझती थी कि तलवार ही रखते होंगे। बेचारी रात भर उसकी धार को देखकर डरती रहती होगी। ऐसे में नींद क्या ख़ाक आती होगी!"

इतना कहकर वह नीचे उतर गयी और अपना सितार उठा लाई। उसे बहुत देर तक बजाती रही। मीठे स्वर किरणों के गले मिलकर उनमें खोते रहे। जगदीश थोड़ी देर तो तन्मय होकर सुनता रहा और फिर सो गया। सीमा ने इस बात को लक्ष्य कर लिया था। आज उसे किसी सुनने वाले की आवश्यकता नहीं थी। अपने मन की प्रसन्नता के लिए ही वह उसे बजा रही थी। जब वह बहुत थक गई तो सितार एक कोने पर रखकर वह जगदीश के पास आई। बहुत देर तक वह उसे देखती रही···देखती रही···देखती रही।

सीमा को एक-एक बात इस समय याद आ रही थी—मानसरोवर की मीटिंग में रवीन्द्रनाथ पर जगदीश का भाषण देना, उसके मंत्री द्वारा सीमा से गाने का आग्रह किया जाना, उसका मना करना और पिता के कहने से कुछ गाना, जगदीश का पहली बार उसके घर आना और गानों

को लेकर आपस में झगड़ा होना, कालिंदी का इलाहाबाद से आना और उनके मिलने में व्याघात पड़ना, मि० बनर्जी के यहाँ पिता और दीदी के साथ जगदीश को अपने साथ ले जाना और उस संबंध को तोड़ने के लिए उसका प्रयत्न करना, फिर उन्हीं से उसका विवाह होना और उन्हें छोड़कर उसका नौकरी करना और अब एक वर्ष के उपरांत जगदीश से उसकी भेंट होना और इस तरह सो जाना—चाँदनी रात में इस तरह सो जाना !

कितने निश्चिन्त होकर सो रहे हैं ! लेखक हैं ये ! पत्थर थोड़े से ! कलाकार क्या ऐसी चाँदनी रात में ऐसे ही सो जाते होंगे ? वह छत पर टहलने लगी। टहलते-टहलते थक गई तो बिस्तर के दूसरे कोने पर दोनों हथेलियों में अपने मुँह को लेकर चुप बैठी रही। नींद लेकिन आ नहीं रही थी। वह फिर उठी और छत के बाहर ताकने लगी। इस मकान के पीछे थोड़ी-सी जमीन थी जो एक दीवाल से घिरी थी। उसमें एक नीबू का पेड़ खड़ा था। इसकी ओर उसने कभी भी ध्यान नहीं दिया था। लेकिन इस समय न जाने क्यों उसका मन ऐसी ममता से भर उठा कि दृष्टि जमाकर उसे बहुत देर तक देखती रही।

वह नीचे उतर आयी और खिड़की के पास बिछे हुए पलँग पर लेट गई। चाँद उसकी खिड़की से साफ़ दिखाई दे रहा था। हमसे यहाँ नहीं सोया जाता—ऐसा कहकर वह फिर घूमने लगी। उसने रोशनी की। एक कोने में एक लम्बा शीशा रखा था। उसमें अपने को देखने लगी। हाय ! इस समय मुझे कोई देख ले तो ! इतनी रात में क्या शीशा देखा जाता है। शीशे का एक ग्लास उठाकर उसे ऊपर तक भर कर उसने पानी पिया और फिर सीढ़ियों पर चढ़ने लगी।

जगदीश इस बीच उठ बैठा था। उसने अपने चारों ओर देखा सीमा कहीं नहीं थी। सीमा क्या अप्रसन्न हो गई ? क्या उसे मनाकर लाना होगा ? इतने में ज़ीने के पास वह खड़ी दिखाई दी। उसने बहुत

प्यार से उसे संबोधित किया और वह जैसे बिल्कुल दौड़कर आयी हो, उसके पास आकर बैठ गई। जगदीश सीधे हाथ का सहारा लेकर बैठा था। उसका बाँया हाथ उसके घुटने पर रखा था। सीमा ने अपनी हथेली उस पर धीरे से रख दी।

"कितना अंतर है दोनों हाथों में जैसे बरगद के पत्ते पर गुलाब की पंखुरी रखी हो, जैसे पत्थर में कमल खिल आया हो।"

"हूँ" कहकर सीमा ने अपना हाथ खींच लिया।

"मैं सीमा अभी एक स्वप्न देख रहा था। एक नदी है। उसमें एक नौका बही जा रही है। उसके एक किनारे पर मैं बैठा हूँ, दूसरे पर कोई और है। यह स्वप्न मैंने न जाने कितनी बार देखा है।"

"कैसी हैं?"

"जब कभी भी देखता हूँ—एक ही आकृति—खुले हुए बाल, पैर सदैव नंगे। इसी से जब कभी मैं किसी को केश खोले देखता हूँ तो वह मुख मुझे न जाने किसकी याद दिला जाता है। खुले बाल और नंगे पैर रमणी मुझे बहुत सुन्दर लगती है।"

"यह आकृति किस से मिलती है?" सीमा ने पूछा।

"नहीं किसी से नहीं मिलती। किसी-किसी में उनकी थोड़ी झलक हो तो में नहीं कह सकता; लेकिन इस मुख को मैं किसी दिन देखूँगा, ऐसा मेरा विश्वास है।" जगदीश ने कहा।

"स्वप्न की-मूर्ति बाह्य जगत में देखेंगे, ऐसा विश्वास है?"

"हाँ।"

तुम्हें क्या लगता है, यह कौन है?"

"मैं जानता नहीं। लेकिन मेरे मन में नारी का जो चित्र है, शायद यह वही है। यही मेरे प्यार का सुन्दर मुख है। मैं इस प्यार के सुन्दर मुख को किसी दिन देखकर ही मरूँगा...।"

"अच्छा, मैंने समझ लिया। इस तरह किसी का भी सपना सच्चा नहीं होता।"

"तब मैं सारा जीवन इस सपने को देखते-देखते ही व्यतीत कर दूँगा।"

"सच ? यदि ऐसा है तो आज तक मैं यह समझ ही नहीं पाई कि तुम क्या चाहते हो। आज मुझसे स्पष्ट समझाकर कहो।"

"नारी का प्यार क्या है यह मैं किसी से जानना चाहता हूँ।"

"तुम कभी किसी नारी के सम्पर्क में नहीं रहे ?"

"रहा हूँ—कई के।"

"तुम्हें किसी ने नहीं बताया ?"

"नहीं।"

"तुम्हें किसी नारी ने प्यार नहीं किया ?"

"ऐसा ही तो लगता है।"

"ताज्जुब है !"

"सुख के मैंने कुछ पल ही जाने हैं; लेकिन नारी का प्यार क्या होता है, मैं सचमुच नहीं जानता। मेरे जीवन में दुःख का जो खारा समुद्र लहरा रहा है, उसमें ये पल मीठे जल की कुछ बूंदें हैं। मुझे स्वीकार करना चाहिए कि यह रात भी ऐसी ही है।"

इस बीच सीमा दोनों मुलायम तकियों को सिरहाने लगाकर लेट गयी थी। बिना बाहों का श्वेत ब्लाउज़। संगमर्मरी बाँहें, उजली निखरी दूध से धुली चाँदनी में अपनी ओर बार-बार आकर्षित करती थीं। पैर घुटनों के जोड़ तक खुले हुए थे। जगदीश काँप गया।

प्रत्येक सम्बन्ध में चरमसीमा के रूप में एक पल होता है। वह पल इस समय आ गया था। बड़े सम्बन्धों में ये पल बार-बार आते हैं। पहले से कुछ नहीं कहा जा सकता कि किसी सम्बन्ध की परिणति किस रूप में कब और कहाँ होगी। इसी से इस पल का विशेष महत्व है। सभी प्रकार के आकर्षणों में यह पल ही सबसे महत्वपूर्ण और केन्द्रीय वस्तु है। इस

पल की सुन्दरता को न जाने कितने लोग नष्ट करके जीवन-भर पछताए हैं।

सीमा ने लेटे ही लेटे जगदीश के दोनों हाथ अपने हाथों में ले लिए। बोली, "एक बात का उत्तर दोगे ?"

जगदीश ने कहा, "हाँ।"

"तुम क्या मुझे प्यार करते हो ?"

जगदीश ने सिर झुका लिया। उत्तर उससे देते नहीं बना।

सीमा बोली, "देखो, अनेक बार तुमने मुझसे कहा है कि मैं सुन्दर हूँ। यदि हूँ, तो इसकी उपयोगिता मेरे लिए कुछ नहीं है। तुम जानते हो बहुतों की दृष्टि मेरे ऊपर रही है। एक काल तो ऐसा बीता है जब मैं इस सुन्दरता के कारण परेशान हो उठी थी और मुझे लगा यह एक अभिशाप है। एक बार मैंने अपने को थोड़े कुरूप करने की भी सोची। लेकिन फिर न जाने कैसे सद्बुद्धि जगी और मैंने सोचा—भगवान ने जो मुझे दिया है, उसे विकृत करने का मुझे कोई अधिकार नहीं है।

मेरा विवाह हुआ। मेरी इच्छा थी कि तुम उस विवाह को रोकते। लेकिन तुमने ऐसा नहीं किया। ख़ैर, जो हुआ, अच्छा हुआ। अब मेरी एक बात सुनो और वह यह...देखो, मेरे शरीर की ये पंखुड़ियाँ धीरे-धीरे झर रही हैं और एक दिन मैं मिट जाऊँगी। इसलिए अगर..."

जगदीश ने अपने हाथ धीरे से खींच लिए और रुँआसा-सा होकर बोला, "ऐसा नहीं सोचते सीमा।"

"ज़रूर सोचते हैं" सीमा ने कहा।

जगदीश ने अपना सिर उसके पैरों पर रख दिया और उन्हें हाथ से पकड़कर अनुनय की वाणी में बोला, "ऐसा नहीं कहते सीमा, ऐसा नहीं कहते।"

सीमा उठकर बैठ गई। जगदीश ने अपने सिर को उसके पैरों से

उठाया नहीं। वह उन उजले कोमल चरणों को चूमते हुए बोला, "नहीं, नहीं, हरगिज़ नहीं, बिलकुल नहीं, कभी नहीं!"

जब उसका भावावेश शांत हो गया तो सीमा ने धीरे से उसे अपने वक्ष से लगा लिया और अपने कंधे पर उसका सिर रख लिया। जगदीश का आवेश फिर उमड़ आया और वह फूट-फूट कर रोने लगा। सीमा ने उसके सिर को उठाया और आँसुओं से भरी उसकी आँखों को चूमती हुई बोली, "मुझे सच बताओ। क्या बात है?"

जगदीश ने रोते हुए कहा, "मैंने सबको खो दिया है; लेकिन मैं तुम्हें नहीं खोना चाहता। मुझे मालूम है, प्यार में सैक्स आने से वह नष्ट हो जाता है।"

"यह उल्टी बुद्धि तुम्हें किसने दी है?"

"मेरा 'इन्ट्यूशन' कहता है।"

"इन्ट्यूशन?"

"हाँ।"

"तुम्हारे 'इन्ट्यूशन' ने तुम्हें धोखा दिया है।...लेकिन वह बात अब समाप्त हुई। मैं बहुत थक गयी हूँ और मुझे सचमुच नींद आ रही है। फिर भी यहाँ सोते अब मुझे लाज लगती है; अतः बुरा न मानो तो मैं नीचे जाकर सो जाऊँ।"

और वह ज़ीने से उतर कर नीचे चली गयी।

५०

जगदीश की परीक्षा समाप्त हो गई। कितने भारी मन से उसने परीक्षा दी थी, यह वही जानता था। फिर भी उसके परिणाम के सम्बन्ध

में उसे कोई भय नहीं था। पर्चे उसके सब ठीक हो गए थे। दिन में वह कभी पढ़ता नहीं था। वह उन लड़कों में से था जो सुबह से लेकर रात के आठ-नौ बजे तक ऊधम मचाते हैं। न स्वयं पढ़ते हैं और न दूसरों को पढ़ने देते हैं। और जब सो जाते हैं तो रात के दस बजे अपनी पुस्तकें लेकर बैठते हैं और सबके जगने से पहले फिर सो जाते हैं। सुबह वह जल्दी कभी नहीं उठ पाया; लेकिन ऐसा भी नहीं हुआ कि किसी ने उसे आकर उठाया हो। वह ऐसे लड़कों में से था जो यह पता ही नहीं चलने देते कि वे कब पढ़ते हैं—कक्षा में सबसे आगे, शरारत करने में भी सबसे आगे।

लेकिन परीक्षा में सफल होना ही तो सब कुछ नहीं है। जीवन में तो जगदीश अपने को एकदम असफल समझता है। अपने अतीत पर जब वह दृष्टि डालता है तो पाता है कि जिस वस्तु के लिए वह सबसे अधिक आकुल रहा है, वह है प्रेम। बचपन से ही यह भावना उसमें प्रबल रही है और जैसे-जैसे वह बड़ा हुआ, वैसे ही वैसे उसकी खोज उसके भीतर बढ़ती गयी। उसे सदैव ऐसा लगता रहा है कि बिना प्यार के वह जीवित नहीं रह सकता।

उसे स्मरण है कि जब वह छोटा था, तभी कोयले से दीवाल पर कुछ लिखता रहता था। उस भाषा को कोई समझ नहीं पाता था। पर क्या वह स्वयं भी उसका अर्थ जानता था? उसके मन में कुछ था जिसे भाषा के अभाव में वह कैसे ही व्यक्त कर देता था। बड़ा हुआ तो अभिव्यक्ति की शक्ति कुछ और बढ़ी। सृष्टि के कार्य-व्यापार पर वह ध्यान देता, तो उसे लगता कि इसका अणु-अणु किसी की खोज में व्यस्त है। सभी न जाने किसके अन्वेषण में निरन्तर रत हैं। यह खोज कब प्रारम्भ हुई थी और कब समाप्त होगी, कहा नहीं जा सकता। क्या उद्देश्य है इस खोज का, वह कभी-कभी सोचता। एक मौन, चिरंतन मौन ही सम्भवतः इसका सच्चा उत्तर है। कभी-कभी वह सोचता, मौन से बड़ा उत्तर कुछ भी नहीं

हो सकता। ईश्वर स्वयं मौन है—वह ईश्वर जिसने सभी की सृष्टि की है और जो सब कुछ जानता है। आकाश मौन है – वह आकाश जिसकी छाया में सभी जगते-सोते हैं। सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र सभी मौन हैं—वे ग्रहगण जो अनादि काल से हमारी धरती को रात-दिन आलोकित कर रहे हैं और हमारे सुख-दुःख के साक्षी हैं। धरती मौन है—वह धरती जो जीवन-नाटक का सबसे बड़ा मंच है।

तो फिर मैं भी मौन रहूँ? अपने हृदय का दाह, अपने अंतर की जलन लेकर चुप मर जाऊँ? लौट जाऊँ जहाँ से आया था? पर मन में यह अशांति कैसी, वह सोचने लगता। फिर दृष्टि उठाता तो सारी सृष्टि को मुखर पाता। चिड़ियाँ चहचहाती हैं—न जाने किस सुख से! निर्भर और नदियाँ कल गान कर रहे हैं—न जाने किस लय-ताल में! पवन साँस भरता है—न जाने किस दुःख से आहत होकर! ये क्यों चुप नहीं रहते? तो क्या अभिव्यक्ति भी उतनी ही आवश्यक है जितना मौन। कभी-कभी उसकी भी इच्छा होती कि वह कुछ कहे। क्या वह प्रकृति के बाहर है जो उसका संकेत न समझे। और तब वह डायरी या कविता लिखने बैठ जाता।

और बचपन से ही सुन्दर ढंग से रहने की उसके मन में अदम्य आकांक्षा थी। इसके लिए वह अज्ञान, दरिद्रता और अभाव से लड़ा और उसने निश्चय किया कि वह जीवन भर इनसे लड़ता रहेगा। दरिद्रता को उसने कभी गौरव नहीं समझा। वह उसे घृणा करता था। पर धीरे-धीरे उसने पाया कि पिछली दोनों भावनाएँ—लेखक बनने और सुन्दर जीवन व्यतीत करने की—कुछ शक्तिहीन, कुछ क्षीण होती चली गयीं। इससे उसे दुःख हुआ। कभी-कभी तो लगा जैसे उसका जीवन सारहीन है।

जब वह कानपुर आया तो जीवन का उसे कोई अनुभव नहीं था। इस बीच जो घटनाएँ अनायास घटीं, वे उसके हृदय पर बहुत गहरी

अंकित हो गई हैं। उनकी स्मृति जब जगती है तो मन न जाने कैसा हो जाता है। यह सब क्यों हुआ, वह स्वयं नहीं जानता। कभी-कभी वह सोचता : मैं बहुत भावुक व्यक्ति हूँ। वर्तमान से अधिक अतीत में रहता हूँ। सत्य से अधिक सपनों में विचरण करता हूँ। लेकिन वह कल्पना जो हमारे जीवन का अंग बन गयी है, क्या सत्य नहीं है ? कभी-कभी उसे लगता कल्पना ही सत्य है। कल्पना के जिन पलों को हम भोगते हैं, जो हमारी अनुभूति का अंग बन जाते हैं, क्या वे जीवन का अंग नहीं ? जीवंत क्षण यदि जीवन नहीं, तो फिर जीवन है क्या ?

उसने सुना था प्यार जीवन की सबसे बड़ी विभूति है। होगी ! यदि ऐसा है तो वह फिर इतना दुःखी क्यों है ? उसकी आत्मा इतनी अशांत और आकुल क्यों है ? आज वह पाता है कि उसके भीतर व्यथा का अनंत नद लहरा रहा है। उसके जीवन में सुख के पल न आए हों, ऐसा नहीं है। लेकिन अब जब उनकी चमक बुझ गयी है; तो दुःख की कालिमा और भी घनीभूत हो गई है। वह सुख को आलिंगन में लेना चाहता है; लेकिन दुःख है कि उसके जीवन को चारों ओर से बार-बार घेर लेता है।

उसके जीवन में ये सब बिखरे-बिखरे क्यों पड़े हैं--जीवन, साहित्य, प्यार ? कौन इन्हें संयोजित करेगा ? कौन ?

और तब वह समय भी आया जब जगदीश को कानपुर छोड़ना पड़ा। इस नगर को छोड़ते हुए न जाने कैसा लग रहा है। इन चार वर्षों में इस स्थान से उसे कितना मोह हो गया था। मोह स्थान से संभवतः सम्पर्कों के कारण होता है। अब इन स्थानों को वह कभी नहीं देख पायेगा। नयन का घर, सीमा का घर, बानू का घर, प्रीति का घर ! नदी का किनारा, मिश्रा जी की क्लास, होस्टिल ! रोहिणी, रेवती, भरोसे, रामदेई, दुबे, श्याममोहन चड्ढा, उसे सभी याद आ रहे थे ! भट्टाचार्य,

कालिंदी, बनर्जी—वह किसी को भी नहीं भुला पा रहा था। स्मृतियों की कैसी भीड़ थी !

एक दिन वह इनमें से किसी को भी नहीं जानता था। फिर धीरे-धीरे सबसे परिचय हुआ। सब उसके जीवन में आये और निकल गए। क्यों हुआ ऐसा ? क्यों तो कोई किसी के जीवन में आता है और फिर क्यों निकल जाता है ? क्यों प्रत्येक प्राणी छोड़ जाता है एक सूनापन ! इससे जीवन की कौन-सी सार्थकता सिद्ध होती है ?

एक बार उसकी इच्छा हुई वह सभी से मिलने जाय—सब कुछ भुलाकर। विदा के समय कैसा अभिमान, कैसा बुरा मानना ! उसने सोचा शिष्टाचार के नाते ही उसे सबसे मिलना चाहिए। लेकिन उसके पैर फिर उठे ही नहीं। यह कौन है जो व्यक्ति के पैर इस तरह बाँध देता है ?

पहले उसने सोचा वह अपने गाँव न जाय। कहाँ जाय लेकिन ? आज उसे कुछ भी अपना नहीं लग रहा था। उसे लगा वह जन्म-जन्मान्तर से देश-काल के अनंत अवकाश में निरुद्देश्य भटकता रहा है। कभी कोई उसका नहीं हो सका। होता तो क्या आज वह इतना अकेला होता !

लेकिन यह दोष वह किसी को देता क्यों है ? ऐसा कौन है जिसने उसे कुछ न कुछ देना न चाहा हो ? इतनी कम अवस्था में इतना मिलता किसे है ? यह तो उसी का अपराध है कि वह ठीक से किसी से कुछ ग्रहण नहीं कर पाया। नयन, सीमा, प्रीति, बानू सभी से उसे कितना मिला ! लेकिन वही कुछ ऐसा अभागा निकला कि किसी को भी कहीं नहीं बाँध पाया, किसी से भी कहीं नहीं बँध पाया।

फिर यह दुःख किस बात का है ? क्यों वह आज बहुत पराजित-सा, टूटा-सा, उदास-सा बैठा है।

वह चाहता है कि कैसे ही उसके थोड़े आँसू निकल पाते।

लेकिन आँसू न जाने कहाँ सूख गये थे।

५१

जगदीश स्टेशन पर आ गया। इन्टर का टिकट खरीदकर वह डिब्बे में आ बैठा। अपने चमड़े के सूटकेस और होलडाल पर जब उसकी दृष्टि पड़ी तो उसे सहसा हँसी आ गई। मैं सोचता हूँ मैंने नयन को विदा दे दी; लेकिन उसका प्रभाव तो मेरे साथ चल रहा है। न केवल इतना कि मेरे रहन-सहन का स्तर कुछ ऊँचा उठ रहा है; बल्कि इसके पीछे किसी का डर भी छिपा हुआ है। डर ही है कि अब मैं पुराना ट्रंक और मूँज की रस्सी से बँधी गँवारू ढंग की दरी लेकर नहीं चल सकता। डर ही कहना चाहिए इसे। वह खिड़की के सहारे आ बैठा। अँधेरी रात थी। चंद्रमा के निकलने का कोई लक्षण न था। काश कि इन चार वर्षों को आज पीछे लौटाया जा सकता। मैं वैसे ही यात्रा करता होता—संसार से अनभिज्ञ। वैसे ही साँझ होती। वैसे ही ट्रेन किसी स्टेशन पर रुकी होती। वैसे ही मैं उतर कर किसी से पूछता : आप प्यासी तो नहीं हैं? और वैसे ही कोई अपनी दृष्टि उठाकर उत्तर देता : ना!

उसका हृदय कहीं दुखा।

क्या मैं नारी को कभी भी पहचान नहीं पाऊँगा? क्या इस अवस्था में सभी लड़के इतने भावुक, इतने ही मूर्ख, इतने ही अव्यावहारिक होते हैं?

उसने अपने को बहुत थका हुआ-सा पाया और वह सो गया। इस दशा में वह न जाने कितनी देर रहा। न जाने कैसे-कैसे सपने देखता रहा।

···एक घना जंगल है। उसमें कुछ दूर चलकर रास्ता खो गया है। जगदीश भटकता फिर रहा है। फिर न जाने क्या होता है कि उसे स्वच्छ बालू दिखाई देती है और उसके आगे एक नदी···

संध्या का समय है। वह नदी के किनारे बैठा हुआ दीप-दान कर रहा है। एक दीपक को जल में प्रवाहित करता है। वह थोड़ी दूर चलकर

बुझ जाता है। फिर दूसरा दीपक, फिर तीसरा, फिर चौथा···। कोई कुछ आगे, कोई उससे कुछ और आगे चलकर बुझने लगता है।

जगदीश कुछ परेशान है कि इतने में पीछे से उसके कंधे पर कोई हाथ रखता है। वह पीछे मुड़कर देखता है। अरे, ये तो वे ही हैं जिन्हें स्वप्न की नौका में अनेक बार देखा है।

"तुमसे तो दीपक भी जलाना नहीं आता।"

और वह कोमल कर अपनी सुकुमार उँगलियों से एक दीपक जलाता है और उसे मुस्कराकर जल में प्रवाहित कर देता है।

वह दीपक तो बहता ही चला जाता है...बहता ही चला जाता है। पवन के झकोरे न उसे बुझा पाते हैं और न नदी की लहरें उसे निगल पाती हैं।

लेकिन सबसे आश्चर्य की बात यह है कि जैसे ही वह दीप जल में उतरता है, जगदीश के बुझे हुए सब दीपक सहसा जल उठते हैं...।

आनन्द के अतिरेक से जगदीश की नींद खुल गई।

देखा तो पास में नयन चुपचाप बैठी है।

"तुम?"

"हाँ मैं।"

जगदीश को विश्वास नहीं हुआ। वह उठ कर बैठ गया।

"तुम्हें कैसे पता चल गया कि मैं इस ट्रेन से वापस जा रहा हूँ?"

"दुबे ने बताया।"

"दुबे शहर में है?"

"हाँ, मेरे पास!"

"और रेवा?"

"वह भी। दोनों आजकल आये हुए हैं। दुबे ने मुझे अपनी दीदी बना लिया है। वे कुछ दिन से मेरे कलकत्ते वाले मकान में हैं। जब तक

श्रौर प्रबन्ध नहीं होता, तक वे दोनों वहीं रहेंगे। दुबे को काम मिल गया है।"

"यह सब तुम क्यों करती हो ?"

"वह मुझे दीदी कहता है न ?"

"श्रौर कोई कारण नहीं है ?"

"हो तो मुझे पता नहीं।"

"लेकिन वह श्रच्छा श्रादमी नहीं है।"

"श्रच्छा तो तुम मुझे भी नहीं समझते। लेकिन किया क्या जाय ?"

यह बात जगदीश के कहीं चुभी। वह संयत होकर बोला, "वह तो दूसरी बात है !"

"कोई दूसरी बात नहीं है। एक भले एक बुरे श्रादमी की श्रपेक्षा दो बुरे श्रादमियों के सम्बन्ध का निर्वाह कहीं श्रधिक श्रच्छी तरह हो सकता है।"

"दुबे मुझसे मिला क्यों नहीं ?"

"संकोच की वजह से नहीं मिला होगा।"

"वह भी स्टेशन श्राया था ?"

"नहीं। मैं श्रकेली ही श्राई।"

"श्रब तक कहाँ थीं ?"

"थर्ड क्लास में। वहीं मुझे सुविधा रहती है।"

"श्रच्छा नयन, तुम श्रपने को छिपाने के लिए ही थर्ड क्लास में यात्रा करती हो न ?"

"हाँ। लेकिन मुझे यह जानकर श्राश्चर्य हुश्रा कि तुम्हें श्रभी तक मेरा नाम याद है !"

जगदीश को फिर किसी ने जैसे नोच दिया हो। बोला, ' श्रच्छा, यह तो हुश्रा। लेकिन तुम जा कहाँ रही हो ? कलकत्ता या जयपुर या बम्बई या श्रीनगर ? तुम्हारा सामा न कहाँ है ?"

"तुम्हारे साथ जा रही हूँ—जहाँ भी चलो। क्या, विश्वास नहीं होता ?"

डिब्बे में कुछ लोग सो गए थे, कुछ ऊँघ रहे थे। बाहर से अँधेरे को चीरते हुए तेज़ हवा के झोंके आ रहे थे। उनमें गर्मी मिली हुई थी।

"कोई सुनेगा तो क्या कहेगा ?"

"कह देना मेरी पत्नी है। क्या इतना कहने में लाज लगती है ? गाँव जाऊँगी तो तुम्हारे मा-बाप प्रसन्न नहीं होंगे क्या ? अच्छा छोड़ो। गाँव हम नहीं जायँगे। किसी और जगह चले चलेंगे।" इतना कहकर नयन मुस्कराने लगी। उस मुसिकान में न जाने कितनी करुणा भरी हुई थी।

जगदीश जानता था, नयन मज़ाक कर रही है। भला यह कैसे हो सकता था; लेकिन उस कथन के पीछे जो निर्मल वेदना थी उसे अपनी निराशा के इस असीम पल में उसने पहचाना। बरसात की रात में जैसे कभी-कभी बिजली चमक कर घर के कोने में रखी किसी वस्तु को हमें दिखा जाती है, वैसे ही अपने दुःख के आलोक में उसने नयन के दुःख को पहचाना। जीवन की यह कैसी विवशता है कि दो व्यक्ति लाख इच्छा होने पर भी किसी सामान्य-सी लगने वाली बाधा के कारण जीवन भर मिल नहीं पाते !

जगदीश नयन से कुछ भी नहीं छिपाता था। इस समय भी उसने प्रीति और सीमा से सम्बन्धित घटनाएँ सुनाईं। जो कुछ हुआ था उसने सब कुछ कह दिया। सुनकर नयन को आश्चर्य हुआ हो ऐसा नहीं लगा। उसने सहानुभूति भी नहीं प्रदर्शित की। उसके स्वभाव का यह ठंडापन उसे कुछ अखरा।

"इसमें दुःख करने की क्या बात है ? तुम तो इन दोनों में से किसी को भी प्यार नहीं करते।"

"तुम्हें ऐसा लगता है ?"

"सच बात यह है कि तुमने आज तक कभी किसी को प्यार नहीं किया..."

जगदीश को अपने कानों पर विश्वास नहीं हुआ। उसकी इच्छा हुई कि वह ज़ोर से चिल्लाकर कहे कि...नहीं नहीं, तुम झूठ बोलती हो.. इससे बड़ा झूठ कुछ भी नहीं हो सकता।

"तो आज तक जिन लोगों की चर्चा इस प्रसंग में मैंने की, उनमें से उधर से भी कोई मुझे प्यार नहीं करता था ? इतनी बड़ी घटनाएँ बिना प्यार के ही हो गयीं ? छोटे जीवन के इतने बड़े त्याग अकारण ही हो गए ?"

"आवेश में आने की आवश्यकता नहीं है" नयन ने कहा, "बुरा मानने की भी आवश्यकता नहीं। उस ओर के सम्बन्ध की तो मैंने बात ही नहीं उठायी। केवल तुम्हारी बात कह रही हूँ। तुम उस प्रकार के व्यक्तियों में से हो जो एक पल भी नारी के सम्पर्क के बिना जीवित नहीं रह सकते, जिन्हें जीवित रहने के लिए पल-पल पर नारी का प्यार चाहिए। जितने प्यार के तुम भूखे हो उतना प्यार कोई एक नारी तुम्हें दे भी नहीं सकती। तुम उस प्रकार के व्यक्तियों में से हो जो जीवन-भर नारी को प्यार करते हुए भी किसी विशेष नारी को प्यार नहीं करते। मेरा वश चले तो मैं भविष्य में तुम्हारे सम्पर्क में आने वाली सभी नारियों से कह आऊँ कि कोई तुम्हें प्यार न करे। तुम्हें प्यार करने वाली कोई भी स्त्री कभी सुखी नहीं रह सकती।"

जगदीश हँसने लगा।

"हँसते क्यों हो ?"

"यही सोचता हूँ कि तुम मुझे कितनी अच्छी तरह जानती हो।"

"अच्छा, तुम क्या समझते हो, तुम प्रीति को प्यार करते थे ?"

"उस समय तो यही समझता था; लेकिन अब नहीं।"

"अब क्यों नहीं ?"

"उस जीवन में आवेश ही आवेश था नयन, अनुभव तब कहाँ था। पहली दृष्टि में ही प्यार हो जाता है, इस सिद्धांत को अब मैं नहीं मानता। लेकिन मेरी बात छोड़ो। जिन लोगों को तुम इतना मानती हो, उनमें से क्या तुम सचमुच किसी को प्यार करती हो?"

"नहीं।" नयन का स्पष्ट उत्तर था।

"इसीलिए तो नहीं कि वहाँ संबंध पति-पत्नी के स्तर पर आ गया है या और कोई बात है?"

"यही बात है। वासना को कितना ही सुन्दर रूप दिया जाय, उसे प्रेम में परिवर्तित नहीं किया जा सकता।"

"तब यह सब कुछ स्वयं तुम्हें कैसा लगता है?"

"सच कहूँ? लगता तो अच्छा है। अच्छा न लगता तो इतने दिन संबंध चल ही नहीं सकते थे।"

जगदीश को इस उत्तर से कुछ कष्ट हुआ। भीतर उसे कहीं ईर्ष्या-सी हुई।

"कोई कितना ही कहे; पर प्रेम में शरीर आता है, यह मैं नहीं मानता।"

"यह तुम्हारी भूल है। इससे अधिक मैं और कुछ नहीं कह सकती।"

ट्रेन की गति धीमी हो गई थी। जगदीश ने बाहर झाँककर देखा। पूछने पर पता चला—अलीगढ़ जंकशन है।

"मैं यहाँ से गाड़ी बदलूँगा नयन। तुम कहाँ जाओगी?"

"वापस।"

नीचे उतरकर दोनों चुप खड़े रहे।

"तुम्हारा कमरा तुम्हारे लिए सदैव खुला रहेगा। जब कभी तुम लौट कर आओगे, मैं तुम्हारा उसी में स्वागत करूँगी…" नयन ने कहा।

"तुम बहुत बड़ी हो नयन और तुमने जैसा मेरे साथ किया है, वैसा बहुत कम नारियाँ कर पाती हैं; लेकिन..."

"लेकिन क्या?"

"विदा के समय उस बात को मैं कहना नहीं चाहता। तुम सुन भी नहीं सकोगी। वह सब कुछ मेरे मन में ही रहे, तो अच्छा है।"

"नहीं, मैं सुनना चाहती हूँ।"

"मैंने बार-बार तुम्हारे मुख की ओर देखा है और अपने से प्रश्न किया है और मुझे यही उत्तर मिला है कि जिसे मैं खोजता फिरता हूँ, वह तुम नहीं हो..."

कुली ने सामान उठाते हुए कहा, "बाहर चलिए हुजूर। बहुत देर हो गई। हमें और भी काम करना है।"

नयन वहीं निस्पंद खड़ी रही।

———